पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

प्रवृत्तियाँ

१. अनुसधान

२. अध्यापन व निर्देशन

३. पुस्तकालय व वाचनालय

४. शोधवृत्तियाँ

५. छात्रावास व छात्रवृत्तियाँ

६. श्रमण (मासिक)

७. व्याख्यानमाला

८. प्रकाशन

१५) रु०

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला

• १५ •

सम्पादक

पं० दलसुख मालवणिया

डा० मोहनलाल मेहता

जैन साहित्य

का

बृहद् इतिहास

भाग ५

लाक्षणिक साहित्य

लेखक

पं० अम्बालाल प्रे० शाह

सच्च लोगम्मि सारभूय

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

जैनाश्रम

हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी-५

प्रकाशक :

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

जैनाश्रम

हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी-५

प्रकाशन-वर्ष :

सन १९६९

मूल्य :

पन्द्रह रुपये

मुद्रक :

अनिलकुमार गुप्त

संसार प्रेस, ससार लिमिटेड

काशीपुरा, वाराणसी

स्वर्गीय श्रीमती लाभ देवी जैन धर्मपत्नी श्री हरजसराय जैन

प्रकाशकीय

जैन साहित्य-निर्माण योजना के अन्तर्गत जैन साहित्य के बृहद् इतिहास का यह पाचवां भाग है। जैनों द्वारा प्राचीन काल से लिखा गया लाक्षणिक (Technical) साहित्य इसका विषय है। इसे प्रस्तुत करते हमे वडी खुशी और सतोप हो रहा है।

सदैव से जैन विचारक और विद्वान् इस क्षेत्र मे भी भारतीय दाय को समृद्ध करते आए हैं। वे अपने लेख अपने-अपने समय मे प्रसिद्ध और बोली जानेवाली भाषाओं मे सर्वहितार्थ लिखते रहे हैं। यह सब ज्ञातव्य था। साधारण जैन जिनमे अक्सर साधुवर्ग भी शामिल है, इस ऐतिहासिक परिचय से अपरिचित-सा है। जव हम जानते ही नहीं कि पूर्व या भूत काल मे हमारी जडें हैं और वर्तमान मे हम तव से चले आ रहे हैं तो हमारा मन किस सिद्धि पर आश्चर्य अनुभव करे। गर्व का कारण ही कैसे प्रेरित हो।

यह पाचवां भाग उपर्युक्त आन्तरिक आन्दोलन का उत्तर है। हम यह नहीं कहते कि लाक्षणिक विद्याओ (Technical Sciences) के सम्वन्ध मे यह परिश्रम जैन योगदान की पूरी कथा प्रस्तुत करता है। यह तो पहली ही कोशिश है जो आज तक किसी दिशा से हुई थी। तो भी लेखक ने वड़ी रुचि, मेहनत और अध्ययन से इस ग्रन्थ को रचा है। इसके लिये हम उन्हे बधाई देते है। ग्रन्थ मे जगह-जगह पर लेखक ने निर्देश किया है कि अमुक-ग्रन्थ मिलता नही है या प्रकाशित नहीं हुआ है, इत्यादि। अव अन्य जैन विद्वानो और शोध या खोज-कर्ताओं पर यह उत्तरदायित्व है कि वे अनुपलब्ध या अप्रकाशित सामग्री को प्रकाश मे लाएं। साधारण जैन भी समझे कि उसके धन के उपयोग के लिये एक वेहतर या वेहतरीन क्षेत्र उपस्थित हो गया है।

इसी प्रकार के निर्देश या संकेत इस इतिहास के पूर्व के चार भागो मे भी कई स्थलो पर उनके लेखकों ने प्रकट किये हैं। जव समाज अपने उपलब्ध साधनों को इस ओर प्रेरित करेगा तो सम्पूर्णता-प्राप्ति कठिन न

रह जाएगी। हम अपने लिये भी अपने बुजुर्गों का गौरव अनुभव कर सकेंगे। वह दिन खुशी का होगा।

इस ग्रन्थ में लेखक ने २७ लाक्षणिक विषयों के साहित्य का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। पूर्वजों के युग-युगादि में ये सब विषय प्रचलित थे। उन लोगों के अध्ययन के भी विषय थे। उन समयों में शिक्षा-दीक्षा के ये भी साधन थे। काल-परिवर्तन से पुराने माध्यम और ढंग बिल्कुल बदल गए हैं, यद्यपि विषय लुप्त नहीं हो गए हैं। वे तो विद्याएँ थीं। अब भी नए जमाने में नए नामों से वे विषय समझे जाते हैं। पुराने नामों और तौर-तरीके से उनका साधारण परिचय कराना भी असम्भव-सा है। वर्तमान सदा बलवान् है। उसके साथ चलना श्रेष्ठ है। उसके विपरीत चलने का प्रयत्न करना हेय है।

इस वर्तमान युग में सारे संसार में इतिहास का मान किसी अन्य विषय से कम नहीं है। इसकी जरूरत सब विद्वज्जगत् और उसके अधिकारी मानते हैं। पुराने निशानों और शृंखलाओं की तलाश चारों दिशाओं में हो रही है। सभी को इतिहास जानने की कामना निरन्तर बनी है।

इस इतिहास में पाठक गणित आदि विषयों के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय से ही चकित होंगे कि उन महानुभावों के ज्ञान और अनुभव में बड़े गहरे प्रश्न आ चुके थे।

इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक पंडित अंबालाल प्रे० शाह अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में कार्य करते हैं। सम्पादन पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया और डा० मोहनलाल मेहता ने किया है। प० श्री मालवणिया कई वर्षों तक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जैन दर्शन पढ़ाते रहे हैं। हाल में ही आप कैनेडा में टोरन्टो यूनिवर्सिटी में १६ मास तक कार्य करके लौटे है। डा० मेहता पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के अध्यक्ष और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जैन-अध्ययन के सम्मान्य प्राध्यापक हैं। इनकी रचना 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' के तीसरे भाग के लिये इन्हे उत्तर-प्रदेश सरकार से १५००) रुपये का रवींद्र पुरस्कार मिला है। इससे पहले भी ये राजस्थान सरकार से पुरस्कृत हुए थे। तब 'जैन दर्शन' ग्रन्थ पर १०००) रुपये और स्वर्ण-पदक इन्हे मिला था।

हम उपर्युक्त सब सज्जनों के आभारी हैं। उनकी सहायता हमे सदैव प्राप्त होती रहती है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का खर्च स्व० श्रीमती लाभदेवी हरजसराय जैन की वसीयत के निष्पादक (Executor) श्री अमरचंद्र जैन, राजहंस प्रेस, दिल्ली ने वहन किया है। स्व० महिला का निधन १९६० मे मई १९ को ठीक विवाह-तिथि वाले दिन हो गया था। वे साधारणतया किसी पाठशाला या स्कूल से शिक्षित नहीं थीं। उनके कथनानुसार उनकी माता की भरसक कामना रही कि वे अपनी सन्तान मे किसी को पुस्तकें बगल मे दबाए स्कूल जाते देखें परन्तु ऐसा हुआ नहीं। स्वर्गीया ने हिन्दी अक्षर-ज्ञान बाद में संचित किया, इच्छा उर्दू और अंग्रेजी पढ़ने की भी रही पर लिखने का अभ्यास उनके लिये अशक्य था। नहीं किया तो वह ज्ञान भी नही हुआ। प्रतिदिन सामायिक के समय वे अपने ढग और रुचि की धर्म-पुस्तके और भजन आदि पढ़ती रहीं। चिन्तन करते-करते उन्हें यह प्रश्न प्रत्यक्ष हुआ कि क्या स्थानकवासी जैन ही मुक्ति पाएंगे ? फिर कभी यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि 'हम' मे और 'दिगम्वर-विचार' में भेद क्या है ? उन्हे समझाया जाए। स्वयं वे दृढ़ साधुमार्गी स्थानकवासी जैन-श्रद्धा की थीं। धर्मार्थ काम के लिये उन्होंने वसीयत मे प्रबन्ध किया था। उनके परिवार ने उस राशि का विस्तार कर दिया था। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन का खर्च श्रीमती लाभदेवी धर्मार्थ खाते से हुआ है। इस सहायता के लिये प्रकाशक अनेकशः धन्यवाद प्रकट करते हैं।

रूपमहल
फरीदाबाद
३१ १२ ६९

हरजसराय जैन
मन्त्री,
श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

प्राचीन भारत की विमान-विद्या

प्राचीन भारत की आत्म विद्या, इसका दार्शनिक विवेक और विचारों की महिमा तथा गरिमा तो सर्व स्वीकृत ही है। पश्चिम देशों के दार्शनिक विचारकों ने इसकी भूरि भूरि प्रशसा के रूप मे छोटे-बडे अनेकों ग्रथ लिखे हैं। जहाँ भारत अपनी अध्यात्मशिक्षा मे जगद्गुरु रहा वहाँ अपनी वैज्ञानिक विद्या, वैभव और समृद्धि मे भी अद्वितीय था, यह इतिहाससिद्ध बात है। नालन्दा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालय इस बात के ज्वलन्त साक्षी हैं। प्राचीन भारत के व्यापारी जब चहुँ ओर देश-देशान्तरों में अपने विकसित विज्ञान से उत्पादित अनेक प्रकार की सामग्री लेकर जाते थे तो उन देशों के निवासी भारत को एक अति विकसित तथा समृद्ध देश स्वीकारते थे और इस देश की ओर खिंचे आते थे। कोलम्बस इसी भारत की खोज में निकला था परन्तु दिशा भूलने के कारण ही उसे अमरीका देश मिला और उसके समीपवर्ती द्वीपों को वह भारत समझा तथा वहाँ के लोगों को 'इण्डियन' और द्वीपों को बाद में पश्चिम भारत (West Indies) पुकारा जाने लगा। उसे अपनी भूल का पता बाद में लगा। इसी भारत को प्राप्त करने किंवा उसके वैभव को लूटने के निमित्त से ही एलेग्जैण्डर और मुहम्मद गोरी तथा गजनी इस ओर आकृष्ट हुए थे। कहने का भाव यह है कि प्राचीन भारत विज्ञान-विद्या तथा कला कौशल में भी प्रवीणता और पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। इसकी वस्त्र-कलाएँ अदृश्य वस्त्र उत्पन्न करती थीं यानी विश्व में अनुपमेय वस्त्र तैयार करती थीं ये भी ऐतिहासिक बातें है। महाराज भोज के काल में भी अनेकों प्रकार की कलाओं, यन्त्रों तथा वाहनों का वर्णन प्राप्त होता है। सौ योजन प्रतिघटा भागने वाला 'अश्व', स्वय चलने वाला 'पखा' आदि का भी वर्णन मिलता है। उस समय के उपलब्ध ग्रथों मे यह भी लिखा है कि राजे महाराजों के पास निजी विमान होते थे।

ऋग्वेद (८ ९१ ७ तथा १ ११८ १, ४) में खेरथ, खेऽनसः अर्थात् आकाशगामी रथ, या श्येन बाज पक्षी आदि की गतिवाले आकाशगामी यान बनाने का विधान कई स्थलों में मिलता है। वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्र जी रावण पर विजय पाकर, उसके भाई विभीषण तथा अन्य अनेकों मित्रों के साथ में एक ही विशालकाय 'पुष्पक' विमान मे बैठकर अयोध्या लौटे थे। रामायण में उक्त घटना निम्नोक्त शब्दों में वर्णित है —

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणं ··
· ·· अयोध्या प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥
(बालकाड १ ८६)

इसी प्रकार अयोध्या नगरी के वर्णन के प्रसग मे कवि कहता है कि वह नगरी विचित्र आठ भागों मे विभक्त है, उत्तम व श्रेष्ठ गुणों से युक्त नर-नारियो से अधिवासित है तथा अनेक प्रकार के रत्नों से सुसज्जित और विमान गृहों से सुशोभित है (चित्रामष्टापदाकारा वरनारीगणायुताम् । सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्—बाल० ५ १६) । श्लोक में निर्दिष्ट 'विमानगृह' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं । एक वास्तुविद्या (Architecture) के अर्थ में वह गृह जो उड़ते हुए विमानों के समान अत्यन्त ऊँचे तथा अनेक भूमियों (मजिलों) वाले गगनचुम्बी भवन जिनके ऊपर बैठे हुए लोगो को पृथिवीस्थ वस्तुएँ बहुत ही छोटी छोटी दीखें जैसे विमान में बैठने वालों को प्रायः दीखती हैं । अर्थात् उस समय लोगों ने विमान में बैठकर ऊपर से ऐसे ही दृश्य देखे होंगे । दूसरा अर्थ 'विमान-गृह' से यह हो सकता है कि जिन्हें आज हम Hangers कहते हैं अर्थात् जहाँ विमान रखे जाते हैं । उस समय में विमान थे तथा रखे जाते थे और उनको बनाया जाता था यह इसी सर्ग के १९ वें श्लोक से प्रमाणित होता है —

'विमानमिव सिद्धाना तपसाधिगतं दिवि' ।

अयोध्या नगरी की नगर-रचना (Town Planning) के विषय में वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह नगरी ऐसी बसी या विकसित नहीं थी कि कहीं भूमि रिक्त पडी हो, न कहीं अति घनी बसी थी, वरञ्च वह इतनी सतुलित व सुसज्जित रूप मे बनी हुई थी जैसे—'तपसा सिद्धाना दिवि अधिगत विमानम् इव ।' अर्थात् विमान-निर्माण विद्या में तपे हुए सिद्धशिल्पियों द्वारा आकाश में उड़ता विमान हो । पतग उडाने वाला एक बालक भी यह जानता है कि यदि पतग का एक पक्ष (पासा) दूसरे पक्ष की अपेक्षा भारी हुआ या सतुलित दोनों पक्ष न हुए तो उसकी पतग ऊँची न उडकर एक ओर को झुककर नीचे गिर पड़ेगी । इसी भाव को अभिव्यक्त करने के लिए विमान के दोनों पक्ष सिद्ध हों ऐसा दृष्टात देकर नगरी के दोनों पक्षों को समविकसित दर्शाने के लिए विमान की उपमा दी गई है । प्राचीन भारत में वास्तुविद्या में प्रवीण शिल्पी (Expert Architects) नगरों को जलाशयों, नदियों या समुद्रतटों के साथ-साथ निर्माण करते थे । पाटलीपुत्र (पटना) नदी के किनारे १८

योजन लम्बा नगर बना हुआ था। अयोध्या भी सरयू-तट पर १२ योजन लम्बी बनी लिखी है। नगर के मध्यभाग मे राजगृह, सघगृहादि होते और दोनों पक्षों में अन्य भवन, गृहादि बनाये जाते थे। नगर का आकार, पखों को फैलाकर उड़ते श्येन (बाज पक्षी) या गीध पक्षी के समान होता था।

महाराजा भोज के काल मे भी वायुयान या विमान उड़ते थे। उनके काल मे रचित एक ग्रथ 'समराङ्गणसूत्रधार' म पारे से उड़ाये जानेवाले विमान का उल्लेख आता है :—

लघुदारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चाति (ग्नि) पूर्णम् ॥

(समरा० यन्त्रविधान ३१. ९५)

अर्थात् उसका शरीर अच्छी तरह जुड़ा हुआ और अतिदृढ होना चाहिए, उस विमान के उदर (Belly) में पारायन्त्र स्थित हो और उसे गर्म करने का आधार और अग्निपूर्ण (बारुद, Combustible Powder) का प्रबन्ध उसमें हो।

'युक्तिकल्पतरु' में भी इसी प्रकार वर्णन है :—

'व्योमयान विमान वा पूर्वमासीन्महीभुजाम्' (युक्तियान० ५०)

इससे स्पष्ट होता है कि उस समय के राजाओं के पास व्योमयान तथा विमान होते थे। हमारी समझ मे व्योमयान तथा विमान शब्दों से विमानों में भिन्नता प्रदर्शित की गई है। व्योमयान से विमान कहीं अधिक गति तथा वेग-वान् थे।

जिस प्रकार काल की विकराल गाल मे देशों के विकसित नगर तथा अपरिमित विभूतियाँ भूमि मे दब कर नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार भारत की समृद्धि तथा उसका सवृद्ध साहित्य भी विदेशी आतताइयों के विप्लवी आक्रमणों और उनकी बरबरता के कारण, उसके असख्यों ग्रन्थों का लोप और विध्वस हो गया। जिस प्रकार आजकल भारतीय राजकीय पुरातत्व विभाग भारत की दबी हुई भूमिगत सभ्यता को खोद-खोद कर प्रदर्शित कर रहा है, खेद है उतना ध्यान भारत के दबे हुए साहित्य को खोजने में नहीं देता। हमारी धारणा है अभी भी बहुत साहित्य लुप्त पडा है। कुछ काल पूर्व ही श्री वामनराय डा० कोकटनूर ने अमेरिकन केमिकल सोसाइटी के अधिवेशन में पढे एक निबन्ध में हस्तलिखित "अगस्त्य-सहिता" का नाम दिया और उसमें विमान के उड़ाने का वर्णन

किया तथा यह भी कहा कि 'पुष्पक विमान' के आविष्कारक महर्षि अगस्त्य थे। इस विषय में कुछ लेख पुन. विश्ववाणी मे भी प्रकाशित हुए थे।

प्राचीन भारत के लुप्त तथा अज्ञात साहित्य की खोज के लिए ब्रह्ममुनि जी ने निश्चय किया कि अगस्त्य-संहिता ढूंढ़ी जाय। इसी खोज मे वे बड़ौदा के राजकीय पुस्तकालय मे पहुँचे। वहाँ उन्हें अगस्त्य-संहिता तो नहीं मिली पर महर्षि भरद्वाज के 'यंत्रसर्वस्व' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का बोधानन्द यति की वृत्ति-सहित "वैमानिक-प्रकरण" अपूर्ण भाग प्राप्त हुआ। उस भाग की उन्होंने प्रतिलिपि की। उक्त पुस्तकालय में बोधानन्द वृत्तिकार के अपने हाथ की लिखी नहीं वरन् पश्चात् की प्रतिलिपि है। बोधानन्द ने बडी विद्वत्तापूर्ण श्लोकबद्ध वृत्ति लिखी है परन्तु प्रतिलिपिकार ने लिखने में कुछ अशुद्धियाँ तथा त्रुटियाँ की है। ब्रह्ममुनि जी ने उसका हिन्दी में अनुवाद कर सन् १९४३ मे छपवाया और लेखक को भी एक प्रति उपहारस्वरूप भेजी। चूँकि यह 'विमान-शास्त्र' एक अति वैज्ञानिक पुस्तिका थी अत. हमने इसे हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस मे अपने एक परिचित प्राध्यापक के पास, इस ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दो, कलाओ को अपने वैज्ञानिक शिल्पियों की सहायता लेकर कुछ नई खोज करने को भेजा। परन्तु हमारी एक वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त यह ग्रन्थ हमारे पास यह उपाधि देकर लौटा दिया गया कि इस पर परिश्रम करना व्यर्थ है। हमने इसे पुन. अलीगढ़ विश्वविद्यालय मे भी छ. मास के लिये विज्ञानकोविदों के पास रखा। पर उन्होंने भी कोई रुचि न दिखाई। इस प्रकार यह लुप्त साहित्य हमारे पास लगभग ९ वर्ष पडा रहा।

१९५२ की ग्रीष्मऋतु मे एक अंग्रेज विमानशास्त्री (Aeronautic Engineer) हमारे सम्पर्क मे आये। उनका नाम है श्री हॉले (Wholey)। जब हमने उनके सन्मुख इस पुस्तिका का वर्णन किया तो उन्होंने बड़ी रुचि प्रकट की। साथ जब वह इस ग्रंथ के विषय में जानकारी करने आये तो अपने साथ एक अन्य शिल्पी श्री वर्गीज को ले आये जो संस्कृत जानने का भी दावा रखते थे। चूँकि यह प्रतिलिपि किसी अर्वाचीन हस्तलिखित प्रतिलिपि की भी प्रतिलिपि थी अत श्री वर्गीज ने यह व्यंग किया कि "यह तो किसी आधुनिक पंडित ने आजकल के विमानों को देखकर श्लोक व सूत्रबद्ध कर दिया है इत्यादि।" हमने कहा—श्रीमान्! यदि इस तुच्छ ग्रन्थ में वह लिखा हो जो आप के आजकल के विमान भी न कर पायें तो आप की धारणा सर्वथा मिथ्या हो जायेगी। इस पर

उन्होंने कोई उदाहरण देने को कहा। हमने अनायास ही पुस्तिका खोली। जैसा उसमें लिखा था, पढ कर सुनाया। उसमे एक पाठ था :—

संकोचनरहस्यो नाम—यंत्रांगोपसंहाराधिकोक्तरीत्या अंतरिक्षे अति वेगात् पलायमानानां विस्तृतखेटयानानामपाय सम्भवे विमानस्थ सप्तमकीलीचालनद्वारा तदंगोपसंहारक्रिया रहस्यम्।

अर्थात् यदि आकाश में आपका विमान अनेकों अतिवेग से भागने वाले शत्रु-विमानों से घिर जाय और आप के विमान के निकल भागने या नाश से बचने का कोई उपाय न दिखाई दे तो आप अपने विमान में लगी सात नम्बर की कीली (Lever) को चलाइए। इससे आप के विमान का एक एक अग सिकुड़ कर छोटा हो जायेगा और आप के विमान की गति अति तेज हो जायेगी और आप निकल जायेंगे। इस पाठ को सुन कर श्री हॉले उत्तेजित और चकित होकर कुर्सी से उठ खडे हुए और बोले—"वर्णीज, क्या तुमने कभी चील को नीचे झपटते नहीं देखा है, उस समय कैसे वह अपने शरीर तथा पैरों को सिकुड़ कर अति तीव्र गति प्राप्त करती है, यही सिद्धान्त इस यन्त्र द्वारा प्रकट किया है। इस प्रकार के अनेकों स्थल जब उन्हें सुनाये तो वह इस ग्रथिका के साथ मानो चिपट ही गये। उन्होंने हमारे साथ इस ग्रथ के केवल एक सूत्र (दूसरे) ही पर लगभग एक महीना काम किया। विदा होने के समय हमने सदेह प्रकट करते हुए उनसे पूछा—"क्या इस परिश्रम को व्यर्थ भी समझा जा सकता है?" उन्होंने बडे गभीर भाव से उत्तर दिया—"मेरे विचार मे व्यक्ति के जीवन मे ऐसी घटना शायद दस लाख में एक बार आती है (It is a chance one out of a million)"। पाठक इस ग्रथ की उपयोगिता का एक विदेशी विद्वान् के परिश्रम और शब्दों से अनुमान लगा सकते हैं। इसमें से उसे जो नये नये भाव लेने थे, ले गया। हम लोगों के पास तो वे सूखे पन्ने ही पडे हैं।

विमानप्रकरणम् :

ग्रन्थ परिचय—यह विमानप्रकरण भरद्वाज ऋषि के महाग्रन्थ 'यन्त्रसर्वस्व' का एक भाग है। 'यन्त्रसर्वस्व' महाग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसके 'विमान-प्रकरण' पर यति बोधानन्द ने व्याख्या वृत्ति के रूप में लिखी, उसका कुछ भाग हस्तलिखित प्राप्त पुस्तिका में बोधानन्द यूँ लिखते है :—

"पूर्वाचार्यकृतान् शास्त्रानवलोक्य यथामति।
सर्वलोकोपकराय सर्वानर्थविनाशकम्॥

त्रयी हृदयसन्दोहसाररूप सुखप्रदम् ।
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं शताधिकरणैस्तथा ॥
अष्टाध्यायसमायुक्तमति गूढ मनोहरम् ।
जगतामतिसंधानकारणं शुभद नृणाम् ॥
अनायासाद् व्योमयानस्वरूपज्ञानसाधनम् ।
वैमानिकाधिकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथामति ॥
संग्रहाद् वैमानिकाधिकरणस्य यथाविधि ।
लिलेख बोधानन्दवृत्त्याख्यां व्याख्यां मनोहरम् ॥"

अर्थात् अपने से पूर्व आचार्यों के शास्त्रों का पूर्णरूप से अध्ययन कर सबके हित और सौकर्य्य के लिये इस 'वैमानिक अधिकरण' को ८ अध्याय, १०० अधिकरण और ५०० सूत्रों मे विभाजित किया गया है और व्याख्या श्लोकों में निबद्ध की है। आगे लिखते हैं :—

"तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम् ।
नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ॥"

भाव है : भरद्वाज ऋषि ने अति परिश्रम कर मनुष्यों के अभीष्ट फलप्रद ४० अधिकारों से युक्त 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रथ रचा और उसमे भिन्न-भिन्न विमानों की विचित्रता और रचना का बोध ८ अध्याय, ५०० सूत्रों द्वारा कराया ।

इतना विशाल वैमानिक साहित्य ग्रथ था जो लुप्त है और इस समय केवल बड़ौदा पुस्तकालय से एक लघु हस्तलिखित प्रतिलिपि केवल ५ सूत्रों की ही मिली है। शेष सूत्र न मालूम गुम हो गये या किसी दूसरे के हाथ लगे। हमारे एक मित्र एन० वी० गाद्रे ने हमें ताञ्जौर से एकबार लिखा था कि वहाँ एक निर्धन ब्राह्मण के पास इस विमान-शास्त्र के १५ सूत्र हैं, परन्तु हमें खेद है कि हम श्री गाद्रे की प्रेरणा के होते हुए भी उन सूत्रों को मोल भी न ले सके। उसने नहीं दिये। कितनी शोचनीय कथा तथा अवस्था है।

इस प्राप्त लघु पुस्तिका में सबसे पहिले प्राचीन विमानसम्बन्धी २५ विज्ञान-ग्रथों की सूची दी हुई है। जैसे —

शक्तिसूत्र—अगस्त्यकृत, सौदामिनीकला—ईश्वरकृत, अंशुमन्तन्त्रम्—भरद्वाजकृत, यन्त्रसर्वस्व—भरद्वाजकृत, आकाशशास्त्रम्—भरद्वाजकृत, वाल्मीकिगणित—वाल्मीकिकृत इत्यादि।

इस पुस्तिका के ८ अध्यायों की साथ मे विषयानुक्रमणिका भी प्राप्त हुई है। सक्षेप रूप में हम कुछ एक का वर्णन करते हैं जिससे पाठक स्वय देख सकें कि वह कितनी विज्ञानप्रद है :—

प्रथम अध्याय में १२ अधिकरण हैं, यथा :—

विमानाधिकरण (Air-crafts), वस्त्राधिकरण (Dresses), मार्गाधिकरण (Routes), आवर्ताधिकरण (Spheres in space), जात्यधिकरण (Various types) इत्यादि।

दूसरे अध्याय में भी १२ अधिकरण हैं, यथा :—

लोहाधिकरण (Irons metallurgy),

दर्पणाधिकरण (Mirrors, lenses and optics),

शक्त्यधिकरण (Power mechanics),

तैलाधिकरण (Fuels, lubrication and paints),

वाताधिकरण (Kinetics),

भाराधिकरण (Weights, loads, gravitation),

वेगाधिकरण (Velocities),

चक्राधिकरण (Circuits, gears) इत्यादि।

तीसरे अध्याय में १३ अधिकरण हैं, जैसे :—

कालाधिकरण (Chronology),

सस्काराधिकरण (Refinery, repairs),

प्रकाशाधिकरण (Lightening and illuminations),

उष्णाधिकरण (Study of heats),

शैत्याधिकरण (Refrigeration),

आन्दोलनाधिकरण (Study of oscillations),

तिर्यंचाधिकरण (Parobobe conic and angular motions) आदि।

चौथे अध्याय मे आकाश (Space) में विमानों के जो भिन्न-भिन्न मार्ग हैं वे तीसरे सूत्र की शौनकीय वृत्ति या व्याख्या में वर्णित हैं। उन मार्गों की सीमाएँ तथा रेखाओं का वर्णन है। जैसे—लग, वग, हग, लव, लवहग इत्यादि। इसमें भी १२ अधिकरण है।

पाँचवें अध्याय में १३ अधिकरण ये हैं .

तन्त्राधिकरण(Technology), विद्युत्प्रसारणाधिकरण (Electric conduction and dispersion), स्तम्भनाधिकरण (Accumula-

tion, inhibitions and brakes etc), दिङ्निदर्शनाधिकरण (Direction indicators), घण्टारवाधिकरण (Sound and acoustics), चक्रगत्यधिकरण (Wheels, disc motions) इत्यादि ।

छठे अध्याय में मुख्य अधिकरण है वामनिर्णयाधिकरण (Determination of North) । प्राचीन भारत में मानचित्र (map) बनाने में मानचित्र के ऊपर के भाग को उत्तर दिशा (North) नहीं कहते थे । ऊपर की दिशा उनकी पूर्व दिशा होती थी । अतः बाईं ओर या वामदिशा उत्तर दिशा कहलाती थी ।

शक्ति उद्गमनाधिकरण (Lifts, power study), धूमयानाधिकरण (Gas driven vehicles and planes), तारमुखाधिकरण (Telescopes etc), अंशुवाहाधिकरण (Ray media or ray beams) इत्यादि । इसमें भी १२ अधिकरण वर्णित है ।

सातवें अध्याय में ११ अधिकरण है :—

सिंहिकाधिकारण (Trickery), कूर्माधिकरण (Amphibious planes)—कौ=जले उर्स्यः यस्य स कूर्मः ।

अर्थात् कूर्म वह है जो जल में गतिमान हो । पुराने काल के हमारे विमान पृथ्वी और जल में भी चल सकते थे । इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला यह अधिकरण है ।

माण्डलिकाधिकरण (Controls and governors),

जलाधिकरण (Reservoirs, cloud signs etc) इत्यादि ।

आठवें अध्याय मे :—

ध्वजाधिकरण (Symbols, ciphers),

कालाधिकरण (Weathers, meteorology),

विस्तृतक्रियाधिकरण (Contraction, flexion systems),

प्राणकुण्डल्यधिकरण (Energy coils system),

शब्दाकर्षणाधिकरण (Sound absorption, listening devices like modern radios),

रूपाकर्षणाधिकरण (Form attraction electromagnetic search),

प्रतिबिम्बाकर्षणाधिकरण (Shadow or image detection),

गमागमाधिकरण (Reciprocation etc)

इस प्रकार १०० अधिकरण इस 'वैमानिक प्रकरण' की हस्तलिखित पुस्तिका में दिये गये हैं। पाठक इस पर तनिक भी ध्यान देंगे तो देखेंगे कि जो विषय या विद्या इन अधिकरणों में दी गई है वह आजकल की वैज्ञानिक विद्या से कम महत्त्व की नहीं है।

उपलब्ध चार सूत्र :

इन चार सूत्रों के साथ बोधानन्द की वृत्ति के अतिरिक्त कुछ अन्य खेटकों के नाम तथा विचार भी दिये गए हैं।

प्रथम सूत्र है —"वेगसाम्याद् विमानोऽण्डजानामिति।"

इस सूत्र द्वारा विमान क्या है इसकी परिभाषा की गई है। बोधानन्द अपनी वृत्ति मे कहते हैं कि विमान वह आकाशयान है जो गृध्र आदि पक्षियों के समान वेग से आकाश मे गमन करता है। लल्लाचार्य एक अन्य खेटक मे भी यही लक्षण देते हैं।

नारायणाचार्य के अनुसार विमान का लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट है —

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेपु खगवद्वेगतः स्वयम्।
यः समर्थो भवेद्गन्तु स विमान इति स्मृतः॥

अर्थात् जो विमान पृथिवी, जल तथा अतरिक्ष में पक्षी के समान वेग से उड़ सके उसे ही विमान कहा जाता है। अर्थात् उस समय मे विमान पृथिवी पर, पानी में तथा वायु (हवा) में तीनों अवस्थाओं में वेग से चलनेवाले होते थे। ऐसा नहीं कि पृथिवी या पानी में गिर कर नष्ट हो जाते थे।

विश्वम्भर तथा शखाचार्य के अनुसार :—

देशाद्देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद्द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुं अर्हति,
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदांवरैः॥

अर्थात् उस समय जो एक देश से दूसरे देश, एक द्वीप से दूसरे द्वीप तथा एक लोक से दूसरे लोक को आकाश द्वारा उड़कर जा सकता था उसे ही विमान कहा जाता था।

प्रथम सूत्र द्वारा विभिन्न खेटकों के विचार प्रकट किये गये हैं।

दूसरा सूत्र—रहस्यज्ञोऽधिकारी (अ० १ सूत्र २)

बोधानन्द बताते हैं कि रहस्यों को जानने वाला ही विमान चलाने का अधिकारी हो सकता है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए यों लिखते हैं:—

> विमान-रचने व्योमारोहणे चलने तथा।
> स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥
> वैमानिक रहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा।
> यतो संसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्॥

अर्थात् जिस वैमानिक व्यक्ति को अनेक प्रकार के रहस्य, जैसे विमान बनाने, उसे आकाश में उड़ाने, चलाने तथा आकाश में ही रोकने, पुनः चलाने, चित्र-विचित्र प्रकार की अनेक गतियों के चलाने के और विमान की विशेष अवस्था में विशेष गतियों का निर्णय करना जानता हो वही अधिकारी हो सकता है, दूसरा नहीं।

वृत्तिकार और भी लिखते हैं कि लल्लाचार्य आदि अनेक पुराकाल के विमान-शास्त्रियों ने "रहस्यलहरी" आदि ग्रंथों में जो बताया है उसके अनुसार संक्षेप में वर्णन करता हूँ। ज्ञातव्य है कि भरद्वाज ऋषि के रचे "वैमानिक प्रकरण" से पहले कई अन्य आचार्यों ने भी विमान-विषयक ग्रंथ लिखे हैं, जैसे :—

नारायण और उसका लिखा ग्रंथ		'विमानचन्द्रिका'
शौनक	,,	'व्योमयानतंत्र'
गर्ग	,,	'यन्त्रकल्प'
वाचस्पति	,,	'यानबिन्दु'
चाक्रायणि	,,	'व्योमयानार्क'
धुण्डिनाथ	,,	'खेटयानप्रदीपिका'।

भरद्वाज जी ने इन शास्त्रों का भी भलीभांति अवलोकन तथा विचार करके "वैमानिकप्रकरण" की परिभाषा को विस्तार से लिखा है—यह सब वहाँ लिखा हुआ है।

रहस्यलहरी में ३२ प्रकार के रहस्य वर्णित हैं —

> एतानि द्वात्रिंशद्रहस्यानि गुरोर्मुखात्।
> विज्ञान विधिवत् सर्वं पश्चात् कार्यं समारभेत्॥

एतद्रहस्यानुभवो यस्यास्ति गुरुबोधनः ।
स एव व्योमयानाधिकारी स्यान्नेतरे जनाः ॥

अर्थात् जो गुरु मे भलीभांति ३२ रहस्यों को जान उन्हें अभ्यास कर, रहस्यों की जानकारी मे प्रवीण हो वही विमानों के चलाने का अधिकारी है, दूसरा नहीं ।

ये ३२ रहस्य बड़े ही विचित्र तथा वैज्ञानिक ढग से बनाये हुए थे। आजकल के विमानो मे भी वह विचित्रता नहीं पाई जाती । इन ३२ रहस्यों को पूरा लिखना लेख की काया को बहुत बड़ा करना है। पाठकों को ज्ञान तथा अपनी पुरानी कला-कौशल के विकास की झाकी दिखाने के लिए कुछ यन्त्रों का नीचे वर्णन करते हैं :—

१ पहले कुछ रहस्यों के वर्णन में वह अनेक प्रकार की शक्तियों, जैसे छिन्नमस्ता, भैरवी, वेगिनी, सिद्धाम्बा आदि को प्राप्त कर, उनको विभिन्न मार्गों या प्रयोगों जैसे—घुटिका, पादुका, दृश्य, अदृश्यशक्ति मार्गों और उन शक्तियों को विभिन्न कलाओं में सयोजन करके अभेदत्व, अछेदत्व, अदाहत्व, अविनाशत्व आदि गुणों को प्राप्त कर उन्हें विमान-रचना क्रिया मे प्रयोग करने की विधियाँ बताई हैं। साथ ही महामाया, शाम्बरादि तान्त्रिकशास्त्रों (Technical Literatures) द्वारा अनेक प्रकार की शक्तियों के अनुष्ठानों के रहस्य वर्णित किये हैं। यह लिखा है कि विमानविद्या मे प्रवीण अति अनुभवी विद्वान् विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु तथा मय आदि कृतकों (Builders or constructors) के ग्रथ उस समय उपलब्ध थे। रामायण में लिखा है कि 'पुष्पक' विमान के आविष्कारक या मान्त्रिक (Theorist) अगस्त्य ऋषि थे पर उसके निर्माण कर्त्ता विश्वकर्मा थे।

२ आकाश-परिधि-मण्डलों के सधिस्थानों में शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं और जब विमान इन सधि-स्थानों मे प्रवेश करता है तो शक्तियाँ उसका सम्मर्दन कर चूर-चूर कर सकती हैं अत. उन सधियों में प्रवेश करने से पूर्व ही सूचना देने वाला "रहस्य" विमान में लगा होता था जो उसका उपाय करने को सावधान कर देता था। क्या यह आजकल के (Radar) के समान यन्त्र का बोध नहीं देता ?

३ माया विमान वा अदृश्य विमान को दृश्य और अपने विमान को अदृश्य कर देने वाले यन्त्र रहस्य विमानों में होते थे।

४. सकोचन रहस्य—शत्रु के विमानों से घिरे अपने विमान को भाग निकलने के लिये अपने विमान की काया को ही सिकुड़ कर छोटा करके वेग को बहुत बढ़ा कर विमान में लगी एक ही कीली से यह प्रभाव प्राप्त किया जाने वाला रहस्य भी होता था। आजकल कोई भी विमान ऐसा अपने शरीर को छोटा या बड़ा नहीं कर सकता। प्राचीन विमान में एक ऐसा भी 'रहस्य' लगा होता था जिसे एक से दस रेखा तक चलाने से विमान उतना ही विस्तृत भी हो सकता था।

इसी प्रकार अन्य अनेकों 'रहस्य' वर्णित हैं जिनके द्वारा विमान के अनेक रूप चलते-चलते बदले जा सकते थे जैसे अनेक प्रकार के धूम्रों की सहायता से महाभयप्रद काया का विमान, या सिंह, व्याघ्र, भालू, सर्प, गिरि, नदी वृक्षादि आकार के या अति सुन्दर, अप्सरारूप, पुष्पमाला से सेवित रूप भी अनेक प्रकार की किरणों की सहायता से बना लिये जाते थे। हो सकता है ये Play of colours, spectrums द्वारा उत्पन्न किये जाते हों।

५ तमोमय रहस्य द्वारा अपनी रक्षार्थ अधेरा भी उत्पन्न कर सकते थे। इसी प्रकार विमान के अगले भाग में सहारयन्त्रनाल द्वारा सप्त जातीय धूम को षड्गर्भविवेकशास्त्र में बताये अनुसार विद्युत् ससर्ग (Expansion of gases by electric sparks) से पाच स्कन्ध-वात नाली मुखों से निकली तरगों वाली प्रलयनाशक्रियारूपी "प्रलय रहस्य" का वर्णन भी है।

६ महाशब्दविमोहन रहस्य शत्रु के क्षेत्रों में बम बरसाने की अपेक्षा विमान मे महाशब्दकारक ६२ ध्मानकलासंघण शब्द (By 62 blowing chambers) जो एक महाभयानक शब्द उत्पन्न करता था, जिससे शत्रुओं के मस्तिष्क पर किञ्चुप्रमाण कम्पन (Vibrations) उत्पन्न कर देता था और उसके प्रभाव से स्मृति-विस्मरण हो शत्रु मोहित या मूर्च्छित हो जाते थे। आजकल के Acoustic science (शब्द विज्ञान) के जानने वाले जानते हैं कि शब्दतरगें इस प्रकार की उत्पन्न की जा सकती हैं जो पत्थर की दीवार पर यदि टकराई जाय तो उस दीवार को भी तोड़ दे, मस्तिष्क का तो कहना ही क्या। इस प्रकार Acoustics विद्या-कोविद विमान में "महाशब्द-विमोहनरहस्य" के प्रभाव को सच्चा सिद्ध करता है।

विमान की विचित्र गतियों अर्थात् सर्पवत् गति आदि को उत्पन्न करना एक ही कीली के आधार पर रखा गया था। इसी प्रकार शत्रु के विमान में अत्यन्त वेगवान कम्पन करने का "चापलरहस्य" भी होता था। इस रहस्य के विषय में

लिखा है कि विमान के मध्य में एक कीली या लीवर (lever) लगा होता था। जिसके चलाने मात्र से एक चुटकी भर के छोटे से काल में (एकछोटिकावछिन्नकाले) ४०८७ वेग की तरगें उत्पन्न हो जाएँगी और उन्हें यदि शत्रु-विमान की ओर अभिमुख कर दिया जाये तो शत्रुविमान वेग से चक्कर खाकर खण्डित हो जायेगा।

"परशब्दग्राहक" या "रूपाकर्षक" तथा "क्रियाग्रहणरहस्य" का भी वर्णन दिया हुआ है। उस समय का परशब्दग्राहक यत्र आजकल के रेडियो से अधिक उत्तम इसलिये था क्योंकि आजकल तब तक radio शब्द ग्रहण नहीं करता जबतक दूसरी ओर से शब्द को प्रसारित (broadcast) न किया जाये। कोई भी व्यक्ति अपनी बातें शत्रु के लिये प्रसारित नहीं करता तथापि उस समय का परशब्दग्राहकरहस्य सब कुछ ग्रहण कर लेता था। वहाँ लिखा है—"परविमानस्थजनसम्भाषणादि सर्वं शब्दाकर्षण" अर्थात् शब्द पकड़ते थे। इसी प्रकार परविमानस्थित वस्तुरूपाकर्षण भी करने के यन्त्र थे। "क्रियाग्रहणरहस्य" विशेष रश्मियों और द्रावक शक्ति तथा सप्तवर्गी सूर्य-किरणों को दर्पण द्वारा एक शुद्धपट (White screen) पर प्रसारित करने पर दूसरों के विमान या पृथिवी अथवा अतरिक्ष में जहाँ कहीं कोई भी क्रिया हो रही होती थी उसके स्वरूप प्रतिबिम्ब (Images) शुद्धपट पर मूर्तिवत् चित्रित हो जाते थे जिसे देख कर दूसरों की सब क्रियाओं का पता चल जाता था। यह आजकल के Kinometography या Television के समान यन्त्र था।

अपने प्राचीन विमानों की विशेषताओं का कितना और वर्णन किया जावे, इस प्रकार के अनेकों अद्भुत चमत्कार करने वाले यंत्र हमारे विद्वान् खेटशास्त्री जानते थे। स्थानाभाव के कारण इन यन्त्रों के विषय में अधिक नहीं लिख सकते इसलिये तीसरे तथा चौथे सूत्र का सक्षेप में वर्णन करते हैं।
तीसरा सूत्र है पञ्चज्ञश्च १। ३॥

बोधानन्द की वृत्ति है कि पाँचों को जानने वाला ही अधिकारी चालक हो सकता है। उसने आकाश में पाँच प्रकार के आवर्त, भ्रमर या बवण्डरों का वर्णन किया है। "पञ्चावर्त" का शौनक ने विस्तार से वर्णन किया है। वे हैं रेखापथ, मण्डल, कक्ष्य, शक्ति तथा केन्द्र। ये ५ प्रकार के मार्ग (Space spheres) आकाश में विमानों के लिये बताये हैं।

इन्हें 'शौनक शास्त्र" में "आकूर्माद्वारुणान्त" अर्थात् कूर्म से लेकर वरुण पर्यन्त कहा है। आगे इनकी गणना की हुई है कि ये Spheres या क्षेत्र कितनी-कितनी दूर तक फैले हुए हैं और लिखा है कि इस प्रकार वाल्मीकि-गणित से ही गणित-शास्त्र के पारगत विद्वानों ने ऊपर के विमान-मार्गों का निर्णय धारित किया है। उनका कथन है कि दो प्रवाहों के ससर्ग से आवर्तन होते हैं और इनके सधिस्थानों में विमान फँसकर तरगों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है। आजकल भी कई बार अनायास ही इन आवर्तों मे फँस जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं, ऐसी दुर्घटनाएँ देखने में आती हैं। "मार्गनिबन्ध" ग्रथ में गणित इतनी जटिल त्रिकोणमिति (Trignometry) आदि द्वारा वर्णित है जो सर्वसाधारण के लिये अति कठिन है अतः उनका यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है।

चौथा सूत्र है "अङ्गान्येकत्रिंशत्"। बोधानन्द व्याख्या करके बताते हैं कि शास्त्रों में सब विमानों के अग तथा प्रत्यङ्गों का परस्पर अगागीभाव होना उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के अङ्गों में होना। विमान के अङ्ग ३१ होते हैं और उन अङ्गों को विमान के किस-किस भाग में किस-किस अग को लगाया या रखा जावे, यह "छायापुरुषशास्त्र" में भलीभाँति वर्णित है। आजकल विमानशास्त्री इस ज्ञान को Aeronautic architecture नाम देते हैं। विमान-चालक के सुलभ और शीघ्र इन अगों को प्रयोग में लाने के लिये इन अगों की उचित स्थिति इस सूत्र की व्याख्यावृत्ति निर्देशन कर रही है।

इन अगों की स्थितियों में सबसे पहिले "विश्वक्रियादर्शन" (Paranomic view of cosmos) दर्पण का स्थान बताया है, पुन परिवेष-स्थान, अग-सकोचन यन्त्र स्थान होते हैं। विमानकण्ठ में कुण्ठिणीशक्तिस्थान, पुष्पिणीपिञ्जुलादर्श, नालपञ्चक, गुहागर्भादर्श, पञ्चावर्तकस्कन्धनाल, रौद्रीदर्पण, शब्दकेन्द्रमुख, विद्युद्द्वादशक, प्राणकुण्डलीसंस्थान, वक्रप्रसारणस्थान, शक्तिपञ्जरस्थान, शिरःकील, शब्दाकर्षक, पटप्रसारणस्थान, दिशाम्पति, सूर्य-शक्तिआकर्षणपञ्जर (Solar energy absorption system) इत्यादि यन्त्रों के उचित स्थानों का न्यासन किया हुआ है।

ऊपर वर्णित अनेकों शक्तिजनक सस्थानों, उनके प्रयोग की कलाओं तथा अनेक यन्त्रों के विषय में पढ कर स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे

पूर्वज कितने विज्ञान कोविद थे और विमानादि अनेक कलाओं के बनाने में अत्यन्त निपुण थे। विज्ञान प्राप्ति के कई ढग व मार्ग हैं। यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रकार से पश्चिमी विद्वान् जिन तथ्यों पर पहुँचे हैं वही एक विधि है। हमारे पूर्वजों ने अधिक सरल विधियों से उतनी ही योग्यता प्राप्त की जितनी आजकल पश्चिमी ढग में बड़े-बड़े भवनों व प्रयोगशालाओं द्वारा प्राप्त की जा रही है। इसलिये हमारा एतद्देशीय विद्वानों तथा विज्ञानवेत्ताओं से साग्रह सविनय अनुरोध है कि अपने पुराने प्राप्त साहित्य को व्यर्थ व पिछड़ा हुआ (Out of date) समझ कर न फटकारें वरन् ध्यान तथा आन्वेषिकी दृष्टि तथा विश्वास से परखें। हमारी धारणा है कि उनका परिश्रम व्यर्थ न होगा और बहुमूल्य आविष्कार प्राप्त होंगे।

—डा० एस० के० भारद्वाज

प्राक्कथन

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, लाक्षणिक साहित्य से सम्बन्धित है। इसके लेखक हैं प० अंबालाल प्रे० शाह। आप अहमदाबादस्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर मे पिछले कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाग के लेखन में आपने यथेष्ट श्रम किया है तथा लाक्षणिक साहित्य के विविध अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपकी मातृभाषा गुजराती होने पर भी मेरे अनुरोध को स्वीकार कर आपने प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी में निर्माण किया है। ऐसी स्थिति मे ग्रन्थ में भाषाविषयक सौष्ठव का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में कदाचित् न हो पाया हो, यह स्वाभाविक है। वैसे सम्पादकों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि ग्रन्थ के भाव एवं भाषा दोनों यथासम्भव अपने सही रूप में रहे।

इस भाग से पूर्व प्रकाशित चारो भागों का विद्वत्समाज और सामान्य पाठकवृन्द ने हार्दिक स्वागत किया है। आगमिक व्याख्याओं से सम्बन्धित तृतीय भाग उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा १५००) रु० के रवीन्द्र पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुआ है। प्रस्तुत भाग भी विद्वानों व अन्य पाठकों को उसी प्रकार पसद आएगा, ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ-लेखक प० अंबालाल प्रे० शाह का तथा सम्पादक पूज्य पं० दलसुखभाई का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। ग्रथ के मुद्रण के लिए ससार प्रेस का तथा प्रूफ-सशोधन आदि के लिए सस्थान के शोध-सहायक प० कपिलदेव गिरि का आभार मानता हूँ।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी—५
२९ १२ ६९

मोहनलाल मेहता
अध्यक्ष

प्रस्तुत पुस्तक में

कक्षापट वृत्ति
बृहद्वृत्ति टिप्पण
हैमोदाहरण वृत्ति
परिभाषा वृत्ति
हैमदशपादविशेष और हैमदशपादविशेषार्थ
बलाबलसूत्रवृत्ति
क्रियारत्नसमुच्चय
न्यायसंग्रह
स्यादिशब्दसमुच्चय
स्यादिव्याकरण
स्यादिशब्ददीपिका
हैमविभ्रम टीका
कविकल्पद्रुम
कविकल्पद्रुम-टीका
तिङन्वयोक्ति
हैमधातुपारायण
हैमधातुपारायण-वृत्ति
हैमलिंगानुशासन
हैमलिंगानुशासन-वृत्ति
दुर्गपदप्रबोध-वृत्ति
हैमलिंगानुशासन-अवचूरि
गणपाठ
गणविवेक
गणदर्पण
प्रक्रियाग्रंथ
हैमलघुप्रक्रिया
हैमबृहत्प्रक्रिया
हैमप्रकाश
चंद्रप्रभा
हैमशब्दप्रक्रिया
हैमशब्दचंद्रिका
हैमप्रक्रिया

ला
क्ष
णि
क
सा
हि
त्य

पहला प्रकरण

व्याकरण

व्याकरण की व्याख्या करते हुए किसी ने इस प्रकार कहा है :

"प्रकृति-प्रत्ययोपाधि-निपातादि विभागशः ।
यदन्वाख्यानकरण शास्त्रं व्याकरण विदुः ॥"

अर्थात् प्रकृति और प्रत्ययों के विभाग द्वारा पदों का अन्वाख्यान—स्पष्टीकरण करनेवाला शास्त्र 'व्याकरण' कहलाता है।

व्याकरण द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट की जाती है। व्याकरण के सूत्र संज्ञा, विधि, निषेध, नियम, अतिदेश एवं अधिकार—इन छः विभागों में विभक्त हैं। प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण और सिद्धि—ये छः अंग होते हैं। संक्षेप में कहें तो भाषा-विकृति को रोककर भाषा के गठन का बोध करानेवाला शास्त्र व्याकरण है।

वैयाकरणों ने व्याकरण के विस्तार और दुष्करता का ध्यान दिलाते हुए व्याकरण का अध्ययन करने की प्रेरणा इस प्रकार दी है :

"अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं,
स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्ना ।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥"

अर्थात् व्याकरण-शास्त्र का अन्त नहीं है, आयु स्वल्प है और बहुत से विघ्न हैं, इसलिये जैसे हंस पानी मिले हुए दूध में से सिर्फ दूध ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार निरर्थक विस्तार को छोड़कर साररूप (व्याकरण) को ग्रहण करना चाहिये।

यद्यपि व्याकरण के विस्तार और गहराई में न पड़े तथापि भाषा प्रयोगों में अनर्थ न हो और अपने विचार लौकिक और सामयिक शब्दों द्वारा दूसरों को स्फुट और सुचारु रूप से समझा सकें इसलिये व्याकरण का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। व्याकरण से ही तो ज्ञान मूर्तरूप बनता है।

व्याकरणों की रचना प्राचीन काल से होती रही है फिर भी व्याकरण-तंत्र की प्रणालि की वैज्ञानिक एवं नियमबद्ध रीति से नींव डालनेवाले महर्षि पाणिनि (ई० पूर्व ५०० से ४०० के बीच) माने जाते हैं। यद्यपि ये अपने पूर्वज वैयाकरणों का सादर उल्लेख करते हैं परन्तु उन वैयाकरणों का प्रयत्न न व्यवस्थित था और न शृंखलाबद्ध ही। ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी जैसे छोटे-से सूत्रबद्ध ग्रंथ में संस्कृत भाषा का सार-निचोड़ लेकर भाषा का ऐसा बांध निर्मित किया कि उन सूत्रों के अलावा सिद्ध प्रयोगों को अपभ्रष्ट करार दिये गए और उनके बाद होनेवाले वैयाकरणों को सिर्फ उनका अनुसरण ही करना पड़ा। उनके बाद वररुचि (ई० पूर्व ४०० से ३०० के बीच), पतञ्जलि, चन्द्रगोमिन् आदि अनेक वैयाकरण हुए, जिन्होंने व्याकरण-शास्त्र का विस्तार, स्पष्टीकरण, सरलता, लघुता आदि उद्देश्यों को लेकर अपनी नई-नई रचनाओं द्वारा विचार उपस्थित किए। प्रस्तुत प्रकरण में केवल जैन वैयाकरण और उनके ग्रन्थों के विषय में संक्षिप्त जानकारी कराई जाएगी।

ऐतिहासिक विवेचन से ऐसा जान पड़ता है कि जब ब्राह्मणों ने शास्त्रों पर अपना सर्वस्व अधिकार जमा लिया तब जैन विद्वानों को व्याकरण आदि विषय के अपने नये ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा मिली जिससे इस व्याकरण विषय पर जैनाचार्यों के स्वतंत्र और टीकात्मक ग्रन्थ आज हमें शताधिक मात्रा में सुलभ हो रहे हैं। जिन वैयाकरणों की छोटी-बड़ी रचनाएँ जैन भंडारों में अभी तक अज्ञातावस्था में पड़ी हैं वे इस गिनती में नहीं है।

कई आचार्यों के ग्रन्थों का नामोल्लेख मिलता है परन्तु वे कृतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। जैसे क्षपणकरचित व्याकरण, उसकी वृत्ति और न्यास, मल्लवादीकृत 'विश्रान्तविद्याधर-न्यास', पूज्यपादरचित 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर अपना स्वोपज्ञ 'न्यास' और 'पाणिनीय व्याकरण' पर 'शब्दावतार-न्यास', भद्रेश्वररचित 'दीपकव्याकरण' आदि अद्यापि उपलब्ध नहीं हुए हैं। उन वैयाकरणों ने न केवल जैनरचित व्याकरण आदि ग्रन्थों पर ही टीका-टिप्पण लिखे अपितु जैनेतर विद्वानों के व्याकरण आदि ग्रन्थों का समादर करते हुए टीका, व्याख्या, विवरण आदि निर्माण करने की उदारता दिखाई है, तभी तो वे ग्रन्थकार जैनेतर विद्वानों के साथ ही साथ भारत के साहित्य-प्रांगण में अपनी प्रतिभा से गौरवपूर्ण आसन जमाये हुए हैं। उन्होंने सैंकड़ों ग्रन्थों का निर्माण करके जैनविद्या का मुख उज्ज्वल बनाने की कोशिश की है।

भगवान् महावीर के पूर्व किसी जैनाचार्य ने व्याकरण की रचना की हो ऐसा नहीं लगता। 'ऐन्द्रव्याकरण' महावीर के समय (ई० पूर्व ५९०) में बना। 'सद्दपाहुड' महावीर के पिछले काल (ई० पूर्व ५५७) में बना। लेकिन इन दोनो व्याकरणों में से एक भी उपलब्ध नहीं है। उसके बाद दिगंबर जैनाचार्य देवनन्दि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' की रचना विक्रम की छठी शताब्दी में की जिसे उपलब्ध जैन व्याकरण-ग्रन्थों में सर्वप्रथम रचना कह सकते हैं। इसी तरह यापनीय संघ के आचार्य शाकटायन ने लगभग वि० सं० ९०० में 'शब्दानुशासन' की रचना की, यह यापनीय संघ का और जैनो का उपलब्ध दूसरा व्याकरण है। आचार्य बुद्धिसागर सूरि ने 'पञ्चग्रन्थी' व्याकरण वि० सं० १०८० में रचा है, जिसे श्वेताम्बर जैनों के उपलब्ध व्याकरण-ग्रन्थों में सर्वप्रथम रचना कह सकते है। उसके बाद हेमचन्द्र सूरि ने 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' की रचना पचांगो से युक्त की है, इसके बाद जिनका ब्यौरेवार वर्णन हम यहां कर रहे हैं, ऐसे और भी अनेक वैयाकरण हुए हैं जिन्होंने स्वतंत्र व्याकरणों की या टीका, टिप्पण तथा आंशिक रूप से व्याकरण-ग्रन्थों की रचनाएँ की है।

ऐन्द्र-व्याकरण :

प्राचीन काल में इन्द्र नामक आचार्य का बनाया हुआ एक व्याकरण-ग्रन्थ था[1] परन्तु वह विनष्ट हो गया है[2]। ऐन्द्र-व्याकरण के लिये जैन ग्रन्थों में ऐसी परम्परा एवं मान्यता है कि भगवान् महावीर ने इन्द्र के लिये एक शब्दानुशासन कहा, उसे उपाध्याय (लेखाचार्य) ने सुनकर लोक में ऐन्द्र नाम से प्रगट किया[3]।

ऐसा मानना अतिरेकपूर्ण कहा जायगा कि भगवान् महावीर ने ऐसे किसी व्याकरण की रचना की हो और वह भी मागधी या प्राकृत में न होकर ब्राह्मणों की प्रमुख भाषा संस्कृत में ही हो।

---

१ डॉ० ए० सी० बर्नेल ने ऐन्द्रव्याकरण-सम्बन्धी चीनी, तिब्बतीय और भारतीय साहित्य के उल्लेखों का संग्रह करके 'ऑन दी ऐन्द्र स्कूल आफ ग्रामेरियन्स' नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है।

२. 'तेन प्रणष्टमैन्द्रं तदस्माद् भुवि व्याकरणम्'—कथासरित्सागर, तरंग ४

३ सक्को अ तस्समक्खं भगवंतं आसणे निवेसित्ता।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं ॥—आवश्यकनिर्युक्ति और हारिभद्रीय 'आवश्यकवृत्ति' भा०१, पृ० १८२.

पिछले जैन ग्रन्थकारों ने तो 'जैनेन्द्रव्याकरण' को ही 'ऐन्द्र' व्याकरण के तौरपर बताने का प्रयत्न किया है[1]। वस्तुत. 'ऐन्द्र' और 'जैनेन्द्र'—ये दोनों व्याकरण भिन्न-भिन्न थे। जैनेन्द्र से अति प्राचीन अनेक उल्लेख 'ऐन्द्रव्याकरण' के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं.

दुर्गाचार्य ने 'निरुक्त-वृत्ति' पृ० १० के प्रारम्भ में 'इन्द्र-व्याकरण' का सूत्र इस प्रकार बताया है: 'शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूह.' इति ऐन्द्र-व्याकरणस्य।'

जैन 'शाकटायन व्याकरण' (सूत्र—१ २ ३७) में 'इन्द्र व्याकरण' का मत प्रदर्शित किया है।

'चरक' के व्याख्याता भट्टारक हरिश्चन्द्र ने 'इन्द्र व्याकरण' का निर्देश इस प्रकार किया है 'शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूह' इति ऐन्द्र-व्याकरणस्य।'

दिगम्बराचार्य सोमदेवसूरि ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' (आश्वास १, पृ० ९०) मे 'इन्द्र व्याकरण' का उल्लेख किया है।

'ऐन्द्र व्याकरण' की रचना ईसा पूर्व ५९० में हुई होगी ऐसा विद्वानों का मत है। परन्तु यह व्याकरण आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

शब्दप्राभृत (सद्दपाहुड) :

जैन आगमों का १२ वॉ अग 'दृष्टिवाद' के नाम से था, जो अब उपलब्ध नहीं है। इस अग मे १४ पूर्व सनिविष्ट थे। प्रत्येक पूर्व का 'वस्तु' और वस्तु का अवातर विभाग 'प्राभृत' नाम से कहा जाता था। 'आवश्यक-चूर्णि', 'अनुयोग-द्वार-चूर्णि' (पत्र, ४७), सिद्धसेनगणिकृत 'तत्त्वार्थसूत्र-भाष्य-टीका' (पृ० ५०) और मलधारी हेमचन्द्रसूरिकृत 'अनुयोगद्वारसूत्र-टीका' (पत्र, १५०) मे 'शब्दप्राभृत' का उल्लेख मिलता है।

सिद्धसेनगणि ने कहा है कि "पूर्वों में जो 'शब्दप्राभृत' है, उसमें से व्याकरण का उद्भव हुआ है।"

'शब्दप्राभृत' लुप्त हो गया है। वह किस भाषा में था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ऐसा माना जाता है कि चौदह पूर्व सस्कृत भाषा में

---

१. विनयविजय उपाध्याय (स० १६९६) और लक्ष्मीवल्लभ मुनि (१८ वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र को ही भगवत्प्रणीत बताया है।

थे। इसलिये 'शब्दप्राभृत' भी संस्कृत में रहा होगा ऐसी सम्भावना हो सकती है।

क्षपणक-व्याकरण :

व्याकरणविषयक कई ग्रन्थों में ऐसे उद्धरण मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि किसी क्षपणक नाम के वैयाकरण ने किसी शब्दानुशासन की रचना की है। 'तन्त्रप्रदीप' में क्षपणक के मत का एकाधिक बार उल्लेख आता है[1]।

कवि कालिदासरचित 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ में विक्रमादित्य राजा की सभा के नव रत्नों के नाम उल्लिखित हैं, उनमें क्षपणक भी एक थे[2]।

कई ऐतिहासिक विद्वानों के मतव्य से जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर का ही दूसरा नाम क्षपणक था।

दिगम्बर जैनाचार्य देवनन्दि ने सिद्धसेन के व्याकरणविषयक मत का 'वेत्ते सिद्धसेनस्य ॥ ५. १ ७ ॥' इस सूत्र से उल्लेख किया है।

उज्ज्वलदत्त विरचित 'उणादिवृत्ति' में 'क्षपणकवृत्तौ अत्र 'इति' शब्द आद्यर्थे व्याख्यातः ॥'इस प्रकार उल्लेख किया है, इससे मालूम पड़ता है कि क्षपणक ने वृत्ति, धातुपाठ, उणादिसूत्र आदि के साथ व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की होगी।

मैत्रेयरक्षित ने 'तन्त्रप्रदीप' (४ १ १५५) सूत्र में 'क्षपणक महान्यास' उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि क्षपणक-रचित व्याकरण पर 'न्यास' की रचना भी हुई होगी।

यह क्षपणकरचित शब्दानुशासन, उसकी वृत्ति, न्यास या उसका कोई अंग आजतक प्राप्त नहीं हुआ

---

१. मैत्रेयरक्षित ने अपने 'तन्त्रप्रदीप' में—'अतएव नावमात्मानं मन्यते इति विग्रहपरत्वादनेन ह्रस्वत्वं बाधित्वा अमागमे सति 'नावं मन्ये' इति क्षपणक-व्याकरणे दर्शितम्।' ऐसा उल्लेख किया है—भारत कौमुदी, भा० २, पृ० ८९३ की टिप्पणी।

२. क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कू वेतालभट्ट-घटकर्पर-कालिदासा ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

जैनेन्द्र-व्याकरण (पञ्चाध्यायी) :

इस व्याकरण के कर्ता देवनन्दि दिगम्बर-सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके पूज्य-पाद[1] और जिनेन्द्रबुद्धि[2] ऐसे दो और नाम भी प्रचलित थे। 'देव' इस प्रकार संक्षिप्त नाम से भी लोग उन्हें पहिचानते थे। उन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। लक्षणशास्त्र में देवनंदि उत्तम ग्रंथकार माने गये हैं।[3] इनका समय विक्रम की छठी शताब्दी है।

बोपदेव ने जिन आठ प्राचीन वैयाकरणों का उल्लेख किया है उनमें जैनेन्द्र भी एक हैं। ये देवनन्दि या पूज्यपाद विक्रम की छठी शताब्दी में विद्यमान थे ऐसा विद्वानों का मतव्य है[4]। जहाँ तक मालूम हुआ है, जैनाचार्य द्वारा रचे गये मौलिक व्याकरणों में 'जैनेन्द्र व्याकरण' सर्वप्रथम है।

---

१ यश कीर्त्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकर ॥—नन्दीसंघपट्टावली।

२ एक जिनेन्द्रबुद्धि नाम के बोधिसत्त्वदेशीयाचार्य या बौद्ध साधु विक्रम की ८वीं शताब्दी में हुए थे, जिन्होंने 'पाणिनीय व्याकरण' की 'काशिकावृत्ति' पर एक न्यासग्रन्थ की रचना की थी, जो 'जिनेन्द्रबुद्धि-न्यास' के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन ये जिनेन्द्रबुद्धि उनसे भिन्न हैं। यह तो पूज्यपाद का नामान्तर है, जिनके विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है :
'जिनवद् बभूव यदनङ्गचापहृत् स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधु वर्णितः।'
—श्रवण बेलगोल के स० १०८ (२८५) का मगराजकवि (स० १५००) कृत शिलालेख, श्लोक १६

३ 'प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्'।—धनञ्जयनाममाला, श्लोक २०. 'सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिप श्रीपूज्यपाद स्वयम्।', 'शब्दाश्च येन (पूज्यपादेन) सिद्ध्यन्ति।'— ये सब प्रमाण उनके महावैयाकरण होने के परिचायक हैं।

४ नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ११५–११७.

इस व्याकरण में पाँच अध्याय होने से इसे 'पञ्चाध्यायी' भी कहते हैं। इसमें प्रकरण-विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधानक्रम को लक्ष्य कर सूत्र-रचना की गई है। एकशेष प्रकरण-रहित याने अनेकशेष रचना इस व्याकरण की अपनी विशेषता है। संज्ञाएँ अल्पाक्षरी हैं और 'पाणिनीय व्याकरण' के आधारपर यह ग्रन्थ है परन्तु अर्थगौरव बढ जाने से यह व्याकरण क्लिष्ट बन गया है। यह लौकिक व्याकरण है, इसमें छांदस् प्रयोगों को भी लौकिक मानकर सिद्ध किये गये हैं।

देवनंदि ने इसमे श्रीदत्त[1], यशोभद्र[2], भूतबलि[3], प्रभाचन्द्र[4], सिद्धसेन[5] और समंतभद्र[6]—इन प्राचीन जैनाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। परन्तु इन आचार्यों का कोई भी व्याकरण-ग्रंथ अद्यापि प्राप्त नहीं हुआ है, न कहीं इनके वैयाकरण होने का उल्लेख ही मिलता है।

जैनेन्द्रव्याकरण' के दो तरह के सूत्रपाठ मिलते हैं। एक प्राचीन है, जिसमे ३००० सूत्र हैं, दूसरा संशोधित पाठ है, जिसमें ३७०० सूत्र हैं। इनमे भी सब सूत्र समान नहीं हैं और संज्ञाओं में भी भिन्नता है। ऐसा होने पर भी बहुत अंश में समानता है। दोनों सूत्रपाठों पर भिन्न-भिन्न टीकाग्रन्थ हैं, उनका परिचय अलग दिया गया है।

प० कल्याणविजयजी गणि इस व्याकरण की आलोचना करते हुए इस प्रकार लिखते हैं :

"जैनेन्द्रव्याकरण आचार्य देवनन्दि की कृति मानी जाती है, परतु इसमे जिन जिन आचार्यों के मत का उल्लेख किया गया है, उनमें एक भी व्याकरणकार होने का प्रमाण नहीं मिलता। हमें तो ज्ञात होता है कि पिछले किन्हीं दिगम्बर जैन विद्वानों ने पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रों को अस्त-व्यस्त कर यह कृत्रिम व्याकरण बनाकर देवनन्दि के नाम पर चढा दिया है।"[7]

---

१ 'गुणे श्रीदत्तस्यास्त्रियाम्' ॥ १. ४ ३४ ॥
२ 'कृवृषिमृजा यशोभद्रस्य' ॥ २ १ ९९ ॥
३. 'राद् भूतबले' ॥ ३ ४. ८३ ॥
४ 'रात्रैः कृतिप्रभाचन्द्रस्य' ॥ ४. ३ १८० ॥
५ 'वेत्ते सिद्धसेनस्य' ॥ ५ १ ७ ॥
६ 'चतुष्टय समन्तभद्रस्य' ॥ ५ ४. १४० ॥
७ 'प्रबन्ध-पारिजात' पृ० २१४

जैनेन्द्रन्यास, जैनेन्द्रभाष्य और शब्दावतारन्यास :

देवनन्दि या पूज्यपाद ने अपने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर स्वोपज्ञ न्यास और 'पाणिनीय व्याकरण' पर 'शब्दावतार' न्यास की रचना की है, ऐसा शिमोगा जिला के नगर तहसील के ४६ वें शिलालेख से ज्ञात होता है। इस शिलालेख में इन दोनों न्यास-ग्रन्थों के उल्लेख का पद्यांश इस प्रकार है :

'न्यासं 'जैनेन्द्र'संज्ञं सकलबुधनतं पाणिनीयस्य भूयो,
न्यासं 'शब्दावतारं' मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा।'

श्रुतकीर्ति ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' की 'पंचवस्तु' नामक टीका में 'भाष्योऽथ शय्यातलम्'—व्याकरणरूप महल में भाष्य शय्यातल है—ऐसा उल्लेख किया है। इसके आधार पर 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर 'स्वोपज्ञ भाष्य' होने का भी अनुमान किया जाता है लेकिन यह भाष्य या उपर्युक्त दोनों न्यासों में से कोई भी न्यास प्राप्त नहीं हुआ है।

महावृत्ति (जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति) :

अभयनंदि नामक दिगम्बर जैन मुनि ने देवनन्दि के असली सूत्रपाठ पर १२००० श्लोक परिमाण टीका रची है, जो उपलब्ध टीकाओं में सबसे प्राचीन है। इनका समय विक्रम की ८–९वीं शताब्दी है।

'पंचवस्तु' टीका के कर्ता श्रुतकीर्ति ने इस वृत्ति को 'जैनेन्द्रव्याकरण' रूप महल के किवाड़ की उपमा दी है। वास्तव में इस वृत्ति के आधार पर दूसरी टीकाओं का निर्माण हुआ है। यह वृत्ति[1] व्याकरणसूत्रों के अर्थ को विशद शैली में स्फुट करने में उपयोगी बन पाई है।

अभयनन्दि ने अपनी गुरु-परंपरा या ग्रंथ-रचना का समय नहीं दिया है तथापि वे ८–९ वीं शताब्दी में हुए हैं ऐसा माना जाता है। डॉ० बेल्वेलकर ने अभयनंदि का समय सन् ७५० बताया है[2], परन्तु यह ठीक नहीं है। अभयनंदि के अन्य ग्रन्थों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

शब्दाम्भोजभास्करन्यास :

दिगंबराचार्य प्रभाचंद्र (वि० ११ वीं शती) ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर 'शब्दाम्भोजभास्कर' नाम से न्यास-ग्रन्थ की रचना लगभग १६००० श्लोक-परिमाण

---

१ यह वृत्ति भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित हुई है।
२. 'सिस्टम्स ऑफ ग्रामर' पैरा ५०

में की है। इस न्यास के अध्याय ४, पाद ३, सूत्र २११ तक की हस्त-लिखित प्रतियाँ मिलती हैं, शेष ग्रन्थ अभी तक हस्तगत नहीं हुआ है। बम्बई के 'सरस्वती-भवन' में इसकी दो अपूर्ण प्रतियाँ हैं। ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम पूज्यपाद और अकलङ्क को नमस्कार करके न्यास-रचना का आरंभ किया है। वे अपने न्यास के विषय में इस प्रकार कहते हैं :

शब्दानामनुशासनानि निखिलान्यध्यायताहर्निशं,
यो यः सारतरो विचारचतुरस्तल्लक्षणांशो गतः।
तं स्वीकृत्य तिलोत्तमेव विदुषां चेतश्चमत्कारकः
सुव्यक्तैरसमैः प्रसन्नवचनैर्न्यासः समारभ्यते ॥ ४ ॥

इस आरम्भ-वचन से ही उनके व्याकरणविषयक अध्ययन और पाण्डित्य का पता लग जाता है। वे अपने समय के महान् टीकाकार और दार्शनिक विद्वान् थे। यह उनके ग्रन्थों को देखते हुए मालूम होता है। न्यास में उन्होंने दार्शनिक शैली अपनाई है और विषय का विवेचन स्फुटरीति से किया है।

आचार्य प्रभाचंद्र धाराधीश भोजदेव और जयसिंहदेव के राजकाल में विद्यमान थे ऐसा उनके ग्रन्थों की प्रशस्तियों और शिलालेख से भी स्पष्ट होता है।[1] एक जगह तो यह भी कहा है कि भोजदेव उनकी पूजा करता था। भोजदेव का समय वि० सं० १०७० से ११२० माना जाता है, इससे इस न्यास-ग्रन्थ की रचना उसी के दरमियान में हुई हो ऐसा कह सकते हैं। पं० महेन्द्रकुमार ने न्यास-रचना का समय सन् ९८० से १०६५ बताया है।[2]

पञ्चवस्तु (जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति) :

'पञ्चवस्तु' टीका (वि० सं० ११४६) 'जैनेन्द्रव्याकरण' के प्राचीन सूत्रपाठ का प्रक्रिया-ग्रन्थ है। इसकी शैली सुबोध और सुंदर है। यह ३३०० श्लोक-प्रमाण है। व्याकरण के प्रारंभिक अभ्यासियों के लिये यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है।

---

1 श्रीधाराधिपभोजराजमुकुटप्रोताश्मरश्मिच्छटा-
छायाकुङ्कुमपङ्कलिप्तचरणाम्भोजातलक्ष्मीधवः।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्जरोदोमणि
स्थेयात् पण्डितपुण्डरीकतरणिः श्रीमान् प्रभाचन्द्रमाः ॥ १७ ॥
श्री चतुर्मुखदेवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः।
पण्डितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादिगजाङ्कुशः ॥ १८ ॥
—शिलालेख-संग्रह भा० १, पृ० ११८.

2 प्रमेयकमलमार्तण्ड-प्रस्तावना, पृ० ६७

जैनेन्द्रव्याकरणरूपी महल मे प्रवेश के लिये 'पञ्चवस्तु' को सोपान-पक्ति स्वरूप बताया गया है।[1] इसकी दो हस्तलिखित प्रतिया पूना के भाडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट में हैं।

यह ग्रन्थ किसने रचा, इसका हस्तलिखित प्रतियों के आदि-अत मे कोई निर्देश नहीं मिलता। केवल एक जगह सधि-प्रकरण में 'सधि त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्य.' ऐसा लिखा है। इस उल्लेख से उसके कर्ता श्रुतकीर्ति आचार्य थे यह स्पष्ट होता है।

'नन्दीसघ की पट्टावली' में 'त्रैविद्य श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्कर' इस प्रकार श्रुतकीर्ति को वैयाकरण-भास्कर बताया गया है।

श्रुतकीर्ति नामक अनेक आचार्य हुए है। उनमें मे यह श्रुतकीर्ति कौन से है यह ढूढना मुश्किल है। कन्नड भाषा के 'चद्रप्रभचरित' के कर्ता अग्गल कवि ने श्रुतकीर्ति को अपना गुरु बताया है

'इदु परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथश्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रवर्तिपदपद्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गलदेवविरचिते चन्द्र-प्रभचरिते।'

यह ग्रन्थ शक स० १०११ (वि० स० ११४६) में रचा गया है। यदि आर्य श्रुतकीर्ति और श्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रवर्ती एक ही हों तो 'पञ्चवस्तु' १२ वीं शताब्दी के प्रारभ मे रची गई है ऐसा मानना चाहिये।

लघु जैनेन्द्र (जैनेन्द्रव्याकरण-टीका) :

दिगबर जैन पडित महाचन्द्र ने विक्रम की १२ वीं शताब्दी म जैनेन्द्र-व्याकरण पर 'लघु जैनेन्द्र' नामक टीका की आचार्य अभयनन्दि की 'महावृत्ति' के आधार पर रचना की है।[2]

---

१ सूत्रस्तम्भसमुद्धृत प्रविलसन्न्यासोरुरत्नक्षिति-
श्रीमद्वृत्तिकपाटसपुटयुत भाष्योऽथ शय्यातलम्।
टीकामालमिहारुरुक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागम,
प्रासाद पृथुपञ्चवस्तुकमिद सोपानमारोहतात्॥

२ महावृत्ति शुम्भत् सकलबुधपूज्या सुखकरीं
विलोक्योद्यद्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रवहिताम्।
अनेके सच्छब्दैर्भ्रमविगतके सद्दढभूता (?)
प्रकुर्वेऽह [टीका] तनुमतिर्महाचन्द्रविबुध.॥

इसकी एक प्रति अकलेश्वर दिगबर जैन मदिर में और दूसरी अपूर्ण प्रति प्रतापगढ (मालवा) के पुराने जैन मदिर मे है।

शब्दार्णव (जैनेन्द्र-व्याकरण-परिवर्तित-सूत्रपाठ) :

आचार्य गुणनदि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' के मूल ३००० सूत्रपाठ को परिवर्तित और परिवर्धित करके व्याकरण को सर्वांगपूर्ण बनाने की कोशिश की है। इसका रचना-काल वि० स० १०३६ से पूर्व है।

शब्दार्णवप्रक्रिया के नाम से छपे हुए ग्रन्थ के अतिम श्लोक में कहा है :

'सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवे निर्णयं
नावत्या श्रयता विविक्षुमनसां साक्षात् स्वयं प्रक्रिया।'

अर्थात् गुणनदि ने जिसके शरीर को विस्तृत किया उस 'शब्दार्णव' मे प्रवेश करने के लिये यह प्रक्रिया साक्षात् नौका के समान है।

शब्दार्णवकार ने सूत्रपाठ के आधे से अधिक वे ही सूत्र रखे हैं, सज्ञाओ और सूत्रों में अतर किया है। इससे अभयनदि के स्वीकृत सूत्रपाठ के साथ ३००० सूत्रों का भी मेल नहीं है।

यह सभव है कि इस सूत्रपाठ पर गुणनदि ने कोई वृत्ति रची हो परतु ऐसा कोई ग्रन्थ अद्यापि उपलब्ध नहीं हुआ है।

गुणनदि नामके अनेक आचार्य हुए है। एक गुणनदि का उल्लेख श्रवण बेल्गोल के ४२, ४३ और ४७ वें शिलालेखा में है। उसके अनुसार वे बलाकपिन्छ के शिष्य और गृध्रपृन्छ के प्रशिष्य थे। वे तर्क, व्याकरण और साहित्यशास्त्र के निपुण विद्वान् थे। उनके पास ३०० शास्त्र-पारगत शिष्य थे, जिनमे ७२ शिष्य तो सिद्धान्त के पारगामी थे। आदिपप के गुरु देवेन्द्र के भी वे गुरु थे।[1] 'कर्नाटक कविचरिते' के कर्ता ने उनका समय वि० स० ९५७ निश्चित किया है। यही गुणनदि आचार्य 'शब्दार्णव' के कर्ता हों ऐसा अनुमान है।

---

१ तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिश्चारित्रचक्रेश्वर
तर्क-व्याकरणादिशास्त्रनिपुण साहित्यविद्यापति ।
मिथ्यात्वादिमदान्धसिन्धुरघटामघातकण्ठीरवो
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयता कन्दर्पदर्पापह ॥

शब्दार्णवचन्द्रिका (जैनेन्द्रव्याकरणवृत्ति) :

दिगम्बर सोमदेव मुनि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर आधारित आचार्य गुणनदि के 'शब्दार्णव' सूत्रपाठ पर 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम की एक विस्तृत टीका की रचना की थी। ग्रन्थकार ने स्वय बताया है :

'श्री सोमदेवयतिनिर्मितमादधाति या,
नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवारिधौ।'

अर्थात् शब्दार्णव मे प्रवेश करने के लिये नौका के समान यह टीका सोमदेव मुनि ने बनाई है।

इसमे शाकटायन के प्रत्याहारसूत्र स्वीकार किये गये हैं। यही क्या, जैनेन्द्र का टीकासाहित्य शाकटायन की कृति से बहुत कुछ उपकृत हुआ पाया जाता है।

शब्दार्णवप्रक्रिया (जैनेन्द्रव्याकरण-टीका) :

यह ग्रन्थ (वि० स० ११८०) 'जैनेन्द्रप्रक्रिया' नाम से छपा है और प्रकाशक ने उसके कर्ता का नाम गुणनन्दि बताया है परतु यह ठीक नहीं है। यद्यपि अन्तिम पद्यों मे गुणनन्दि का नाम है परन्तु यह तो उनकी प्रशसात्मक स्तुतिस्वरूप है :

'राजन्मृगाधिराजो गुणनन्दी भुवि चिरं जीयात्।'

ऐसी आत्मप्रशसा स्वय कर्ता अपने लिये नहीं कर सकता।

सोमदेव की 'शब्दार्णवचन्द्रिका' के आधार पर यह प्रक्रियाबद्ध टीका ग्रन्थ है।

तीसरे पद्य में श्रुतकीर्ति का नाम इस प्रकार उल्लिखित है :

'सोऽयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिपो भट्टारकोत्तंसकः।
रंरम्यान्मम मानसे कविपतिः सद्राजहंसश्चिरम्॥'

यह श्रुतकीर्ति 'पञ्चवस्तु'कार श्रुतकीर्ति से भिन्न होंगे, क्योंकि इसमें श्रुतिकीर्ति को 'कविपति' बताया है। सम्भवत श्रवण बेल्गोल के १०८वें शिलालेख में जिस श्रुतकीर्ति का उल्लेख है वही ये होंगे ऐसा अनुमान है। इस श्रुतकीर्ति का

समय वि० सं० ११८० बताया गया है।[1] इस श्रुतकीर्ति के किसी शिष्य ने यह प्रक्रिया ग्रन्थ बनाया।[2] पद्य में 'राजहंस' का उल्लेख है। क्या यह नाम कर्ता का तो नहीं है?

भगवद्वाग्वादिनी :

'कल्पसूत्र' की टीका में उपाध्याय विनयविजय और श्री लक्ष्मीवल्लभ ने निर्देश किया है कि 'भगवत्प्रणीत व्याकरण का नाम जैनेन्द्र है'। इसके अलावा कुछ नहीं कहा है। उससे भी बढ़कर रत्नर्षि नामक किसी मुनि ने 'भगवद्-वाग्वादिनी' नामक ग्रन्थ की रचना लगभग वि० स० १७९७ में की है उसमें उन्होंने जैनेन्द्र-व्याकरण के कर्ता देवनंदि नहीं परन्तु साक्षात् भगवान् महावीर हैं ऐसा बताने का प्रयत्न जोरों से किया है।

'भगवद्वाग्वादिनी' में जैनेन्द्र-व्याकरण का 'शब्दार्णवचन्द्रिकाकार' द्वारा मान्य किया हुआ सूत्रपाठ मात्र है और ८०० श्लोक-प्रमाण है।[3]

जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति :

'जैनेन्द्रव्याकरण' पर मेघविजय नामक किसी श्वेताम्बर मुनि ने वृत्ति[4] की रचना की है। ये हैमकौमुदी (चन्द्रप्रभा) व्याकरण के कर्ता ही हों तो इस वृत्ति की रचना १८वीं शताब्दी में हुई ऐसा मान सकते हैं।

अनिट्कारिकावचूरि :

'जैनेन्द्रव्याकरण' की अनिट्कारिका पर श्वेताम्बर जैन मुनि विजयविमल ने १७वीं शताब्दी में 'अवचूरि' की रचना की है[5]।

निम्नोक्त आधुनिक विद्वानों ने भी 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर सरल प्रक्रिया वृत्तियाँ बनाई हैं :

---

१ 'सिस्टम्स ऑफ ग्रामर' पृ० ६७.

२ नाथूराम प्रेमी 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ११५.

३. नाथूराम प्रेमी 'जैन साहित्य और इतिहास' परिशिष्ट, पृ० १२५.

४ इस वृत्ति-ग्रन्थ का उल्लेख 'राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रन्थसूची, भा० २ के पृ० २५७ में किया गया है। इसकी प्रति २६–४९ पत्रों की मिली है।

५ इसकी हस्तलिखित प्रति छाणी के भण्डार में (स० ५७८) है।

पं० वंशीधरजी ने 'जैनेन्द्रप्रक्रिया', पं० नेमिचन्द्रजी ने 'प्रक्रियावतार' और पं० राजकुमारजी ने 'जैनेन्द्रलघुवृत्ति'।

शाकटायन-व्याकरण :

पाणिनि वगैरह ने जिन शाकटायन नामक वैयाकरणाचार्य का उल्लेख किया है वे पाणिनि के पूर्व काल में हुए थे परन्तु जिनका 'शाकटायनव्याकरण' आज उपलब्ध है उन शाकटायन आचार्य का वास्तविक नाम तो है पाल्यकीर्ति और उनके व्याकरण का नाम है शब्दानुशासन। पाणिनिनिर्दिष्ट उस प्राचीन शाकटायन आचार्य की तरह पाल्यकीर्ति प्रसिद्ध वैयाकरण होने से उनका नाम भी शाकटायन और उनके व्याकरण का नाम 'शाकटायनव्याकरण' प्रसिद्धि में आ गया ऐसा लगता है।

पाल्यकीर्ति जैनों के यापनीय संघ के अग्रणी एवं बड़े आचार्य थे। वे राजा अमोघवर्ष के राज्य-काल में हुए थे। अमोघवर्ष शक सं० ७३६ (वि० सं० ८७१) में राजगद्दी पर बैठा। उसी के आसपास में यानी विक्रम की ९ वीं शती में इस व्याकरण की रचना की गई है।

इस व्याकरण में प्रकरण विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधान-क्रम का अनुसरण करके सूत्र-रचना की गई है।

यद्यपि प्रक्रिया-क्रम की रचना करने का प्रयत्न किया है परन्तु ऐसा करने से क्लिष्टता और विप्रकीर्णता आ गई है। उनके प्रत्याहार पाणिनि से मिलते-जुलते होने पर भी कुछ भिन्न हैं। जैसे—'ऋलृक्' के स्थान पर केवल 'ऋक्' पाठ है, क्योंकि 'ऋ' और 'लृ' में अभेद स्वीकार किया गया है। 'हयवरट्' और 'लण्' को मिलाकर 'वट' को हटा कर यहाँ एक सूत्र बनाया गया है तथा उपान्त्य सूत्र 'शषसर्' में विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का भी समावेश करके काम लिया है। सूत्रों की रचना बिल्कुल भिन्न ढंग की है। इस पर कातन्त्र-व्याकरण का प्रचुर प्रभाव है। इसमें चार अध्याय हैं और यह १६ पादों में विभक्त है।

यक्षवर्मा ने 'शाकटायनव्याकरण' की 'चिन्तामणि' टीका में इस व्याकरण की विशेषता बताते हुए कहा है :

'इष्टिर्नेष्टा न वक्तव्यं वक्तव्यं सूत्रतः पृथक्।
संख्यानं नोपसंख्यानं यस्य शब्दानुशासने॥
इन्द्र-चन्द्रादिभिः शाब्दैर्यदुक्तं शब्दलक्षणम्।
तदिहास्ति समस्तं च यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥'

अर्थात् शाकटायनव्याकरण में इष्टियाँ[1] पढ़ने की जरूरत नहीं। सूत्रों से अलग वक्तव्य कुछ नहीं है। उपसंख्यानों की भी जरूरत नहीं है। इन्द्र, चन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो शब्द-लक्षण कहा वह सब इस व्याकरण में आ जाता है और जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं मिलेगा।

इस वक्तव्य में अतिशयोक्ति होने पर भी पाल्यकीर्ति ने इस व्याकरण में अपने पूर्व के वैयाकरणों की कमियाँ सुधारने का प्रयत्न किया है और लौकिक पदों का अन्वाख्यान दिया है। व्याकरण के उदाहरणों से रचनाकालीन समय का ध्यान आता है। इस व्याकरण में आर्य वज्र, इन्द्र और सिद्धनंदि जैसे पूर्वाचार्यों का उल्लेख है।[2] प्रथम नाम से तो प्रसिद्ध आर्य वज्र स्वामी अभिप्रेत होंगे और बाद के दो नामों से यापनीय संघ के आचार्य।

इस व्याकरण पर बहुत-सी वृत्तियों की रचना हुई है।

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में पाल्यकीर्ति शाकटायन के साहित्य-विषयक मत का उल्लेख किया है[3], इससे उनका साहित्य-विषयक कोई ग्रन्थ रहा होगा ऐसा लगता है परन्तु वह ग्रन्थ कौन सा था यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है।

पाल्यकीर्ति के अन्य ग्रन्थ :

१ स्त्रीमुक्ति-प्रकरण, २ केवलिभुक्ति-प्रकरण।

यापनीय संघ स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के विषय में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता का अनुसरण करता है, और विषयों में दिगम्बरों के साथ मिलता जुलता है यह इन प्रकरणों से जाना जाता है।[4]

---

१ सूत्र और वार्तिक से जो सिद्ध न हो परन्तु भाष्यकार के प्रयोगों से सिद्ध हो उसको 'इष्टि' कहते हैं।

२ सूत्र १ २ १३, १. २ ३७ और २ १. २२९

३ यथा तथा वाऽस्तु वस्तुनो रूपं वक्तृप्रकृतिविशेषायत्ता तु रसवत्ता। तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते इति पाल्यकीर्तिः।

४ जैन साहित्य संशोधक भा० २ अंक ३–४ में ये प्रकरण प्रकाशित हुए हैं।

अमोघवृत्ति (शाकटायनव्याकरण-वृत्ति) :

'शाकटायनव्याकरण' पर लगभग अठारह हजार श्लोक-परिमाण की 'अमोघवृत्ति' नाम से रचना उपलब्ध है। यह वृत्ति सब टीका ग्रन्थों में प्राचीन और विस्तारयुक्त है। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष को लक्ष्य करके इसका 'अमोघवृत्ति' नाम रखा गया प्रतीत होता है। रचना-समय वि० ९ वीं शती है।

वर्धमानसूरि ने अपने 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ८२, ९०) मे शाकटायन के नाम से जो उल्लेख किये हैं वे सब 'अमोघवृत्ति' मे मिलते हैं।

आचार्य मलयगिरि ने 'नदिसूत्र' की टीका में **'वीरममृतं ज्योति'** इस मङ्गलाचरण पद्य को शाकटायन की स्वोपज्ञवृत्ति का बताया है, जो 'अमोघवृत्ति' में मिलता है।

यक्षवर्मा ने शाकटायनव्याकरण की 'चिन्तामणि-टीका' के मगलाचरण में शाकटायन-पाल्यकीर्ति के विषय में आदर व्यक्त करते हुए 'अमोघवृत्ति' के **'तस्यातिमहतीं वृत्तिम्'** इस उल्लेख से स्वोपज्ञ होने की सूचना दी है यह प्रतीत होता है। सर्वानन्द ने 'अमरटीकासर्वस्व' में अमोघवृत्ति से पाल्यकीर्ति के नाम के साथ उद्धरण दिया है।

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि 'अमोघवृत्ति' के कर्ता शाकटायनाचार्य पाल्यकीर्ति स्वय हैं।

यक्षवर्मा ने इस वृत्ति की विशेषता बताते हुए कहा है :

> 'गण-धातुपाठयोगेन धातून् लिङ्गानुशासने लिङ्गगतम्।
> औणादिकानुणादौ शेषं निःशेषमत्र वृत्तौ विद्यात्॥ ११॥'

अर्थात् गणपाठ, धातुपाठ, लिङ्गानुशासन और उणादि के सिवाय इस वृत्ति में सब विषय वर्णित हैं।

इससे इस वृत्ति की कितनी उपयोगिता है, इसका अनुमान हो सकता है। यह वृत्ति अभी तक अप्रकाशित है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ में गणपाठ, धातुपाठ, लिंगानुशासन, उणादि वगैरह निःशेष प्रकरण हैं। इस निःशेष विशेषण द्वारा सम्भवतः अनेकशेष जैनेन्द्र-व्याकरण की अपूर्णता की ओर सकेत किया हो ऐसा लगता है।

वृत्ति में 'अदहदमोघवर्षोऽरातीन्' ऐसा उदाहरण है, जो अमोघवर्ष राजा का ही निर्देश करता है। अमोघवर्ष का राज्यकाल शक सं० ७३६ से ७८९ है, इसी के मध्य इसकी रचना हुई है।

चिन्तामणि-शाकटायनव्याकरण-वृत्ति :

यक्षवर्मा नामक विद्वान् ने 'अमोघवृत्ति' के आधार पर ६००० श्लोक-परिमाण की एक छोटी सी वृत्ति की रचना की है। वे साधु थे या गृहस्थ और वे कब हुए इस सम्बन्ध में तथा उनके अन्य ग्रन्थों के विषय में भी कुछ जानने को नहीं मिलता। उन्होंने अपनी वृत्ति के विषय में कहा है :

'तस्यातिमहतीं वृत्तिं संहृत्येयं लघीयसी।
सपूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा॥
बालाऽबलाजनोऽप्यस्या वृत्तेरभ्यासवृत्तितः।
समस्तं वाङ्मयं वेत्ति वर्षेणैकेन निश्चयात्॥'

अर्थात् अमोघवृत्ति नामक बड़ी वृत्ति में से सक्षेप करके यह छोटी-सी परन्तु सपूर्ण लक्षणों से युक्त वृत्ति यक्षवर्मा कहता है। बालक और स्त्री-जन भी इस वृत्ति के अभ्यास से एक वर्ष में निश्चय ही समस्त वाङ्मय के जानकार बनते हैं।

यह वृत्ति कैसी है इसका अनुमान इससे हो जाता है।

समन्तभद्र ने इस टीका के विषम पदों पर टिप्पण लिखा है, जिसका उल्लेख 'माधवीय धातुवृत्ति' में आता है।

मणिप्रकाशिका (शाकटायनव्याकरणवृत्ति-चिन्तामणि-टीका) :

'मणि' याने चिन्तामणिटीका, जो यक्षवर्मा ने रची है, उस पर अजितसेनाचार्य ने वृत्ति की रचना की है। अजितसेन नाम के बहुत से विद्वान् हो गये हैं। यह रचना कौन-से अजितसेन ने किस समय में की है इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञातव्य प्राप्त नहीं हुआ है।

प्रक्रियासग्रह :

पाणिनीय व्याकरण को 'सिद्धान्तकौमुदी' के रचयिता ने जिस प्रकार प्रक्रिया में रखने का प्रयत्न किया उसी प्रकार अभयचन्द्र नामक आचार्य ने 'शाकटायन

व्याकरण' को प्रक्रियाबद्ध' किया है। अभयचन्द्र के समय, गुरु शिष्य आदि परंपरा और उनकी अन्य रचनाओं के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

शाकटायन-टीका :

यह ग्रन्थ प्रक्रियाबद्ध है, जिसके कर्ता 'वादिपर्वतवज्र' इस उपनाम से विख्यात भावसेन त्रैविद्य हैं। इन्होंने कातन्त्ररूपमाला-टीका और विश्वतत्त्वप्रकाश ग्रन्थ लिखे हैं।

रूपसिद्धि (शाकटायनव्याकरण-टीका) :

द्रविडसंघ के आचार्य मुनि दयापाल ने 'शाकटायन-व्याकरण' पर एक छोटी-सी टीका बनायी है। श्रवणबेलगोल के ५४ वें शिलालेख में इनके विषय में इस प्रकार कहा गया है :

'हितैषिणा यस्य नृणामुदात्तवाचा निबद्धा हितरूपसिद्धिः।
वन्द्यो दयापालमुनिः स वाचा, सिद्धः सतां मूर्द्धनि यः प्रभावैः ॥१५॥'

दयापाल मुनि के गुरु का नाम मतिसागर था। वे 'न्यायविनिश्चय' और 'पार्श्वनाथचरित' के कर्ता वादिराज के सधर्मा थे। 'पार्श्वनाथचरित' की रचना शक सं० ९४७ (वि० सं० १०८२) में हुई थी। इससे दयापाल मुनि का समय भी इसी के आस-पास मानना चाहिए।

यह टीका-ग्रंथ प्रकाशित है। मुनि दयापाल के अन्य ग्रंथों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

गणरत्नमहोदधि :

श्वेताम्बराचार्य गोविन्दसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने 'शाकटायनव्याकरण' में जो गण आते हैं उनका संग्रह कर 'गणरत्नमहोदधि'[२] नामक ४२०० श्लोक-परिमाण स्वोपज्ञ टीकायुक्त उपयोगी ग्रन्थ की वि० सं० ११९७ में रचना की है। इसमें नामों के गणों को श्लोकबद्ध करके गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण दिये हैं। इसमें अनेक वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया गया है

१　यह कृति गुस्टव आपर्ट ने सन् १८९३ में प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने शाकटायन को 'प्राचीन शाकटायन' मानने की भूल की है। सन् १९०७ में बम्बई के जेष्ठाराम मुकुन्दजी ने इसका प्रकाशन किया है।

२　यह ग्रंथ सन् १८७९-८१ में प्रकाशित हुआ है।

परन्तु समकालीन आचार्य हेमचन्द्रसूरि का उल्लेख नहीं है। वैसे आचार्य हेमचन्द्र-सूरि ने भी इनका कहीं उल्लेख नहीं किया है। कई कवियों के नाम और कई स्थलो में कर्ता के नाम के बिना कृतियों के नाम का उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ से कई नवीन तथ्य जानने को मिलते हैं। जैसे—'भट्टिकाव्य' और 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' की तरह मालवा के परमार राजाओं सबधी कोई काव्य था, जिसका नाम उन्होंने नहीं दिया परन्तु उस काव्य के कई श्लोक उद्धृत किये हैं।

आचार्य सागरचन्द्रसूरिकृत सिद्धराजसम्बन्धी कई श्लोक भी इसमे उद्धृत किये हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने सिद्धराज सम्बन्धी कोई काव्य-रचना की थी, जो आज तक उपलब्ध नहीं हुई है।

स्वय वर्धमानसूरि ने अपने 'सिद्धराजवर्णन' नामक ग्रन्थ का 'ममैव सिद्धराजवर्णने' ऐसा लिखकर उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि उनका 'सिद्धराजवर्णन' नामक कोई ग्रथ था जो आज मिलता नहीं है।

लिंगानुशासन :

आचार्य पाल्यकीर्ति—शाकटायनाचार्य ने 'लिंगानुशासन' नाम की कृति की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है। यह आर्या छन्द में रचित ७० पद्यों मे है। रचना-समय ९ वीं शती है।

धातुपाठ :

आचार्य पाल्यकीर्ति—शाकटायनाचार्य ने 'धातुपाठ' की रचना की है। प० गोगीलाल जैन ने वीर-सवत् २४३७ में इसे छपाया है। यह भी ९ वीं शती का ग्रन्थ है।

मगलाचरण मे 'जिन' को नमस्कार करके 'एधि वृद्धौ स्पर्धि सघर्षे' से प्रारम्भ किया है। इसमें १३१७ (१२८०+३७) धातु अर्थसहित दिये हैं। अन्त मे दिये गये सौत्रकण्डवादि ३७ धातुओ को छोड़ कर ११ गणो म विभक्त किये हैं। ३६ धातुओं का 'विकल्पणिजन्त' और चुरादि वगैरह का 'नित्यणि-जन्त' धातु से परिचय करवाया है।

इसकी रचना अनेक व्याकरण-ग्रंथों के आधार पर की गई है। धातुपाठ, सूत्रपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र पद्यबद्ध हैं।[1]

दीपकव्याकरण :

श्वेतांबर जैनाचार्य भद्रेश्वरसूरिरचित 'दीपकव्याकरण' का उल्लेख 'गणरत्न-महोदधि' मे वर्धमानसूरि ने इस प्रकार किया है—'मेधाविन प्रवरदीपक-कर्तृयुक्ता।' उसकी व्याख्या मे वे लिखते है .

'दीपककर्ता भद्रेश्वरसूरिः। प्रवरश्चासौ दीपककर्ता च प्रवरदीपक-कर्ता। प्राधान्यं चास्याधुनिकवैयाकरणापेक्षया।'

दूसरा उल्लेख इस प्रकार है :

'भद्रेश्वराचार्यस्तु'—

> 'किञ्च स्वा दुर्भगा कान्ता रक्षान्ता निश्चिता समा।
> सचिवा चपला भक्तिर्वाल्येति स्वादयो दश॥
> इति स्वादौ वेत्यनेन विकल्पेन पुवद्भाव मन्यन्ते॥'

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि उन्होने 'लिङ्गानुशासन' की भी रचना की थी। सायणरचित 'धातुवृत्ति' मे श्रीभद्र के नाम से व्याकरण विषयक मत के अनेक उल्लेख हैं, सभवत. वे भद्रेश्वरसूरि के 'दीपकव्याकरण' के होंगे। श्रीभद्र (भद्रेश्वरसूरि) ने अपने 'धातुपाठ' पर वृत्ति की रचना भी की है ऐसा सायण के उल्लेख से मालूम पड़ता है।

'कहावली' के कर्ता भद्रेश्वरसूरि ने यदि 'दीपकव्याकरण' की रचना की हो तो वे १३ वीं शताब्दी मे हुए थे ऐसा निर्णय कर सकते हैं और दूसरे भद्रेश्वरसूरि जो बालचन्द्रसूरि की गुरुपरंपरा मे हुए वे १२ वीं शताब्दी में हुए थे।

शब्दानुशासन (मुष्टिव्याकरण) :

आचार्य मलयगिरिसूरि ने सख्याबद्ध आगम, प्रकरण और ग्रन्थों पर व्याख्याओं की रचना करके आगमिक और दार्शनिक सैद्धान्तिक तौर पर ख्याति प्राप्त की है परन्तु उनका यदि कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ हो तो वह सिर्फ स्वोपज्ञ वृत्ति-

---

1. श्री बुद्धिसागराचार्यैः पाणिनि-चन्द्र-जैनेन्द्र-विश्रान्त-दुर्गटीकामवलोक्य वृत्तबन्धैः (?)। धातुसूत्र-गणोणादिवृत्तबन्धैः कृत व्याकरण संस्कृतशब्द-प्राकृतशब्दसिद्धये॥—प्रमालक्ष्मप्रान्ते।

युक्त 'शब्दानुशासन' व्याकरण ग्रन्थ है। इसे 'मुष्टिव्याकरण' भी कहते हैं स्वोपज्ञ टीका के साथ यह ४३०० श्लोक-परिमाण है।

विक्रमीय १३ वीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य मलयगिरि हेमचन्द्रसूरि के सहचर थे। इतना ही नहीं, 'आवश्यक-वृत्ति' पृ० ११ में 'तथा चाहु स्तुतिषु गुरव' इस प्रकार निर्देश कर गुरु के तौर पर उनका सम्मान किया है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के व्याकरण की रचना होने के तुरन्त बाद में ही उन्होंने अपने व्याकरण की रचना की ऐसा प्रतीत होता है और 'शाकटायन' एव 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' को ही केन्द्रबिन्दु बनाकर अपनी रचना की है, क्योंकि 'शाकटायन' और 'सिद्धहेम' के साथ उसका खूब साम्य है। मलयगिरि ने अपने व्याख्या-ग्रन्थों में अपने ही व्याकरण के सूत्रों से शब्द-प्रयोगों की सिद्धि बताई है।

मलयगिरि ने अपने व्याकरण की रचना कुमारपाल के राज्यकाल में की है ऐसा उसकी कृद्वृत्ति के पा० ३ में 'ख्याते दृश्ये' (२२) इस सूत्र के उदाहरण में 'अदहदरातीन् कुमारपाल.' ऐसा लिखा है इससे भी अनुमान होता है।

आचार्य क्षेमकीर्तिसूरि ने 'बृहत्कल्प' की टीका की उत्थानिका मे 'शब्दानुशासनादिविश्वविद्यामयज्योति पुञ्जपरमाणुघटितमूर्तिभि' ऐसा उल्लेख मलयगिरि के व्याकरण के सम्बन्ध मे किया है, इससे प्रतीत होता है कि विद्वानों में इस व्याकरण का उचित समादर था।

'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९८ में, इस पर 'विषमपद-विवरण' टीका भी है जो अहमदाबाद के किसी भडार में थी, ऐसा उल्लेख है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं वे पूर्ण नहीं हैं। इन प्रतियों में चतुष्कवृत्ति, आख्यातवृत्ति और कृद्वृत्ति इस प्रकार सब मिलाकर १२ अध्यायों में ३० पादों का समावेश है परन्तु तद्धितवृत्ति, जो १८ पादों में है, नहीं मिलती।[1]

---

1. यह व्याकरण-ग्रन्थ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर की ओर से प्राध्यापक प० बेचरदास दोशी के संपादन में प्रकाशित हो गया है।

शब्दार्णवव्याकरण :

खरतरगच्छीय वाचक रत्नसार के शिष्य सहजकीर्तिगणि ने 'शब्दार्णव-व्याकरण' की स्वतन्त्ररूप से रचना वि० स० १६८० के आसपास की है। इस व्याकरण में १. सञ्ज्ञा, २. श्लेष (सन्धि), ३. शब्द (स्यादि), ४ षत्व-णत्व, ५ कारकसग्रह, ६ समास, ७ स्त्री-प्रत्यय, ८ तद्धित, ९ कृत् और १०. धातु— ये दस अधिकार है।[1] अनेक व्याकरण ग्रथों को देखकर उन्होंने अपना व्याकरण सरल शैली में निर्माण किया है।

साहित्यक्षेत्र में अपने ग्रन्थ का मूल्याकन करते हुए उन्होंने अपनी लघुता का परिचय प्रशस्ति में इस प्रकार दिया है :

'शब्दानुशासन की रचना कष्टसाध्य है। इस रचना मे नवीनता नहीं है'— ऐसा मात्सर्यवचन प्रमोदशील और गुणी वैयाकरणों को अपने मुख से नहीं कहना चाहिए। ऐसे शास्त्रों में जिन विद्वानों ने परिश्रम किया है वे ही मेरे श्रम को समझ सकेंगे। मैं कोई विद्वान् नहीं हूँ, मेरी चर्चा में विशेषता नहीं है, मुझ में ऐसी बुद्धि भी नहीं, फिर भी पार्श्वनाथ भगवान् के प्रभाव से ही इस ग्रंथ का निर्माण किया है।[2]

---

1. सञ्ज्ञा श्लेष शब्दा' षत्व-णत्वे कारकसंग्रह ।
   समास स्त्रीप्रत्ययश्च तद्धिता कृच्च धातव ॥
   दशाधिकारा एतेऽत्र व्याकरणे यथाक्रमम् ।
   साङ्गा सर्वत्र विज्ञेया' यथाशास्त्र प्रकाशिता ॥

2. कष्टास्माभिरिय रीति प्राय शब्दानुशासने ॥
   नवीन न किमप्यत्र कृतं मात्सर्यवागियम् ।
   अमत्सरै शब्दविद्भि न वाच्या गुणसंग्रहै. ॥
   एतादृशानां शास्त्राणा विधाने य परिश्रम ।
   स एव हि जानाति य करोति सुधी स्वयम् ॥
   नाह कृती नो विवादे आधिक्य मम मतिर्न च ।
   केवल पार्श्वनाथस्य प्रभावोऽय प्रकाशते ॥

शब्दार्णव वृत्ति :

इस 'शब्दार्णव व्याकरण' पर सहजकीर्तिगणि ने 'मनोरमा' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है। उपर्युक्त दस अधिकारों मे १. सज्ञाकरण, २. शब्दों की साधना, ३ सूत्रो की रचना और ४ दृष्टान्त—इन चार प्रकारों से अपनी रचना-शैली का वृत्ति मे निर्वाह किया है। इन्होंने सभी सूत्रों में पाणिनि अष्टाध्यायी की 'काशिकावृत्ति' और अन्य वृत्तियों का आधार लिया है। वृत्ति के साथ समग्र व्याकरणग्रथ १७००० श्लोक प्रमाण है।

इस ग्रथ की २७३ पत्रो की एक प्रति खभात के श्री विजयनेमिसूरि ज्ञान-भडार (स० ४६८) मे है। यह ग्रथ प्रकाशन के योग्य है।

विद्यानन्दव्याकरण :

तपागच्छीय आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य विद्यानन्दसूरि ने 'बुद्धिसागर' की तरह अपने नाम पर ही 'विद्यानन्दव्याकरण' की रचना वि० स०-१३१२ में की है।[२] यह व्याकरणग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

खरतरगच्छीय जिनेश्वरसूरि के शिष्य चन्द्रतिलक उपाध्याय ने जिनपतिसूरि के शिष्य सुरप्रभ के पास इस 'विद्यानन्दव्याकरण' का अध्ययन किया था।[३]

आचार्य मुनिसुन्दरसूरि ने 'गुर्वावली' में कहा है कि 'इस व्याकरण में सूत्र कम है परन्तु अर्थ बहुत है इसलिये यह व्याकरण सर्वोत्तम जान पड़ता है।'[४]

नूतनव्याकरण :

कृष्णर्षिगच्छ के महेन्द्रसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि ने वि० स० १४४० के आसपास 'नूतनव्याकरण' की रचना की है। यह व्याकरण स्वतत्र है या 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के आधार पर इसकी रचना की गई है, यह स्पष्टीकरण नहीं हुआ है।

---

१ इन्होंने 'फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-महाकाव्य' की रचना ३०० विविध छदमय श्लोकों में की है। इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

२ विद्यानन्दसूरि के जीवन के बारे में देखिए—'गुर्वावली' पद्य १५२-१७२.

३ उपाध्याय चन्द्रतिलकगणि ने स्वरचित 'अभयकुमार-महाकाव्य' की प्रशस्ति में यह उल्लेख किया है।

४ देखिये—'गुर्वावली' पद्य १७१.

जयसिंहसूरि के शिष्य नयचन्द्रसूरि ने 'हम्मीरमदमर्दन-महाकाव्य' की रचना की है। इन्होंने उसके सर्ग १४, पद्य २३-२४ मे उल्लेख किया है कि जयसिंहसूरि ने 'कुमारपालचरित्र' तथा भासर्वज्ञकृत 'न्यायसार' पर 'न्यायतात्पर्य-दीपिका' नाम की वृत्ति की रचना की है। इन्होंने 'शार्ङ्गधरपद्धति' के रचयिता सारंग पंडित को शास्त्रार्थ मे हराया था।

प्रेमलाभव्याकरण :

अञ्चलगच्छीय मुनि प्रेमलाभ ने इस व्याकरण की रचना वि० सं० १२८३ मे की है। बुद्धिसागर की तरह रचयिता के नाम पर इस व्याकरण का नाम रख दिया गया है। यह 'सिद्धहेम' या किसी और व्याकरण के आधार पर नहीं है बल्कि स्वतंत्र रचना है।

शब्दभूषणव्याकरण :

तपागच्छीय आचार्य विजयराजसूरि के शिष्य दानविजय ने 'शब्दभूषण' नामक व्याकरण-ग्रंथ की रचना वि० सं० १७७० के आसपास मे गुजरात मे विख्यात शेख फते के पुत्र बडेमियाँ के लिये की थी। यह व्याकरण स्वतंत्र कृति है या 'सिद्धहेम' व्याकरण का रूपान्तर है, यह ज्ञात नहीं हो सका है। यह ग्रन्थ पद्य में ३०० श्लोक-प्रमाण है, ऐसा 'जैन ग्रन्थावली' (पृ० २९८) मे निर्देश है।

मुनि दानविजय ने अपने शिष्य दर्शनविजय के लिये 'पर्युषणाकल्प' पर 'दानदीपिका' नामक वृत्ति सं० १७५७ मे रची थी।

प्रयोगमुखव्याकरण :

'प्रयोगमुखव्याकरण' नामक ग्रंथ की ३४ पत्रों की प्रति जैसलमेर के भंडार में है। कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन :

गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह की विनती से श्वेतांबर जैनाचार्य कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि ने सिद्धराज के नाम के साथ अपना नाम जोड कर वि० सं० ११४५ के आस-पास मे 'सिद्धहेमचन्द्र' नामक शब्दानुशासन की कुल सवा लाख श्लोक-प्रमाण रचना की है। इस व्याकरण की छोटी-बड़ी वृत्तियाँ और उणादिपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिंगानुशासन भी उन्होंने स्वयं लिखे है।

ग्रन्थकर्ता ने अपने पूर्व के व्याकरणों में रही हुई त्रुटियों, विशृङ्खलता, क्लिष्टता, विस्तार, दूरान्वय, वैदिक प्रयोग आदि से रहित, निर्दोष और सरल व्याकरण की रचना की है। इसमें सात अध्याय संस्कृत भाषा के लिये हैं तथा आठवाँ अध्याय प्राकृत भाषा के लिये है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। कुल मिलाकर ४६८५ सूत्र हैं। उणादिगण के १००६ सूत्र मिलाते हुए सूत्रों की कुल संख्या ५६९१ है। संस्कृत भाषा से सम्बन्धित ३५६६ और प्राकृत भाषा से सम्बन्धित १११९ सूत्र हैं।

इस व्याकरण के सूत्रों में लाघव, इसकी लघुवृत्ति में उपयुक्त सूचन, बृहद्-वृत्ति में विषय-विस्तार और बृहन्न्यास में चर्चाबाहुल्य की मर्यादाओं से यह व्याकरणग्रन्थ अलंकृत है। इन सब प्रकार की टीकाओं और पंचांगी से सर्वांग-पूर्ण व्याकरणग्रन्थ श्री हेमचन्द्रसूरि के सिवाय और किसी एक ही ग्रन्थकार ने निर्माण किया हो ऐसा समग्र भारतीय साहित्य में देखने में नहीं आता। इस व्याकरण की रचना इतनी आकर्षक है कि इस पर लगभग ६२-६३ टीकाएँ, संक्षिप्त तथा सहायक ग्रन्थ एवं स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य की सूत्र-संकलना दूसरे व्याकरणों से सरल और विशिष्ट प्रकार की है। उन्होंने संज्ञा, संधि, स्यादि, कारक, षत्व णत्व, स्त्री-प्रत्यय, समास, आख्यात, कृदन्त और तद्धित—इस प्रकार विषयक्रम से रचना की है और संज्ञाएँ सरल बनाई हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य का दृष्टिकोण शैक्षणिक था, इससे उन्होंने पूर्वाचार्यों की रचनाओं का इस सूत्र-संयोजना में सुन्दरता से उपयोग किया है। वे विशेषरूप से शाकटायन के ऋणी हैं। जहाँ उनके सूत्रों से काम चला वहाँ वे ही सूत्र कायम रखे, पर जहाँ कहीं त्रुटि देखने में आई वहाँ उन्हें बदल दिया और उन सूत्रों को सर्वग्राही बनाने की भरसक कोशिश की। इसीलिये तो उन्होंने आत्मविश्वास से कहा है कि—'आकुमार यश शाकटायनस्य'—अर्थात् शाकटायन का यश कुमारपाल तक ही रहा, 'चूँकि तब तक 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' न रचा गया था और न प्रचार में आया था।

श्री हेमचन्द्राचार्यविरचित अनेक विषयों से सम्बद्ध ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:

व्याकरण और उसके अंग

	नाम	श्लोक-प्रमाण
१	सिद्धहेम-लघुवृत्ति	६०००
२	सिद्धहेम बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका)	१८०००

३.	सिद्धहेम-बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) (अपूर्ण)	८४०००
४	सिद्धहेम-प्राकृतवृत्ति	२२००
५	लिङ्गानुशासन-सटीक	३६८४
६	उणादिगण-विवरण	३२५०
७	धातुपारायण-विवरण	५६००

कोश

८	अभिधानचिन्तामणि-स्वोपज्ञ टीकासहित	१००००
९	अभिधानचिन्तामणि-परिशिष्ट	२०४
१०	अनेकार्थकोश	१८२८
११	निघण्टुशेष (वनस्पतिविषयक)	३९६
१२	देशीनाममाला—स्वोपज्ञ टीकासहित	३५००

साहित्य-अलंकार

१३	काव्यानुशासन—स्वोपज्ञ अलकारचूडामणि और विवेक वृत्तिसहित	६८००

छन्द

१४	छन्दोनुशासन—छन्दश्चूडामणि टीकासहित	३०००

दर्शन

१५	प्रमाणमीमासा—स्वोपज्ञवृत्तिसहित (अपूर्ण)	२५००
१६	वेदाकुश (द्विजवदनचपेटा)	१०००

इतिहासकाव्य—व्याकरणसहित

१७.	सस्कृत द्वयाश्रयमहाकाव्य	२८२८
१८.	प्राकृत द्वयाश्रयमहाकाव्य	१५००

इतिहासकाव्य और उपदेश

१९	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (महाकाव्य—दशपर्व)	३२०००
२०	परिशिष्टपर्व	३५००

योग

२१	योगशास्त्र—स्वोपज्ञ टीकासहित	१२५७०

स्तुति-स्तोत्र

२२	वीतरागस्तोत्र	१८८
२३	अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका (पद्य)	३२
२४	अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका (पद्य)	३२
२५	महादेवस्तोत्र (पद्य)	४४

अन्य कृतियाँ

मध्यमवृत्ति (सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन की टीका)
रहस्यवृत्ति　　„　　„　　„
अर्हन्नामसमुच्चय
अर्हन्नीति
नाभेय नेमिद्विसंधानकाव्य
न्यायबलाबलसूत्र
बलाबलसूत्र बृहद्वृत्ति
बालभाषाव्याकरणसूत्रवृत्ति

इनमें से कुछ कृतियों के विषय में संदेह है।

स्वोपज्ञ लघुवृत्ति :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' की विशद किन्तु संक्षेप में स्पष्टीकरण करनेवाली यह टीका स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रची है, जिसको 'लघुवृत्ति' कहते हैं। अध्याय १ से ७ तक की इस वृत्ति का श्लोक-परिमाण ६००० है, इसलिये उसको 'छ हजारी' भी कहते हैं। ८ वें अध्याय पर लघुवृत्ति नहीं है। इसमें गणपाठ, उणादि आदि नहीं हैं।

स्वोपज्ञ मध्यमवृत्ति (लघुवृत्ति-अवचूरिपरिष्कार) :

अध्याय प्रथम से अध्याय सप्तम तक ८००० श्लोक-परिमाण 'मध्यमवृत्ति'[१] की स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रचना की है ऐसा कुछ विद्वानों का मन्तव्य है।

रहस्यवृत्ति :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' पर 'रहस्यवृत्ति' भी स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रची है, ऐसा माना जाता है। इसमें सब सूत्र नहीं हैं। प्रायः २५००

---

१ 'श्री लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला' छाणी की ओर से इसकी चतुष्कवृत्ति (पृ० १–२४८ तक) प्रकाशित हुई है।

श्लोकात्मक इस वृत्ति में दो स्थलों में 'स्वोपज्ञ' शब्द का उल्लेख होने से यह वृत्ति स्वोपज्ञ मानी जाती है।[1]

बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका) :

'सि० श०' पर 'तत्त्वप्रकाशिका' नाम की बृहद्वृत्ति का स्वय हेमचन्द्रसूरि ने निर्माण किया है। यह १८००० श्लोकपरिमाण है इसलिये इसको 'अठारह हजारी' भी कहते हैं। यह १ अध्याय से ८ अध्याय तक है। कई विद्वान् ८ वें अध्याय की वृत्ति को 'लघुवृत्ति' के अन्तर्गत गिनते हैं। इस विषय में ग्रन्थकार ने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है। इस वृत्ति में 'अमोघवृत्ति' का भी आधार लिया गया है। गणपाठ, उणादि वगैरह इसमें हैं।[2]

बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) :

'सि० श०' की बृहद्वृत्ति पर 'शब्दमहार्णवन्यास' नाम से बृहन्न्यास की रचना ८४००० श्लोक-परिमाण में स्वय हेमचन्द्रसूरि ने की है। वाद और प्रतिवाद उपस्थित करके अपने विधान को स्थिर करना, उसे यहाँ 'न्यास' कहते हैं। इसमें कई प्राचीन वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया गया है। पतञ्जलि का 'शेषं निःशेषकर्त्तारम्' इस वाक्य से बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। दुर्भाग्यवश यह न्यास पूरा नहीं मिलता। केवल २० श्लोक-प्रमाण यह ग्रन्थ इस रूप मे मिलता है : पहले अध्याय के प्रथम पाद के ४२ सूत्रों में से ३८ सूत्र, तीसरा व चतुर्थ पाद, दूसरे अध्याय के चारों पाद, तीसरे अध्याय का चतुर्थ पाद और सातवें अध्याय का तीसरा पाद इन पर न्यास मिलता है। जिन अध्यायों के पादो पर न्यास नहीं मिलता उनपर आचार्य विजयलावण्यसूरि ने 'न्यासानुसधान' नाम से न्यास की रचना की है।[3]

न्याससारसमुद्धार (बृहन्न्यासदुर्गपदव्याख्या) :

'सि० श०' पर चन्द्रगच्छीय आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य कनकप्रभसूरि ने हेमचन्द्रसूरि के 'बृहन्न्यास' के सक्षिप्त रूप 'न्याससारसमुद्धार' अपर नाम 'बृहन्न्यासदुर्गपदव्याख्या' के नाम से न्यास[4] ग्रन्थ की १३ वीं सदी में रचना की है।

---

१ जैन श्रेयस्कर मण्डल, मेहसाना की ओर से यह ग्रन्थ छपा है।

२ यह वृत्ति जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद की ओर से छपी है।

३ ५ अध्याय तक लावण्यसूरि ग्रन्थमाला, बोटाद की ओर से छप चुका है।

४. यह न्यास मनसुखभाई भगुभाई, अहमदाबाद की ओर से छपा है।

१. लघुन्यास :

'सि० श०' पर हेमचन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य रामचन्द्रसूरि ने ५३००० श्लोक परिमाण 'लघुन्यास' की आचार्य हेमचन्द्रसूरि के समय (वि० १३ वीं शती) में रचना की है।

२ लघुन्यास :

'सि० श०' पर धर्मघोषसूरि ने ९००० श्लोक प्रमाण 'लघुन्यास' की लगभग १४ वीं शताब्दी मे रचना की है।

न्याससारोद्धार-टिप्पण

'सि० श०' पर किसी अज्ञात आचार्य ने 'न्याससारोद्धार-टिप्पण' नाम से एक रचना की है, जिसकी वि० स० १२७९ की हस्तलिखित प्रति मिलती है।

हैमढुण्ढिका :

'सि० श०' पर उदयसौभाग्य ने २३०० श्लोकात्मक 'हैमढुढिका' नाम से व्याख्या की रचना की है।

अष्टाध्यायतृतीयपद-वृत्ति :

'सि० श०' पर आचार्य विनयसागरसूरि ने 'अष्टाध्यायतृतीयपद वृत्ति' नाम से एक रचना की है।

हैमलघुवृत्ति-अवचूरि :

'सि० श०' की 'लघुवृत्ति' पर अवचूरि हो ऐसा मालूम होता है। देवेन्द्र के शिष्य धनचन्द्र द्वारा २२१३ श्लोकात्मक हस्तलिखित प्रति वि० स० १४०३ में लिखी हुई मिलती है।

चतुष्कवृत्ति अवचूरि :

'सि० श०' की चतुष्कवृत्ति पर किसी विद्वान् ने अवचूरि की रचना की है, जिसका उल्लेख 'जैन ग्रथावली' के पृ० ३०० पर है।

लघुवृत्ति-अवचूरि :

'सि० श०' की लघुवृत्ति के चार अध्यायों पर नन्दसुन्दर मुनि ने वि० स० १५१० मे अवचूरि की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है।

हैम-लघुवृत्तिढुण्ढिका (हैमलघुवृत्तिदीपिका) :

'सि० श०' पर मुनिशेखर मुनि ने ३२०० श्लोक प्रमाण 'हैमलघुवृत्तिढुंढिका' अपर नाम 'हैमलघुवृत्तिदीपिका' की रचना की है। इसकी वि० सं० १४८८ मे लिखी हुई हस्तलिखित प्रति मिलती है।

लघुव्याख्यानढुण्ढिका :

'सि० श०' पर ३२०० श्लोक-प्रमाण 'लघुव्याख्यानढुंढिका' की किसी जैनाचार्य की लिखी हुई प्रति सूरत के ज्ञानभण्डार में है।

ढुण्ढिका-दीपिका :

आचार्य हेमचन्द्रसूरिरचित 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के अध्यापन निमित्त नियुक्त किये गये कायस्थ अध्यापक काकल, जो हेमचन्द्रसूरि के समकालीन थे और आठ व्याकरणो के वेत्ता थे, उन्होंने 'सि० श०' पर ६००० श्लोकपरिमाण एक वृत्ति की रचना की थी जो 'लघुवृत्ति' या 'मध्यमवृत्ति' के नाम से प्रसिद्ध थी। 'जिनरत्नकोश' पृ० ३७६ में इस लघुवृत्ति को ही 'ढुंढिकादीपिका' कहा गया है। यह चतुष्क, आख्यात, कृत्, तद्धित विपयक है।

बृहद्वृत्ति-सारोद्धार :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' की बृहद्वृत्ति पर सारोद्धारवृत्ति नाम से किसी ने रचना की है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ वि० सं० १५२१ में लिखी हुई मिलती हैं। जिनरत्नकोश, पृ० ३७६ में इसका उल्लेख है।

बृहद्वृत्ति-अवचूर्णिका :

'सि० श०' पर जयानन्द के शिष्य अमरचन्द्रसूरि ने वि० सं० १२६४ में 'अवचूर्णिका'[1] की रचना की है। इसमें ७५७ सूत्रों की बृहद्वृत्ति पर अवचूरि है, शेष १०७ सूत्र इसमें नहीं लिये गये है। आचार्य कनकप्रभसूरिकृत 'लघुन्यास' के साथ बहुत अंशों में यह अवचूरि मिलती है। कई बातें अमरचन्द्र ने नवीन भी कही हैं।

अवचूर्णिका (पृ० ४-५) में कहा है कि प्रथम के सात अध्याय चतुष्क, आख्यात, कृत् और तद्धित—इन चार प्रकरणों में विभक्त हैं। संधि, नाम, कारक और समास—इन चारों का समुदायरूप 'चतुष्क' है, इसमें १० पाद

1 यह ग्रन्थ 'देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड' की ओर से छपा है।

हैं। आख्यात में ६ पाद हैं, कृत् में चार पाद हैं, तद्धित मे ८ पाद हैं। इस प्रकार यहाँ चार प्रकरण गिनाये हैं उनको प्रकरण नहीं अपितु वृत्ति कहते है।

बृहद्वृत्ति-ढुंढिका :

मुनि सौभाग्यसागर ने वि० स० १५९१ मे 'सि० श०' पर ८००० श्लोक-प्रमाण 'बृहद्वृत्ति ढुंढिका' की रचना की है। यह चतुष्क, आख्यात, कृत् और तद्धित प्रकरणो पर ही है।

बृहद्वृत्ति दीपिका :

'सि० श०' पर विजयचन्द्रसूरि और हरिभद्रसूरि के शिष्य मानभद्र के शिष्य विद्याकर ने 'दीपिका' की रचना की है।

कक्षापट-वृत्ति :

'सि० श०' की स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति पर 'कक्षापटवृत्ति' नाम से ४८१८ श्लोक-प्रमाण वृत्ति की रचना मिलती है। 'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९९ में इस टीका को 'कक्षापट्ट' और 'बृहद्वृत्ति-विषमपदव्याख्या'—ये दो नाम दिये गये हैं।

बृहद्वृत्ति-टिप्पन :

वि० स० १६४६ में किसी अज्ञात नामा विद्वान् ने 'सि० श०' पर 'बृहद्वृत्ति-टिप्पन' की रचना की है।

हैमोदाहरण-वृत्ति :

यह 'सि० श०' की बृहद्वृत्ति के उदाहरणों का स्पष्टीकरण हो ऐसा मालूम होता है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०१ मे इसका उल्लेख है।

परिभाषा वृत्ति :

यह 'सि० श०' की परिभाषाओं पर वृत्तिस्वरूप ४००० श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है। 'बृहट्टिप्पणिका' मे इसका उल्लेख है।

हैमदशपादविशेष और हैमदशपादविशेषार्थ :

'सि० श०' पर इन दो टीका ग्रन्थों का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९९ में मिलता है।

बलाबलसूत्रवृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि निर्मित 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' व्याकरण की स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति मे से सक्षेप करके किसी अज्ञात आचार्य ने 'बलाबलसूत्रवृत्ति' रची है।

डी० सूचीपत्र में इस वृत्ति के कर्ता आचार्य हेमचन्द्रसूरि बताये गये हैं, जबकि दूसरे स्थल में इसी का 'परिभाषावृत्ति' के नाम से दुर्गसिंह की कृति के रूप में उल्लेख हुआ है।

क्रियारत्नसमुच्चय :

तपागच्छीय आचार्य सोमसुन्दरसूरि के सहाध्यायी आचार्य गुणरत्नसूरि ने वि० सं० १४६६ में 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के धातुओं के दशगण और सन्नन्तादि प्रक्रिया के रूपों की साधनिका तत्तत् सूत्रों के निर्देशपूर्वक की है। सौत्र धातुओं के सब रूपाख्यानों को विस्तार से समझा दिया है। किस काल का किस प्रसंग में प्रयोग करना चाहिये उसका बोध कराया है। कर्ता को जहाँ कहीं कठिन स्थलविशेष मालूम पड़ा वहीं उन्होंने तत्कालीन गुजराती भाषा से समझाने का प्रयत्न किया है। अंत में ६६ श्लोकों की विस्तृत प्रशस्ति दी है। उसमें रचना-संवत्, प्रेरक, कर्ता का नाम, अपनी लघुता, ग्रन्थों का परिमाण निम्नोक्त प्रकार से दिया है :

> काले षड्-रस-पूर्व (१४६६) वत्सरमिते श्रीविक्रमार्काद् गते,
> गुर्वादेश विमृश्य च सदा स्वान्योपकारं परम्।
> ग्रन्थं श्रीगुणरत्नसूरिरतनोत् प्रज्ञाविहीनोऽप्यमुं,
> निर्हेतुप्रकृतिप्रधानजननैः शोध्यस्त्वयं धीधनैः॥ ६३॥
> प्रत्यक्षरं गणनया ग्रन्थमानं विनिश्चितम्।
> षट्पञ्चाशतान्येकषष्ट्याऽ(५६६१)धिकान्यनुष्टुभाम्॥ ६४॥

न्यायसंग्रह (न्यायार्थमञ्जूषा-टीका) :

'सि० श०' के सातवें अध्याय की 'बृहद्वृत्ति' के अन्त में ५७ न्यायों का संग्रह है। उसपर हेमचन्द्रसूरि की कोई व्याख्या हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।

ये ५७ न्याय और अन्य ८४ न्यायों का संग्रह करके तपागच्छीय रत्नशेखरसूरि के शिष्य चारित्ररत्नगणि के शिष्य हेमहंसगणि ने उनपर 'न्यायार्थमञ्जूषा' नाम की टीका की रचना वि० सं० १५१६ में की है। इसमें इन्होंने कहा है कि उपर्युक्त ५७ न्यायों पर प्रज्ञापना नाम की वृत्ति थी।

५७ और दूसरे ८४ मिलाकर १४१ न्यायों के संग्रह को हेमहंसगणि ने 'न्यायसंग्रहसूत्र' नाम दिया है। दोनों न्यायों की वृत्ति का नाम न्यायार्थमञ्जूषा है।

स्यादिशब्दसमुच्चय :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य और गूर्जरनरेश विशलदेव राजा की राजसभा के सम्मान्य महाकवि आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने १३ वीं शताब्दी में 'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर वृत्तिस्वरूप 'सि० श०' के सूत्रों से नाम के विभक्ति रूपों की साधनिका की है। यह ग्रन्थ 'सि० श०' के अध्येताओं के लिए बड़ा उपयोगी है।[1]

स्यादिव्याकरण :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर उपकेशगच्छीय उपाध्याय मतिसागर के शिष्य विनयभूषण ने 'स्यादिशब्दसमुच्चय' को ध्यान में रखकर ४२२५ श्लोकबद्ध टीका की भावडारगच्छीय सोमदेव मुनि के लिये रचना की है। इसमे चार उल्लास हैं। इसकी ९२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है। उसकी पुष्पिका में इस ग्रंथ की रचना और कारण के विषय में इस प्रकार उल्लेख है :

इति श्रीमदुपकेशगच्छे महोपाध्याय श्रीमतिसागरशिष्याणुना विनयभूषणेन श्रीमदमरयुक्त्या सविस्तर प्ररूपितः। संख्याशब्दोल्लासस्तुर्य ॥

श्रीभावडारगच्छेऽस्ति सोमदेवाभिधो मुनिः।
तदभ्यर्थनतः स्यादिर्विनयेन निर्मिता ॥
संवत् १५३६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि लिखितेयम्।

स्यादिशब्ददीपिका :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओं पर आचार्य जयानन्दसूरि ने १०५० श्लोक-परिमाण 'अवचूरि' रची है उसका 'दीपिका' नाम दिया है। इसमें शब्दों की प्रक्रिया 'सि० श०' के अनुसार दी गई है। शब्दों के रूप 'सि० श०' के सूत्रों के आधार पर सिद्ध किये गये हैं।

हेमविभ्रम-टीका :

मूल ग्रंथ २१ कारिकाओं में है। कारिकाओं की रचना किसने की यह ज्ञात नहीं, परंतु व्याकरण से उपलक्षित कई भ्रमात्मक प्रयोग सूचित किये गये हैं। उन कारिकाओं पर भिन्न भिन्न व्याकरण के सूत्रों से उन भ्रमात्मक प्रयोगों को

---

१ भावनगर की यशोविजय जैन ग्रन्थमाला से यह ग्रंथ छप गया है।

सही बताकर सिद्धि की गई है। इससे कातन्त्रविभ्रम, सारस्वतविभ्रम, हेमविभ्रम इन नामो से अलग-अलग रचनाएँ मिलती हैं।

आचार्य गुणचन्द्रसूरि द्वारा इन २१ कारिकाओ पर रची हुई 'हेमविभ्रम-टीका' का नाम है 'तत्त्वप्रकाशिका'। 'सि० श०' व्याकरण के अभ्यासियों के लिये यह ग्रथ अति उपयोगी है।

इस 'हेमविभ्रम-टीका'[1] के रचयिता आचार्य गुणचद्रसूरि वादी आचार्य देवसूरि के शिष्य थे। ग्रथ के अत में वे इस प्रकार उल्लेख करते हैं:

> 'अकारि गुणचन्द्रेण वृत्तिः स्व-परहेतवे।
> देवसूरिक्रमाम्भोजचञ्चरीकेण सर्वदा॥'

सभवत. ये गुणचन्द्रसूरि वे ही हो सकते हैं जिन्होंने आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य रामचन्द्रसूरि के साथ 'द्रव्यालकार-टिप्पन' और 'नाट्यदर्पण' की रचना की है।

कविकल्पद्रुम :

तपागच्छीय कुलचरणगणि के शिष्य हर्षकुलगणि ने 'सि० श०' मे निर्दिष्ट धातुओं की पद्यबद्ध विचारात्मक रचना वि० सं० १५७७ मे की है।

वोपदेव के 'कविकल्पद्रुम' के समान यह भी पद्यात्मक रचना है। ११ पल्लवो में यह ग्रथ विभक्त है। प्रथम पल्लव में सब धातुओं के अनुबध दिये हैं और 'सि० श०' के कई सूत्र भी इसमें जोड़ दिये गये हैं। पल्लव २ से १० में क्रमशः भ्वादि से लेकर चुरादि तक नव गण और ११ वे पल्लव में सौत्रादि धातुओं का विचार किया है।

'कविकल्पद्रुम' की रचना हेमविमलसूरि के काल में हुई है। उस पर 'धातुचिन्तामणि' नाम की स्वोपज्ञ टीका है, परतु समग्र टीका उपलब्ध नहीं हुई है। सिर्फ ११ वें पल्लव की टीका मूल पद्यों के साथ छपी है।

कविकल्पद्रुम-टीका :

किसी अज्ञातकर्तृक 'कविकल्पद्रुम' नाम की कृति पर मुनि विजयविमल ने टीका रची है।

---

१ यह ग्रथ भावनगर की यशोविजय ग्रंथमाला से छपा है।

तिङन्वयोक्ति :

न्यायाचार्य यशोविजयजी उपाध्याय ने 'तिङन्वयोक्ति' नामक व्याकरण-संबंधी ग्रंथ की रचना की है। कई विद्वान् इसको 'तिङन्तान्वयोक्ति' भी कहते है। इस कृति का आदि पद्य इस प्रकार है :

ऐन्द्रव्रजाभ्यर्चितपादपद्म सुमेरुधीरं प्रणिपत्य वीरम्।
वदामि नैयायिकशाब्दिकानां मनोविनोदाय तिङन्वयोक्तिम्॥

हैमधातुपारायण :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'हैम-धातुपारायण' नामक ग्रंथ की रचना की है। 'धातुपाठ' शब्दशास्त्र का अत्यन्त उपयोगी अंग है इसीलिये यह ग्रंथ 'सिद्ध-हेमचन्द्रशब्दानुशासन' के परिशिष्ट के रूप में बनाया गया है।

'धातु' क्रिया का वाचक है, अर्थात् क्रिया के अर्थ को धारण करने-वाला 'धातु' कहा जाता है। इन धातुओं से ही शब्दों की उत्पत्ति हुई है ऐसा माना जाता है। इन धातुओं का निरूपण करनेवाला यह 'धातुपारायण' नामक ग्रंथ है। 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' में निम्न वर्गों मे धातुओं का वर्गीकरण किया गया है :

भ्वादि, अदादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि—इस प्रकार नव गण हैं। अत. इसे 'नवगणी' भी कहते हैं।

इन गणों के सूचक अनुबंध भ्वादि गण का कोई अनुबंध नहीं है। दूसरे गणों के क्रमश. क्, च्, ट्, त्, प्, य्, श् और ण् अनुबंधों का निर्देश है। फिर, इसमें स्वरान्त और व्यञ्जनात शैली से धातुओं का क्रम दिया गया है। इसमें परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद के अनुबंध इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, ग्, ङ् और अनुस्वार बताये गये हैं।

इकार अनुबंध से आत्मनेपद, ई अनुबंध से उभयपद का निर्देश है। 'वेट्' धातुओं का सूचक अनुबन्ध औ है और 'अनिट्' धातुओं को बताने के लिये अनुस्वार का उपयोग किया गया है। इस प्रकार अनुबंधों के साथ धातुओं के अर्थ का निर्देश किया गया है।

इस ग्रंथ में कौशिक, द्रमिल, कण्व, भगवद्गीता, माघ, कालिदास आदि ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख भी किया गया है।

इसमें कई अवतरण पद्य में हैं, बाकी विभाग गद्य में है। कई अवतरण (पद्य) शृंगारिक भी हैं।

गणपाठ :

कई शब्द-समूहों में एक ही प्रकार का व्याकरणसंबंधी नियम लागू होता हो तब व्याकरणसूत्र में प्रथम शब्द के उल्लेख के साथ ही आदि शब्द लगा कर गण का निर्देश किया जाता है। इस प्रकार 'सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन' की बृहद्वृत्ति में ऐसे शब्दसमूह का उल्लेख किया गया है। इसलिये गणपाठ व्याकरण का अति महत्त्व का अंग है।

पं० मयाशंकर गिरजाशंकर शास्त्री ने 'सिद्धहेम-बृहत्प्रक्रिया' नाम से ग्रंथ की संकलना की है उसमें गणपाठ पृ० ९५७ से ९९१ में अलग से भी दिये गये हैं।

गणविवेक :

'सि० श०' की बृहद्वृत्ति मे निर्दिष्ट गणों को पं० साधुराज के शिष्य पं० नन्दिरत्न ने वि० १७ वीं शती में पद्यों में निबद्ध किया है। इसका ग्रन्थाग्र ६०७ है। इसकी ८ पत्र की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में (सं० ५९०७) है। इसके आदि में ग्रंथ का हेतु वगैरह इस प्रकार दिया है :

> अर्हन्तः सिद्धिदाः सिद्धाचार्योपाध्याय-साधवः।
> गुरुः श्रीसाधुराजश्च बुद्धिं विदधतां मम ॥ १ ॥
> श्रीहेमचन्द्रसूरीन्द्रः पाणिनिः शाकटायनः।
> श्रीभोजश्चन्द्रगोमी [च] जयन्त्यन्येऽपि शाब्दिकाः ॥ २ ॥
> श्रीसिद्धहेमचन्द्र[क]व्याकरणोदितैर्गणैः ।
> ग्रन्थो गणविवेकाख्यः स्वान्यस्मृत्यै विधीयते ॥ ३ ॥

गणदर्पण :

गूर्जर नरेश महाराजा कुमारपाल ने 'गणदर्पण'[१] नामक व्याकरणसंबंधी ग्रंथ की रचना की है। कुमारपाल का राज्यकाल वि० सं० ११९९ से १२३० है इसलिए उसी के दरमियान में इसकी रचना हुई है। यह ग्रंथ दण्डनायक वोसरी और प्रतिहार भोजदेव के लिये निर्माण किया गया था ऐसा उल्लेख इसकी

---

१ इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति जोधपुर के श्री केशरिया मंदिरस्थित खरतरगच्छीय ज्ञानभंडार में है। इसमें कुल २१ पत्र हैं, प्रारंभ के २ पत्र नहीं हैं, एवं बीच-बीच में पाठ भी छूट गया है।

पुष्पिका में है। भाषा संस्कृत है और चार-चार पादवाले तीन अध्याय पद्यो में हैं। कहीं-कहीं गद्य भी है। यह ग्रथ शायद 'सि० श०' के गणों का निर्देश करता हो। इसका ९०० ग्रथाग्र है। कुमारपाल ने 'नम्राखिल०' से आरभ करके 'साधारणजिनस्तवन' नामक संस्कृत स्तोत्र की रचना की है।

इस 'गणदर्पण' की प्रति ५०० वर्ष प्राचीन है जो वि० स० १५१८ (शाके १३८३) में देवगिरि में देवडागोत्रीय ओसवाल वीनपाल ने लिखवाई है। प्रति खरतरगच्छीय मुनि समयभक्त को दी गई है। इनके शिष्य पुण्यनन्दि द्वारा रचित सुप्रसिद्ध 'रूपकमाला' की प्रशस्ति के अनुसार ये आचार्य सागरचन्द्रसूरि के शिष्य रत्नकीर्ति के शिष्य थे।

प्रक्रियाग्रन्थ :

व्याकरण-ग्रन्थों में दो प्रकार के क्रम देखने मे आते हैं : १ अध्यायक्रम (अष्टाध्यायी) और २ प्रक्रियाक्रम। अध्यायक्रम में सूत्रों का विषयक्रम, उनका चलाचल, अनुवृत्ति, व्यावृत्ति, उत्सर्ग, अपवाद, प्रत्यपवाद, सूत्ररचना का प्रयोजन आदि बातें दृष्टि में रखकर सूत्ररचना होती है। मूल सूत्रकार अध्यायक्रम से ही रचना करते हैं। बाद में होनेवाले रचनाकार उन सूत्रों को प्रक्रियाक्रम में रखते हैं।

सिद्धहेम-शब्दानुशासन पर भी ऐसे कई प्रक्रियाग्रथ हैं, जिनका ब्यौरेवार निर्देश हम यहा करते हैं।

हैमलघुप्रक्रिया .

तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयगणि ने सिद्धहेमशब्दानुशासन के अध्यायक्रम को प्रक्रियाक्रम में परिवर्तित करके वि० स० १७१० में 'हैमलघु-प्रक्रिया' नामक ग्रथ की रचना की है। यह प्रक्रिया १ नाम, २. आख्यान और ३ कृदन्त—इन तीन वृत्तियों में विभक्त है। विषय की दृष्टि से सज्ञा, सधि, लिङ्ग, युष्मदस्मद्, अव्यय, स्त्रीलिङ्ग, कारक, समास और तद्धित—इन प्रकरणों में ग्रन्थ-रचना की है। अत में प्रशस्ति है।

हैमबृहत्प्रक्रिया :

उपाध्याय विनयविजयजीरचित 'हैमलघुप्रक्रिया' के क्रम को ध्यान में रखकर आधुनिक विद्वान् मयाशकर गिरजाशकर ने उस पर बृहद्वृत्ति की रचना करके उसको 'हैमबृहत्प्रक्रिया' नाम दिया है। यह ग्रन्थ छपा है। इसका रचना-काल वि० २० वीं शती है।

हैमप्रकाश (हैमप्रक्रिया-बृहन्न्यास) :

तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयजी ने जो 'हैमलघुप्रक्रिया' ग्रथ की रचना की है उस पर उन्होंने ३४००० श्लोक-परिणाम स्वोपज्ञ 'हैमप्रकाश' अपरनाम 'हैमप्रक्रिया बृहन्न्यास'[1] की रचना वि० स० १७९७ में की है। 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन' के सूत्र 'समानाना तेन दीर्घ.' (१ २ १) के हैमप्रकाश में कनकप्रभसूरिकृत 'न्याससारसमुद्धार' से भिन्न मत प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार बहुत स्थलो मे उन्होंने पूर्व वैयाकरणों से भिन्न मत का प्रदर्शन कर अपनी व्याकरण-विषयक प्रतिभा का परिचय दिया है।

चन्द्रप्रभा (हेमकौमुदी) :

तपागच्छीय उपाध्याय मेघविजयजी ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के सूत्रों पर भट्टोजीदीक्षितरचित सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रक्रियाक्रम से 'चद्रप्रभा' अपरनाम 'हेमकौमुदी'[2] नामक व्याकरणग्रथ की वि० स० १७५७ में आगरे में रचना की है। पुष्पिका में इसको 'बृहत्प्रक्रिया' भी कहा है। इसका ९००० श्लोक-परिमाण है। कर्ता ने अपने शिष्य भानुविजय के लिये इसे बनाया और सौभाग्यविजय एव मेरुविजय ने दीपावली के दिन इसका सशोधन किया था।

यह ग्रथ प्रथमा वृत्ति और द्वितीया वृत्ति इन दो विभागों में विभक्त है। 'टादौ स्वरे वा' (१.४ ३२) पृ० ४० में 'की.', 'किरौ' इत्यादि रूपों की साधनिका में पाणिनीय व्याकरण का आधार लिया गया है, सिद्धहेमशब्दानुशासन का नहीं, यह एक दोष माना गया है।

हेमशब्दप्रक्रिया :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर यह छोटा सा ३५०० श्लोक-परिमाण मध्यम प्रक्रिया व्याकरणग्रथ उपाध्याय मेघविजयगणि ने वि० स० १७५७ के आसपास में बनाया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भाडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना में है।

हेमशब्दचन्द्रिका :

उपाध्याय मेघविजयगणि ने सिद्धहेमशब्दानुशासन के अधार पर ६०० श्लोक-प्रमाण यह छोटा-सा ग्रथ विद्यार्थियों के प्राथमिक प्रवेश के लिए तीन प्रकाशों में अति सक्षेप मे बनाया है। यह ग्रथ मुनि चतुरविजयजी ने सपादित करके

---

१ यह ग्रन्थ दो भागों में बबई से प्रकाशित हुआ है।

२. जैन श्रेयस्कर मडल, मेहसाना से यह ग्रथ छप गया है।

प्रकाशित किया है। भांडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना मे इसकी स० १७५५ मे लिखित प्रति है।

उपाध्याय मेघविजयगणि ने भिन्न-भिन्न विषयो पर अनेको ग्रथ लिखे है :

१ दिग्विजय महाकाव्य (काव्य)
२ सप्तसधान महाकाव्य ,,
३ लघु-त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र ,,
४ भविष्यदत्त कथा ,,
५ पञ्चाख्यान ,,
६ चित्रकोश (विज्ञप्तिपत्र) ,,
७ वृत्तमौक्तिक (छन्द)
८ मणिपरीक्षा (न्याय)
९ युक्तिप्रबोध (शास्त्रीय आलोचना)
१० धर्ममञ्जूषा ,,
११ वर्षप्रबोध (मेघमहोदय) (ज्योतिष)
१२ उदयदीपिका ,,
१३ प्रश्नसुन्दरी ,,
१४ हस्तसजीवन (सामुद्रिक)
१५ रमलशास्त्र (रमल)
१६ वीशयत्रविधि (यत्र)
१७ मातृकाप्रसाद (अध्यात्म)
१८ अर्हद्गीता ,,
१९ ब्रह्मबोध ,,
२० तपागच्छपट्टावली
२१ पञ्चतीर्थस्तुति
२२ शिवपुरी-शखेश्वर पार्श्वनाथस्तोत्र
२३ भक्तामरस्तोत्रटीका
२४ शान्तिनाथचरित्र (नैषधीय समस्यापूर्ति-काव्य)
२५ देवानन्द महाकाव्य (माघ समस्यापूर्ति काव्य)
२६ किरात-समस्या-पूर्ति
२७ मेघदूत-समस्या-लेख
२८-२९ पाणिनीय द्वयाश्रयविज्ञप्तिलेख
३० विजयदेवमाहात्म्य-विवरण
३१ विजयदेव-निर्वाणरास
३२ पार्श्वनाथ-नाममाला
३३ थावच्चाकुमारसज्झाय
३४ सीमन्धरस्वामीस्तवन
३५ चौवीशी (भाषा)
३६ दशमतस्तवन
३७ कुमतिनिवारणहुडी

हैमप्रक्रिया :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर महेन्द्रसुत वीरसेन ने प्रक्रिया-ग्रथ की रचना की है।

हैमप्रक्रियाशब्दसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर १५०० श्लोक प्रमाण एक कृति का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ ३०३ मे मिलता है।

हेमशब्दसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर 'हेमशब्दसमुच्चय' नामक ८९२ श्लोक प्रमाण कृति का उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० ४६३ मे है।

हेमशब्दसंचय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर अमरचन्द्र की 'हैमशब्दसचय' नामक ४२६ श्लोक-प्रमाण एक कृति का उल्लेख 'जिनरत्नकोश' पृ० ४६३ में किया है।

हेमशब्दसंचय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर १५०० श्लोक-प्रमाण ४३६ पत्रों की एक प्रति का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० ३०३ पर है।

हैमकारकसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन के कारक प्रकरण पर प्राथमिक विद्यार्थियों के लिए श्रीप्रभसूरि ने 'हैमकारकसमुच्चय' नामक कृति की रचना की है। इसके तीन अधिकार हैं। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०२ में इसका उल्लेख है।

सिद्धसारस्वत-व्याकरण :

चन्द्रगच्छीय देवभद्र के शिष्य आचार्य देवानन्दसूरि ने 'सिद्धहेमशब्दानु-शासन' व्याकरण में से उद्धृतकर 'सिद्धसारस्वत' नामक नवीन व्याकरण की रचना की। प्रभावकचरितान्तर्गत 'महेन्द्रसूरिचरित' में इस प्रकार उल्लेख है :

श्रीदेवानन्दसूरिर्दिशतु मुदमसौ लक्षणाद् येन हैमा-
दुद्धृत्य प्राज्ञहेतोर्विहितमभिनवं 'सिद्धसारस्वताख्यम्'।
शाब्दं शास्त्रं यदीयान्वयिकनकगिरिस्थानकल्पद्रुमश्च
श्रीमान् प्रद्युम्नसूरिर्विशदयति गिरं नः पदार्थप्रदाता ॥ ३२८ ॥

मुनिदेवसूरि द्वारा (वि० स० १३२२ में) रचित 'शातिनाथचरित्र' में भी इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार आता है :

श्रीदेवानन्दसूरिभ्यो नमस्तेभ्यः प्रकाशितम्।
सिद्धसारस्वताख्यं यैर्निजं शब्दानुशासनम् ॥ १६ ॥

इन उल्लेखों से अनुमान होता है कि यह व्याकरण वि० स० १२७५ के करीब रचा गया होगा। इस दृष्टि से 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' पर यह सर्वप्रथम व्याकरण माना जा सकता है।

उपसर्गमण्डन :

धातु या धातु से बनाये हुए 'नाम' आदि के पूर्व जुड़ा हुआ और अर्थ में प्राय विशेषता लानेवाला अव्यय 'उपसर्ग' कहलाता है।

माडवगढ निवासी मत्री मडन ने 'उपसर्गमण्डन' नामक ग्रन्थ की वि० स० १४९२ मे रचना की है। वे आलमशाह अपर नाम हुशग गोरी के मत्री थे। मत्री होने पर भी वे विद्वान् और कवि थे। उनके वश आदि के विषय में महेश्वरकृत 'काव्यमनोहर' ग्रन्थ अच्छा प्रकाश डलाता है। उनके प्राय. सभी ग्रथ 'मडन' शब्द से अलकृत हैं।

उनके अन्य ग्रथ इस प्रकार है : १. अलकारमडन, २. कादम्बरीमडन, ३ काव्यमडन, ४ चम्पूमडन, ५. शृङ्गारमंडन ६ सगीतमडन और ७. सारस्वतमडन। इनके अतिरिक्त उन्होंने ८. चन्द्रविजय और ९ कविकल्पद्रुमस्कध—ये दो कृतिया भी रची हैं।[1]

धातुमञ्जरी :

तपागच्छीय उपाध्याय भानुचन्द्रसूरि के शिष्य सिद्धिचन्द्रगणि ने वि० स० १६५० में 'धातुमञ्जरी' नामक ग्रथ की रचना की है। यह पाणिनीय धातुपाठसबधी रचना है।

सिद्धिचन्द्र ने निम्नलिखित ग्रथों की भी रचना की थी १ (हैम) अनेकार्थनाममाला, २ कादम्बरी-टीका (अपने गुरु भानुचन्द्रगणि के साथ), ३ सतस्मरणस्तोत्र टीका, ४ वासवदत्ता-टीका, ५ शोभनस्तुति-टीका आदि।

मिश्रलिंगकोश, मिश्रलिंगनिर्णय, लिङ्गानुशासन :

'जैन ग्रथावली' पृ० ३०७ में 'मिश्रलिङ्गनिर्णय' नामक एक कृति और उसके कर्ता कल्याणसूरि का उल्लेख है। 'मिश्रलिंगकोश' और 'मिश्रलिंगनिर्णय' एक ही कृति मालूम होती है। इसके कर्ता का नाम कल्याणसागर है। वे अचलगच्छ के धर्ममूर्ति के शिष्य थे। उन्होंने अपने शिष्य विनीतसागर के लिए इस कोश की रचना की है। इसमें एक से ज्यादा लिंग के याने जाति के नामों की सूची इन्होंने दी है।

उणादिप्रत्यय :

दिगबराचार्य वसुनन्दि ने 'उणादिप्रत्यय' नामक एक कृति की रचना की है। इस पर इन्होंने स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है। इसका उल्लेख 'जिनरत्नकोश' पृ० ४१ पर है।

---

१. इनमें से सं० २, ६, ७, ९ के सिवाय सब कृतियाँ और 'काव्यमनोहर' पाटन की हेमचन्द्राचार्य सभा से प्रकाशित हैं।

विभक्ति विचार :

'विभक्ति विचार' नामक आंशिक व्याकरणग्रंथ की १६ पत्रों की प्रति जैसलमेर के भण्डार में विद्यमान है। प्रति में यह ग्रंथ वि० सं० १२०६ में आचार्य जिनचंद्रसूरि के शिष्य जिनमतसाधु द्वारा लिखा गया, ऐसा उल्लेख है। इसके कर्ता के विषय में पं० हीरालाल हंसराज के सूची-पत्र में आचार्य जिनपतिसूरि का उल्लेख है परन्तु इतिहास से पता लगता है कि आचार्य जिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० में हुआ था इसलिए इसके कर्ता ये ही आचार्य हों यह संभव नहीं है।

धातुरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुंदरगणि ने वि० सं० १६८० में 'धातुरत्नाकर' नामक २१०० श्लोक-प्रमाण ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में संस्कृत के प्रायः सब धातुओं का संग्रह किया गया है।

इस ग्रंथ के कर्ता के उक्तिरत्नाकर, शब्दरत्नाकर और जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ तीर्थंकर की स्तुति भी जो वि० सं० १६८३ में रची हुई है, उपलब्ध होते हैं।

धातुरत्नाकर-वृत्ति :

'धातुरत्नाकर' जो २१०० श्लोक-प्रमाण है, उस पर साधुसुन्दरगणि ने सं० १६८० में 'क्रियाकल्पलता' नाम की स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

रचनाकार ने लिखा है :

तच्छिष्योऽस्ति च साधुसुन्दर इति ख्यातोऽद्वितीयो भुवि
तेनैषा विवृतिः कृता मतिमता प्रीतिप्रदा सादरम्।
स्वोपज्ञोत्तमधातुपाठविलसत्सद्धातुरत्नाकरः
ग्रन्थस्यास्य विशिष्टशाब्दिकमतान्यालोक्य संक्षेपतः ॥

इसमें धातुओं के रूपाख्यानों का विशद आलेखन है। इसका ग्रंथ-परिमाण २१-२२ हजार श्लोक-प्रमाण है।[1]

---

१ इसकी ५४२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति कलकत्ता की गुलाबकुमारी लायब्रेरी में बंडल सं० १८, प्रति सं० १७१ में है।

क्रियाकलाप :

भावडारगच्छीय आचार्य जिनदेवसूरि ने पाणिनीय व्याकरण के धातुओं पर 'क्रियाकलाप' नामक एक कृति की रचना की है। वे आचार्य भावदेवसूरि के गुरु थे, जिन्होंने वि० स० १४१२ मे 'पार्श्वनाथचरित्र' की रचना की है, अतः आचार्य जिनदेवसूरि ने वि० स० १४१२ के पूर्व या आस-पास के समय में इस कृति की रचना की होगी ऐसा अनुमान होता है।

इस ग्रथ में 'भ्वादि' धातुओ से लेकर 'चुरादि' गण तक के धातुओं की साधनिका के संबध में विवेचन किया गया है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं है।[1]

अनिट्कारिका :

व्याकरण के धातुओ सबधी यह ग्रन्थ अज्ञातकर्तृक है। इसकी प्रति लींबडी के भडार में विद्यमान है।

अनिट्कारिका टीका

'अनिट्कारिका' पर किसी अज्ञात विद्वान् ने टीका लिखी है, जिसकी प्रति लींबडी के भडार में मौजूद है।

अनिट्कारिका-विवरण :

खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण मुनि ने अनिट्कारिका पर 'विवरण' की रचना की है। इसका उल्लेख पिटर्सन की रिपोर्ट स० ४, प्रति स० ४७८ मे है।

उणादिनाममाला :

मुनि शुभशीलगणि ने 'उणादिनाममाला' नामक ग्रथ की रचना १७ वीं शती मे की है। इसमें उणादि प्रत्ययों से बने शब्दों का सग्रह है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।

समासप्रकरण :

आचार्य जयानन्दसूरि ने 'समासप्रकरण' नामक एक कृति बनाई है। इसमे समासों का विवेचन है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१ इसकी वि० स० १५२० में लिखित ८१ पत्रो की प्रति (म० १४२१) लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद में है।

पट्कारकविवरण :

प० अमरचन्द्र नामक मुनि ने 'पट्कारकविवरण' नामक कृति की रचना की है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।

शब्दार्थचन्द्रिकोद्धार :

मुनि हर्षविजयगणि ने 'शब्दार्थचन्द्रिकोद्धार' नामक व्याकरण-विषयक ग्रथ की रचना की है, जिसकी ६ पत्रों की प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद मे प्राप्त है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

रुचादिगणविवरण :

मुनि सुमतिकल्लोल ने 'रुचादिगणविवरण' नामक ग्रथ रुचादिगण के धातुओ के बारे में रचा है। इसकी ५ पत्रों की प्रति मिलती है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।

उणादिगणसूत्र :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने व्याकरण के परिशिष्टस्वरूप 'उणादिगणसूत्र'[1] की रचना वि० १३ वीं शताब्दी में की है। मूल प्रकृति (धातु) मे उणादि प्रत्यय लगाकर नाम (शब्द) बनाने का विधान इसमें बताया गया है। इसमें कुल १००६ सूत्र हैं।

कई शब्द प्राकृत और देश्य भाषाओं से सीधे सस्कृत बनाये गये हैं।

उणादिगणसूत्र-वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'उणादिगणसूत्र' पर स्वोपज्ञ वृत्ति रची है।

विश्रान्तविद्याधरन्यास :

वामन नामक जैनेतर विद्वान ने 'विश्रान्तविद्याधर' व्याकरण की रचना की है, जो आज उपलब्ध नहीं है, परतु उसका उल्लेख वर्धमानसूरि-रचित 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ७२, ९२) में, और आचार्य हेमचन्द्रसूरिकृत 'सिद्ध हेमचद्रशब्दानुशासन' (१. ४ ५२) के स्वोपज्ञ न्यास में मिलता है।

---

१ यह ग्रंथ 'सिद्धहेमचन्द्रव्याकरण-बृहद्वृत्ति', जो सेठ मनसुखभाई भगुभाई, अहमदाबाद की ओर से छपी है, में संमिलित है। प्रो० जे० कीर्स्ट ने इसका संपादन कर अलग से वृत्ति के साथ प्रकाशित किया है।

इस व्याकरण पर मल्लवादी नामक श्वेतांबर जैनाचार्य ने न्यास ग्रंथ की रचना की ऐसा उल्लेख प्रभावकचरितकार ने किया है।[1] आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' की स्वोपज्ञ टीका में उस न्यास में से उद्धरण दिये हैं,[2] और 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ७१, ९२) में भी 'विश्रान्तविद्याधरन्यास' का उल्लेख मिलता है।

श्वेतांबर जैनसंघ मे मल्लवादी नाम के दो आचार्य हुए हैं . एक पांचवीं सदी मे और दूसरे दसवीं सदी मे। इन दो में से किस मल्लवादी ने 'न्यास' की रचना की यह शोधनीय है। यह न्यास-ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है इसलिये इसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

पांचवीं सदी मे हुए मल्लवादी ने अगर इसकी रचना की हो तो उनका दूसरा दार्शनिक ग्रंथ है 'द्वादशारनयचक्र'। यह ग्रंथ वि० सं० ४१४ में बनाया गया।

पदव्यवस्थासूत्रकारिका :

विमलकीर्ति नामक जैन मुनि ने पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के अनुसार संस्कृत धातुओं के पद जानने के लिये 'पदव्यवस्थाकारिका' नाम से सूत्रों को पद्यरूप मे ग्रथित किया है। इसके कर्ता ने खुदको विद्वान् बताया है। इसकी टीका वि० सं० १६८१ में रची गई इसलिये उसके पहिले इस ग्रंथ की रचना हुई है।

पदव्यवस्थाकारिका-टीका :

'पदव्यवस्थासूत्रकारिका' पर मुनि उदयकीर्ति ने ३३०० श्लोक-प्रमाण टीका की रचना की है। मुनि उदयकीर्ति खरतरगच्छीय साधुकीर्ति के शिष्य थे। उन्होंने बालजनों के बोध के लिये वि० सं० १६८१ में इस टीका-ग्रंथ की रचना की है।

भांडारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना के हस्तलिखित संग्रह की सूची, भा० २, खण्ड १, पृ० १९२–१९३ में दिये हुए परिचय के मुताबिक इस ग्रंथ की मूलकारिकासहित प्रति वि० सं० १७१३ में सुखसागरगणि के शिष्य मुनि समयहर्ष के लिये लिखी गई थी ऐसा अन्तिम पुष्पिका से ज्ञात होता है।

कर्ता के अन्य ग्रंथों के बारे में कुछ जानने में नहीं आया।

---

१ शब्दशास्त्रे च विश्रान्तविद्याधरवराभिदे।
न्यासं चक्रेऽल्पधीवृन्दबोधनाय स्फुटार्थकम्॥—मल्लवादिचरित।

२ संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, भा० १, पृ० ४३२.

कातन्त्रव्याकरण :

'कातन्त्रव्याकरण' की भी एक परम्परा है। इसकी रचना मे अनेक विशेषताएँ हैं और परिभाषाएँ भी पाणिनि से बहुत कुछ स्वतंत्र है। यह 'कातन्त्र व्याकरण' पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इस प्रकार दो भागों में रचा गया है। तद्धित तक का भाग पूर्वार्ध और कृदन्त प्रकरणरूप भाग उत्तरार्ध है। पूर्वभाग के कर्ता सर्ववर्मन् थे ऐसा विद्वानों का मन्तव्य है, वस्तुत· सर्ववर्मन् उसकी बृहद्वृत्ति के कर्ता थे। अनुश्रुतियों के अनुसार तो 'कातंत्र' की रचना महाराजा सातवाहन के समय में हुई थी।[1] परतु यह व्याकरण उससे भी प्राचीन है ऐसा युधिष्ठिर मीमासक का मतव्य है।[2] 'कातन्त्र-वृत्ति' के कर्ता दुर्गसिंह के कथनानुसार कृदन्त भाग के कर्ता कात्यायन थे।

सोमदेव के 'कथासरित्सागर' के अनुसार सर्ववर्मन् अजैन सिद्ध होते हैं परतु भावसेन त्रैविद्य 'रूपमाला' मे इनको जैन बताते हैं। इस विषय में शोध करना आवश्यक है।

इस व्याकरण में ८८५ सूत्र हैं, कृदन्त के सूत्रों के साथ कुल १४०० सूत्र हैं। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए इस प्रकार कहा गया है·

'छान्दसः स्वल्पमतयः शब्दान्तररताश्च ये।
ईश्वरा व्याधिनिरतास्तथाऽऽलस्ययुताश्च ये॥
वणिक्-सस्यादिसंसक्ता लोकयात्रादिषु स्थिताः।
तेषां क्षिप्रप्रबोधार्थं . . . . ॥

यह प्रतिज्ञा यथार्थ मालूम होती है। इतना छोटा, सरल और जल्दी से कठस्थ हो सके ऐसा व्याकरण लोकप्रिय बने इसमें आश्चर्य नहीं है। बौद्ध साधुओं ने इसका खूब उपयोग किया, इससे इसका प्रचार भारत के बाहर भी हुआ। 'कातंत्र' का धातुपाठ तिब्बती भाषा में आज भी सुलभ है।

आजकल इसका पठन-पाठन बगाल तक ही सीमित है। इसका अपर नाम 'कलाप' और 'कौमार' भी है। 'अग्निपुराण' और 'गरुडपुराण' में इसे कुमार—

---

१ Katantra must have been written during the close of the Andhras in 3rd century A. D.—Mythic Journal, Jan 1928

२ 'कल्याण' हिन्दू सस्कृति अंक, पृ० ६५९.

स्कन्द-प्रोक्त कहा है। इसकी सबसे प्राचीन टीका दुर्गसिंह की मिलती है। 'काशिका' वृत्ति से यह प्राचीन है, चूँकि काशिका में 'दुर्गवृत्ति' का खडन किया है। इस व्याकरण पर अनेक वैयाकरणों ने टीकाएँ लिखी हैं। जैनाचार्यों ने भी बहुत-सी वृत्तियो का निर्माण किया है।

दुर्गपदप्रबोध-टीका :

'कातन्त्रव्याकरण' पर आचार्य जिनप्रबोधसूरि ने वि० स० १३२८ में 'दुर्गपद-प्रबोध' नामक टीकाग्रथ की रचना की है। जैसलमेर और पाटन के भडार मे इस ग्रन्थ की प्रतियाँ हैं।

'खरतरगच्छपट्टावली' से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ के कर्ता का जन्म वि० स० १२८५, दीक्षा स० १२९६, सूरिपद स० १३३१ (३३), स्वर्गगमन स० १३४१ मे हुआ था। वे आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे।

दीक्षा के समय उनका नाम प्रबोधमूर्ति रखा गया था, इसलिये ग्रन्थ के रचना-समय का प्रबोधमूर्ति नाम उल्लिखित है परतु आचार्य होने के बाद जिन-प्रबोधसूरि नाम रखा गया था। पाटन की प्रति के अन्त मे इसका स्पष्टीकरण किया गया है।[1] वि०स० १३३३ के गिरनार के शिलालेख में जिनप्रबोधसूरि नाम है। वि० स० १३३४ में विवेकसमुद्रगणि-रचित 'पुण्यसारकथा' का आचार्य जिन-प्रबोधसूरि ने सशोधन किया था। वि० स० १३५१ में प्रह्लादनपुर में प्रतिष्ठित की हुई इस आचार्य की प्रतिमा स्तभतीर्थ में है।

दौर्गसिंही-वृत्ति :

'कातन्त्र-व्याकरण' पर रची गई दुर्गसिह की वृत्ति पर आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने ३००० श्लोक-प्रमाण 'दौर्गसिंही-वृत्ति' की रचना वि० स० १३६९ में की है। इसकी प्रति बीकानेर के भडार मे है।

कातन्त्रोत्तरव्याकरण :

कातन्त्र-व्याकरण की महत्ता बढाने के लिये विजयानन्द नामक विद्वान् ने 'कातन्त्रोत्तरव्याकरण' की रचना की है, जिसका दूसरा नाम है विद्यानन्द।[2] इसकी रचना वि० स० १२०८ से पूर्व हुई है।

---

१ सामान्यावस्थाया प्रबोधमूर्तिगणिनामधेयैः श्रीजिनेश्वरसूरिपट्टालङ्कारैः श्री-जिनप्रबोधसूरिभिर्विरचितो दुर्गपदप्रबोध संपूर्णः।

२ देखिए—सस्कृत व्याकरण-साहित्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४०६.

'जिनरत्नकोश' (पृ० ८४) मे कातन्त्रोत्तर के सिद्धानन्द, विजयानन्द और विद्यानन्द—ये तीन नाम दिये गये हैं। इसके कर्ता विजयानन्द अपर नाम विद्यानन्दसूरि का उल्लेख है। यह व्याकरण समास-प्रकरण तक ही मिलता है। पिटर्सन की चौथी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इस व्याकरण की ताड़पत्रीय प्रतिया जैसलमेर-भडार में हैं।

'जैनपुस्तकप्रशस्तिसग्रह' (पृ० १०६) में इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है : **इति विजयानन्दविरचिते कातन्त्रोत्तरे विद्यानन्दापरनाम्नि तद्धित-प्रकरण समाप्तम्, स० १२०८।**

कातन्त्रविस्तर :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रचे गये 'कातन्त्रविस्तर' ग्रन्थ के कर्ता वर्धमान हैं। आरा के विद्याभवन मे इसकी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति है, जो मूड-बिद्री के जैनमठ के ग्रथ-भडार की एकमात्र तालपत्रीय प्रति से नकल की गई है। इसकी रचना वि० स० १४५८ से पूर्व मानी जाती है।

स्व० बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ने 'जैन सिद्धात-भास्कर' भा० २ मे 'धार्मिक उदारता' शीर्षक अपने लेख में इन वर्धमान को श्वेताम्बर बताया है। यह किस आधार से लिखा है, इसका निर्देश उन्होंने नहीं किया।

गुजरात के राजा कर्णदेव के पुरोहित के एक शिष्य का नाम वर्धमान था, जिन्होंने केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकर' पर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ की समाप्ति में इस प्रकार लिखा है : **'इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्धमान-विरचिते कातन्त्रविस्तरे ।**

चुरु के यति ऋद्धिकरणजी के भडार में इसकी प्रति है।

बालबोध-व्याकरण :

'जैन ग्रन्थावली' (पृ० २९७) के अनुसार अञ्चलगच्छीय मेरुतुगसूरि ने कातन्त्र-सूत्रो पर इस 'बाल्बोधव्याकरण' की रचना वि० स० १४४४ में ८ अध्यायों मे २७५ श्लोक-प्रमाण की है। इसमे कहा गया है कि वि० १५ वीं शती में विद्यमान मेरुतुग ने ४८० और ५७९ श्लोक-प्रमाण एक-एक वृत्ति की रचना की है। उनमे प्रथम वृत्ति छः पादात्मक है। उन्होंने २११८ श्लोक-प्रमाण 'चतुष्क-टिप्पण' और ७६७ श्लोक-प्रमाण 'कृद्वृत्ति टिप्पण' की रचना भी की है। तदुपरात १७३४ श्लोक-प्रमाण 'आख्यातवृत्ति-ढुढिका' और २२९ श्लोक-प्रमाण 'प्राकृत-वृत्ति' की रचना की है। इन सातों ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतिया पाटन के भडार में विद्यमान है।

कातन्त्रदीपक-वृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' पर मुनीश्वरसूरि के शिष्य हर्षचन्द्र ने 'कातन्त्रदीपक' नाम से वृत्ति की रचना की है। मगलाचरण जैन है, कर्ता हर्षचन्द्र है या अन्य कोई यह निश्चित रूप से जानने में नहीं आया। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर स्टेट लायब्रेरी में है।

कातन्त्रभूषण :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य धर्मघोषसूरि ने २४००० श्लोक-प्रमाण 'कातन्त्रभूषण' नामक व्याकरणग्रन्थ की रचना की है, ऐसा 'बृहट्टिप्पणिका' में उल्लेख है।

वृत्तित्रयनिबंध :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य राजशेखरसूरि ने 'वृत्तित्रयनिबध' नामक ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका' में है।

कातन्त्रवृत्ति-पञ्जिका :

'कातन्त्रव्याकरण' की 'कातन्त्रवृत्ति' पर आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य सोमकीर्ति ने पञ्जिका की रचना की है। इसकी प्रति जैसलमेर के भडार मे है।

कातन्त्ररूपमाला :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर दिगम्बर भावसेन त्रैविद्य ने 'कातन्त्र-रूपमाला' की रचना की है।[1]

कातन्त्ररूपमाला-लघुवृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रची गई 'कातन्त्र-रूपमाला' पर 'लघु-वृत्ति' की रचना किसी दिगबर मुनि ने की है। इसका उल्लेख 'दिगबर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' पृ० ३० में है।

पृथ्वीचद्रसूरि नामक किसी जैनाचार्य ने भी इस पर टीका का निर्माण किया है। इनके बारे में अधिक ज्ञात नहीं हुआ है।

१. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

'हैमविभ्रम' मे छपी हुई मूल २१ कारिकाओं पर आचार्य जिनप्रभसूरि ने योगिनीपुर (देहली) मे कायस्थ खेतल की विनती से इस टीका की रचना वि० स० १३५२ में की है।

---

१ यह ग्रथ जैन सिद्धातभवन, आरा से प्रकाशित है।

मूल कारिका के कर्ता कौन थे, यह ज्ञात नहीं हुआ है। कारिकाओं में व्याकरण के विषय में भ्रम उत्पन्न करने वाले कई प्रयोगों को निबद्ध किया गया है। टीकाकार आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'कातन्त्र' के सूत्रों द्वारा प्रयोगों को सिद्ध करके भ्रम निरास करने का प्रयत्न किया है।

आचार्य जिनप्रभसूरि लघुखरतरगच्छ के प्रवर्तक आचार्य जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। वे असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् थे। उन्होंने अनेक ग्रंथो की रचना की है। उनका यह अभिग्रह था कि प्रतिदिन एक स्तोत्र की रचना करके ही निरवद्य आहार ग्रहण करूँगा। इनके यमक, श्लेष, चित्र, छन्दविशेष आदि नई-नई रचनाशैली से रचे हुए कई स्तोत्र प्राप्त हैं। इन्होंने इस प्रकार ७०० स्तोत्र तपागच्छीय आचार्य सोमतिलकसूरि को भेट किये थे। इनके रचे हुए ग्रंथो और कुछ स्तोत्रो के नाम इस प्रकार हैं

गौतमस्तोत्र,
चतुर्विंशतिजिनस्तुति,
चतुर्विंशतिजिनस्तव,
जिनराजस्तव
द्वयक्षरनेमिस्तव,
पञ्चपरमेष्ठिस्तव,
पार्श्वस्तव,
वीरस्तव,
शारदास्तोत्र,
सर्वज्ञभक्तिस्तव,
सिद्धान्तस्तव,
ज्ञानप्रकाश,
धर्माधर्मविचार,
परमसुखद्वात्रिंशिका
प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंशकुलक
चतुर्विधभावनाकुलक
चैत्यपरिपाटी,
तपोटमतकुट्टन,
नर्मदासुन्दरीसंधि,
नेमिनाथजन्माभिषेक,
मुनिसुव्रतजन्माभिषेक,
षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारिकाभिषेक
नेमिनाथरास,
प्रायश्चित्तविधान,
युगादिजिनचरित्रकुलक,
स्थूलभद्रफाग,
अनेक प्रबन्ध अनुयोग-चतुष्कोपेतगाथा,
विविधतीर्थकल्प (सं० १३२७ से १३८९ तक),
आवश्यकसूत्रावचूरि (षडावश्यकटीका),
सूरिमन्त्रप्रदेशविवरण,
द्वयाश्रयमहाकाव्य (श्रेणिकचरित) (सं० १३५६),
विधिप्रपा (सामाचारी) (सं० १३६३),
संदेहविषौषधि (कल्पसूत्रवृत्ति) (सं० १३६४),
साधुप्रतिक्रमणसूत्र-वृत्ति,

अजितशान्ति-उपसर्गहरस्तोत्र, भयहरस्तोत्र आदि सप्तस्मरण टीका (स० १३६५) ।

अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका की स्याद्वादमञ्जरी नामक टीका-ग्रन्थ की रचना मे आचार्य जिनप्रभसूरि ने सहायता की थी। स० १४०५ में 'प्रबन्धकोश' के कर्ता राजशेखरसूरि की 'न्यायकन्दली' में और रुद्रपल्लीय सघतिलकसूरि की स० १४२२ में रचित 'सम्यक्त्वसप्तति-वृत्ति' मे भी सहायता की थी।

दिल्ली का साहिमहम्मद आचार्य जिनप्रभसूरि को गुरु मानता था।

२. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

दूसरी 'कातन्त्रविभ्रम-टीका' चारित्रसिंह नामक मुनि ने वि० स० १६३५ मे रची है। इसकी प्रति जैसलमेर भडार में है। कर्ता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है।

कातन्त्रव्याकरण पर इनके अलावा त्रिलोचनदासकृत 'वृत्तिविवरणपञ्जिका', गाल्हणकृत 'चतुष्कवृत्ति', मोक्षेश्वरकृत 'आख्यातवृत्ति' आदि टीकाएँ भी प्राप्त है। 'कालापकविशेषव्याख्यान' भी मिलता है। एक 'कौमारसमुच्चय' नाम की ३१०० श्लोकप्रमाण पद्यात्मक टीका भी मिलती है।

सारस्वत-व्याकरण :

'सारस्वत-व्याकरण' के रचयिता का नाम है अनुभूतिस्वरूपाचार्य। वे कब हुए यह निश्चित नहीं है। अनुमान है कि वे करीब १५ वीं शताब्दी में हुए थे। जैनेतर होने पर भी जैनों में इस व्याकरण का पठन-पाठन विशेष होता रहा है, यही इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। इसमे कुल ७०० सूत्र है। रचना सरल और सहजगम्य है। इस पर कई जैन विद्वानों ने टीका-ग्रन्थो की रचना की है। यहा २३ जैन विद्वानों की टीकाओं का परिचय दिया जा रहा है।

सारस्वतमण्डन :

श्रीमालज्ञातीय मत्री मडन ने भिन्न-भिन्न विषयों पर मडनान्तसञ्ज्ञक कई ग्रथों की रचना की है। इनमें 'सारस्वतमण्डन' नाम से 'सारस्वत-व्याकरण' पर एक टीका की रचना १५ वीं शताब्दी में की है।[1]

---

१ इस ग्रथ की प्रतिया बीकानेर, बालोतरा और पाटन के भंडारों में हैं।

यशोनन्दिनी :

'सारस्वतव्याकरण' पर दिगंबर मुनि धर्मभूषण के शिष्य यशोनन्दी नामक मुनि ने अपने नाम से ही 'यशोनन्दिनी' नामक टीका की रचना की है। रचना-समय ज्ञात नहीं है। कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

राजद्राजविराजमानचरणश्रीधर्मसद्भूषण- ।
स्तत्पट्टोदयभूधरद्युमणिना श्रीमद्यशोनन्दिना ॥

विद्वच्चिन्तामणि :

'सारस्वतव्याकरण' पर अचलगच्छीय कल्याणसागर के शिष्य मुनि विनयसागरसूरि ने 'विद्वच्चिन्तामणि' नामक पद्यबद्ध टीका-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

श्रीविधिपक्षगच्छेशाः सूरिकल्याणसागराः ।
तेषां शिष्यैर्वराचार्यैः सूरिविनयसागरैः ॥ २४ ॥
सारस्वतस्य सूत्राणां पद्यबन्धैर्विनिर्मितः ।
विद्वच्चिन्तामणिग्रन्थः कण्ठपाठस्य हेतवे ॥ २५ ॥

अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में इसकी वि. सं. १८३७ में लिखित ५ पत्रों की प्रति है।

दीपिका (सारस्वतव्याकरण-टीका) :

'सारस्वतव्याकरण' पर विनयसुन्दर के शिष्य मेघरत्न ने वि० सं० १५३६ में 'दीपिका' नामक वृत्ति की रचना की है, इसे कहीं 'मेघीवृत्ति' भी कहा है। इन्होंने अपना नाम इस प्रकार बताया है :

नत्वा पार्श्वं गुरुमपि तथा मेघरत्नाभिधोऽहम् ।
टीकां कुर्वे विमलमनसं भारतीप्रक्रिया ताम् ॥

इस ग्रन्थ की वि० सं० १८८६ में लिखित १६२ पत्रों की प्रति (सं० ५९७८) और १७ वीं सदी में लिखी हुई ६८ पत्रों की प्रति (सं० ५९७९) अहमदाबाद-स्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

---

१. इसकी वि० सं० १६९५ में लिखित ३० पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के भंडार में है।

सारस्वतरूपमाला :

'सारस्वतव्याकरण' पर पद्मसुन्दरगणि ने 'सारस्वतरूपमाला' नामक कृति बनाई है। इसमें धातुओं के रूप बताये हैं। इस विषय में ग्रन्थकार ने स्वय लिखा है :

सारस्वतक्रियारूपमाला श्रीपद्मसुन्दरैः।
संदृब्धाऽलंकरोत्वेषा सुधिया कण्ठकन्दली ॥

अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में इसकी वि० सं० १७४० में लिखित ५ पत्रों की प्रति है।

क्रियाचन्द्रिका :

'सारस्वतव्याकरण' पर खरतरगच्छीय गुणरत्न ने वि० स० १६४१ में 'क्रियाचन्द्रिका' नामक वृत्ति की रचना की है, जिसकी प्रति बीकानेर के भवन-भक्ति भडार में है।

रूपरत्नमाला :

'सारस्वतव्याकरण' पर तपागच्छीय भानुमेरु के शिष्य मुनि नयसुन्दर ने वि० स० १७७६ में 'रूपरत्नमाला' नामक प्रयोगों की साधनिकारूप रचना १४००० श्लोक-प्रमाण की है। इसकी एक प्रति बीकानेर के कृपाचन्द्रसूरि ज्ञान भडार में है। दूसरी प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है। इसके अन्त में ४० श्लोकों की प्रशस्ति है। उसमें उन्होंने इस प्रकार निर्देश किया है :

ग्रथिता नयसुन्दर इति नाम्ना वाचकवरेण च तस्याम्।
सारस्वतस्थिताना सूत्राणा वार्तिकं त्वलिखत् ॥ ३७ ॥
श्रीसिद्धहेम-पाणिनिसम्मतिमाधाय सार्थकाः लिखिताः।
ये साधवः प्रयोगास्ते शिशुहितहेतवे सन्तु ॥ ३८ ॥
गुहवक्त्र-हयर्षिन्दु (१७७६) प्रमितेऽब्दे शुक्लतिथिराकायाम्।
सद्रूपरत्नमाला समर्थिता शुद्धपुष्यार्के ॥ ३९ ॥

धातुपाठ-धातुतरङ्गिणी :

'सारस्वतव्याकरण' सबंधी 'धातुपाठ' की रचना नागोरीतपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने की है और उसपर 'धातुतरगिणी' नाम से स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना भी उन्होंने की है। ग्रन्थकार ने लिखा है :

न्यायरत्नावली :

'सारस्वत-व्याकरण' पर खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य दयारत्न मुनि ने इसमें प्रयुक्त न्यायों पर 'न्यायरत्नावली' नामक विवरण वि. स. १६२६ में लिखा है जिसकी वि० स० १७३७ मे लिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है।

पंचसंधिटीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर सोमशील नामक मुनि ने 'पचसधि-टीका' की रचना की है। समय ज्ञात नहीं है। इसकी प्रति पाटन के भडार मे है।

टीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर सत्यप्रबोध मुनि ने एक टीका ग्रन्थ की रचना की है। इसका समय ज्ञात नहीं है। इसकी प्रतिया पाटन और लींबड़ी के भडारों में हैं।

शब्दप्रक्रियासाधनी-सरलाभाषाटीका :

'सारस्वतव्याकरण' पर आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने २० वीं शताब्दी मे 'शब्दप्रक्रियासाधनीसरलाभाषाटीका' नामक टीकाग्रन्थ की रचना की है, जिसका उल्लेख उनके चरितलेखों में प्राप्त होता है।

सिद्धान्तचन्द्रिका-व्याकरण :

'सिद्धान्तचन्द्रिका-व्याकरण' के मूल रचयिता रामचन्द्राश्रम हैं। वे कब हुए, यह अज्ञात है। जैनेतरकृत व्याकरण होने पर भी कई जैन विद्वानों ने इस पर वृत्तियाँ रची हैं।

सिद्धान्तचन्द्रिका-टीका :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर आचार्य जिनरत्नसूरि ने टीका की रचना की है। यह टीका छप चुकी है।

वृत्ति :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर खरतरगच्छीय कीर्तिसूरि शाखा के सदानन्द मुनि ने वि० स० १७९८ में वृत्ति की रचना की है जो छप चुकी है।

सुबोधिनी :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' पर खरतरगच्छीय रूपचन्द्रजी ने १८ वीं शती मे 'सुबोधिनी-टीका' (३४९४ श्लोकात्मक) की रचना की है, जिसकी प्रति बीका-नेर के एक भडार में है।

वृत्ति :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर खरतरगच्छीय मुनि विजयवर्धन के शिष्य ज्ञानतिलक ने १८ वीं शताब्दी मे वृत्ति की रचना की है, जिसकी प्रतियाँ बीकानेर के महिमाभक्ति भडार और अबीरजी के भडार मे है।

अनिट्कारिका-अवचूरि :

श्री क्षमामाणिक्य मुनि ने 'अनिट्कारिका' पर १८ वीं शताब्दी मे 'अव-चूरि' की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के श्रीपूज्यजी के भडार में है।

अनिट्कारिका-स्वोपज्ञवृत्ति :

नागपुरीय तपागच्छ के हर्षकीर्तिसूरि ने १७ वीं शताब्दी मे 'अनिट्कारिका' नामक ग्रथ की रचना वि० स० १६६२ मे की है और उस पर वृत्ति की रचना स० १६६९ में की है। उसकी प्रति बीकानेर के दानसागर भडार में है।

भूधातु-वृत्ति :

खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण मुनि ने वि० स० १८२८ मे 'भूधातु वृत्ति' की रचना की है। उसकी हस्तलिखित प्रति राजनगर के महिमाभक्ति भडार में है।

मुग्धाववोध-औक्तिक :

तपागच्छीय आचार्य देवसुन्दरसूरि के शिष्य कुलमण्डनसूरि ने 'मुग्धाव-बोध-औक्तिक' नामक कृति की रचना १५ वीं शताब्दी में की है। कुलमण्डन-सूरि का जन्म वि० स० १४०९ में और स्वर्गवास स० १४५५ में हुआ था। उसी के दरमियान इस ग्रथ की रचना हुई है।

गुजराती भाषा द्वारा सस्कृत का शिक्षण देने का प्रयास जिसमें हो वैसी रचनाएँ 'औक्तिक' नाम से कही जाती हैं।

इस औक्तिक में ६ प्रकरण केवल सस्कृत में हैं। प्रथम, द्वितीय, सातवें और आठवें प्रकरणों में सूत्र और कारिकाएँ सस्कृत में हैं और विवेचन प्राकृत याने जूनी गुजराती में। तीसरा, चौथा, पाँचवा, छठा और नवा प्रकरण जूनी गुजराती

में है। नाम की विभक्तियो के उदाहरणार्थ जयानदमुनिरचित 'सर्वजिनसाधारण-स्तोत्र' दिया गया है।

सस्कृत उक्ति याने बोलने की रीति के नियम इस व्याकरण में दिये गये हैं। कर्ता, कर्म और भावी उक्तियो का इसमें मुख्यतया विवेचन किया गया है इसलिये इसे औक्तिक नाम दिया गया है।

'मुग्धावबोध-औक्तिक' में विभक्तिविचार, कृदतविचार, उक्तिभेद और शब्दों का सग्रह है। 'प्राचीन गुजराती गद्यसदर्भ' पृ० १७२–२०४ मे यह छपा है।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१ विचारामृतसग्रह (रचना वि० स० १४४३)

२ सिद्धान्तालापकोद्धार

३ कायस्थितिस्तोत्र

४ 'विश्वश्रीद्ध' स्तव (इसमें अष्टादशचक्रविभूषित वीरस्तव है।)

५ 'गरीयोगुण' स्तव (इसको पचजिनहारबधस्तव भी कहते हैं।)

६ पर्युषणाकल्प-अवचूर्णि

७ प्रतिक्रमणसूत्र-अवचूर्णि

८ प्रज्ञापना-तृतीयपदसग्रहणी

बालशिक्षा :

श्रीमाल ठक्कुर कूरसिंह के पुत्र सग्रामसिंह ने 'कातन्त्रव्याकरण' का बोध कराने के हेतु 'बालशिक्षा' नामक औक्तिक की रचना वि० स० १३३६ में की थी।[1]

वाक्यप्रकाश :

बृहत्तपागच्छीय रत्नसिंहसूरि के शिष्य उदयधर्म ने वि० स० १५०७ में 'वाक्यप्रकाश' नामक औक्तिक की रचना सिद्धपुर में की है। इसमें १२८ पद्य है।

इसका उद्देश्य गुजराती द्वारा सस्कृत भाषा का व्याकरण सिखाने का है। इसलिए यहाँ कई पद्य गुजराती में देकर उसके साथ सस्कृत में अनुवाद

---

१ इस ग्रंथ का कुछ सदर्भ 'पुरातत्त्व' (पु० ३, अक १, पृ० ४०-५३) में प० लालचन्द्र गाधी के लेख में छपा है। यह ग्रथ अभी अप्रकाशित है।

दिया गया है। कृति का आरभ 'प्राध्वर' और 'वक्र' इन उक्ति के दो प्रकारो और उपप्रकारों से किया गया है। कर्तरि और कर्मणि को गिनाकर उदाहरण दिये गए हैं। इसके बाद गणज, नामज और सौत्र (कण्डवादि)—ये तीन प्रकार धातु के बताये हैं। परस्मैपदी धातु के तीन भेदो का निर्देश है। 'वर्तमान' वगैरह १० विभक्तियों, तद्धित प्रत्यय और समास की जानकारी दी गई है।

इन्होने 'सन्नमत्रिदश' से प्रारम्भ होनेवाले द्वात्रिंशद्दलकमलबध-महावीरस्तव की रचना की है।[१]

(क) इस 'वाक्यप्रकाश' पर सोमविमल (हेमविमल) सूरि के शिष्य हर्ष-कुल ने टीका की रचना वि० स० १५८३ के आसपास की है।

(ख) कीर्तिविजय के शिष्य जिनविजय ने स० १६९४ मे इस पर टीका रची है।

(ग) रत्नसूरि ने पर इस टीका लिखी है, ऐसा 'जैन ग्रथावली' पृ० ३०७ मे उल्लेख है।

(घ) किसी अज्ञात मुनि ने 'श्रीमज्जिनेन्द्रमानम्य' से प्रारभ होनेवाली टीका की रचना की है।

उक्तिरत्नाकर :

पाठक साधुकीर्ति के शिष्य साधुसुन्दरगणि ने वि० स० १६८० के आस-पास में 'उक्तिरत्नाकर' नामक औक्तिक ग्रथ की रचना की है। अपनी देश-भाषा में प्रचलित देश्य रूपवाले शब्दों के सस्कृत प्रतिरूपों का ज्ञान कराने के हेतु इस ग्रथ का सकलन किया है।

इसमें षट्कारक विषय का निरूपण है। विद्यार्थियों को विभक्ति ज्ञान के साथ साथ कारक के अर्थों का ज्ञान भी इससे हो जाता है। इसमें २४०० देश्य शब्द और उनके सस्कृत प्रतिरूप दिये गये हैं।

साधुसुन्दरगणि ने १ धातुरत्नाकर, २ शब्दरत्नाकर और ३. (जैसल-मेर के किले मे प्रतिष्ठित) पार्श्वनाथस्तुति की रचना की है।

---

१ जैन स्तोत्र-समुच्चय, पृ० २६५–६६ में यह स्तोत्र छपा है।

उक्तिप्रत्यय :

मुनि धीरसुन्दर ने 'उक्तिप्रत्यय' नामक औक्तिक व्याकरण की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भंडार में है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

उक्तिव्याकरण :

'उक्तिव्याकरण' नामक ग्रंथ की रचना किसी अज्ञात विद्वान् ने की है। उसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भंडार में है।

प्राकृत-व्याकरण :

स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा को 'प्राकृत' कहते हैं।[1] प्रदेशों की अपेक्षा से प्राकृत के अनेक भेद हैं। प्राकृत व्याकरणों से और नाटक तथा साहित्य के ग्रन्थों से उन-उन भेदों का पता लगता है।

भगवान् महावीर और बुद्ध ने बाल, स्त्री, मन्द और मूर्ख लोगों के उपकारार्थ धर्मज्ञान का उपदेश प्राकृत भाषा में ही दिया था। उनके दिये गये उपदेश आगम और त्रिपिटक आदि धर्मग्रन्थों में सगृहीत हैं।[2] सस्कृत के नाट्य-साहित्य में भी स्त्रियों और सामान्य पात्रों के सवाद प्राकृत भाषा में ही निबद्ध हैं। जैन और बौद्ध साहित्य समझने के लिये और प्रान्तीय भाषाओं का विकास जानने के लिये प्राकृत और अपभ्रश भाषा के ज्ञान की नितात आवश्यकता है। उस आवश्यकता को पूरी करने के लिये प्राचीन आचार्यों ने सस्कृत भाषा में ही प्राकृत भाषा के अनेक ग्रन्थ निर्मित किये हैं। प्राकृत भाषा में कोई व्याकरण-ग्रथ प्राप्त नहीं है।

प्राकृत भाषा के वैयाकरणों ने अपने पूर्व के वैयाकरणों की शैली को अपनाकर और अपने अनुभूत प्रयोगों को बढ़ाकर व्याकरणों की रचना की है। इन्होंने अपने-अपने प्रदेश की प्राकृत भाषा को महत्त्व देकर जिन व्याकरणग्रन्थों की रचना की है वे आज उपलब्ध हैं।

---

१ सकलजगज्जन्तूना व्याकरणादिभिरनाहितसस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृति, तत्र भव सैव वा प्राकृतम्।

२ बाल-स्त्री-मूढ-मूर्खाणा नृणा चारित्रकाङ्क्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृत कृतः॥

जिन जैन विद्वानों ने प्राकृत व्याकरणग्रन्थ निर्माणकर भारतीय साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना अमूल्य योग प्रदान किया है उनके संबंध में यहाँ विचार करेंगे।

प्राकृत भाषा के साथ-साथ अपभ्रंश भाषा का विचार भी यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। प्राकृत का अन्त्य स्वरूप और प्राचीन देशी भाषाओं से सीधा संबंध रखनेवाली भाषा ही अपभ्रंश है। इस भाषा का व्याकरणस्वरूप छठी-सातवीं शताब्दी से ही निश्चित हो चुका था। महाकवि स्वयंभू ने अपभ्रंश भाषा के 'स्वयंभू व्याकरण' की रचना ८ वीं शताब्दी में की थी जो आज उपलब्ध नहीं है। इस समय से ही अपभ्रंश भाषा में स्वतन्त्र साहित्य का व्यवस्थित निर्माण होते-होते वह विस्तृत और विपुल बनता गया और यह भाषा साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त कर सकी। इस साहित्य को देखते हुए पुरानी गुजराती, राजस्थानी आदि देशी भाषाओं का इसके साथ निकटतम सम्बन्ध है, ऐसा निःसंशय कह सकते हैं। गुजरात, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि प्रदेशों के लोग अपभ्रंश भाषा में ही रुचि रखते थे।[1]

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समय के प्रवाह को देखकर करीब १२० सूत्रों में 'अपभ्रंश-व्याकरण' की रचना की है, जो उपलब्ध व्याकरणों में विस्तृत और उत्कृष्ट माना गया है।

---

१. गौडाद्याः प्रकृतस्थाः परिचितरुचयः प्राकृते लाटदेश्याः,
सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्क-भादानकाश्च।
आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते,
यो मध्ये मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः॥

राजशेखर—काव्यमीमांसा, अध्याय ९-१०, पृ० ४८-५१.

पठन्ति लटभं लाटाः प्राकृतं संस्कृतद्विषः।
अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गूर्जराः॥

भोजदेव—सरस्वतीकण्ठाभरण, २-१३

सुराष्ट्र-त्रवणाद्याश्च पठन्त्यर्पितसौष्ठवम्।
अपभ्रंशवदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि॥

राजशेखर—काव्यमीमांसा, पृ० ३४.

अनुपलब्ध प्राकृत-व्याकरण :

१. दिगंबर आचार्य समन्तभद्र ने 'प्राकृत व्याकरण' की रचना की थी ऐसा उल्लेख मिलता है परन्तु यह व्याकरण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

२. [illegible] ने [illegible] नामक 'प्राकृत व्याकरण' के सूत्रों का उल्लेख किया है परन्तु यह व्याकरण भी प्राप्त नहीं हुआ है।

३. [illegible] ने 'प्राकृत युक्ति' नामक प्राकृत व्याकरण की रचना की थी, जिसका उल्लेख 'जैन ग्रंथावली' पृ० ३०१ पर है। यह व्याकरण भी देखने में नहीं आया।

प्राकृतलक्षण :

चण्ड नामक विद्वान् ने 'प्राकृतलक्षण' नाम से तीन और दूसरे मत से चार अध्यायों में प्राकृतव्याकरण की रचना की है, जो उपलब्ध व्याकरणों में संक्षिप्ततम और प्राचीन है। इसमें सब मिलाकर ९९ और दूसरे मत से १०३ सूत्रों में प्राकृत भाषा का विवेचन किया गया है।

आदि में भगवान् वीर को नमस्कार करने से और 'अर्हन्त' (२८, ४६), 'जिनवर' (४८) का उल्लेख होने से चण्ड का जैन होना सिद्ध होता है। चण्ड ने अपने समय के वृद्धमतों का निरीक्षण करके अपने व्याकरण की रचना की है।

प्राकृत शब्दों के तीन रूप—१. तद्भव, २ तत्सम और ३. देश्य सूचित कर लिङ्ग और विभक्तियों का विधान संस्कृतवत् बताया है। चौथे सूत्र में व्यत्यय का निर्देश करके प्रथम पाद के ५ वें सूत्र से ३५ सूत्रों तक संज्ञा और विभक्तियों के रूप बताये हैं। 'अहम्' का 'हउं' आदेश, जो अपभ्रंश का विशिष्ट रूप है, उस समय में प्रचलित था, ऐसा मान सकते हैं। द्वितीय पाद के २९ सूत्रों में स्वरपरिवर्तन, शब्दादेश और अव्ययों का विधान है। तीसरे पाद के ३५ सूत्रों में व्यजनों के परिवर्तनों का विधान है।

इन तीन पादों में सूत्रसंख्या ९९ होती है जिनमें व्याकरण समाप्त किया गया है। कई प्रतियों में चतुर्थ पाद भी मिलता है, जो चार सूत्रों में है। उसमें

1 A. N Upadhye: A Prakrit Grammar Attributed to Samantabhadra—Indian Historical Quarterly, Vol XVII, 1942, pp 511-516

अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी मे होनेवाले वर्णादेशोंका विधान इस प्रकार किया है : १ अपभ्रंश में अधोरेफ का लोप नहीं होता है। २. पैशाची मे 'र्' और 'स्' के स्थान में 'ल्' और 'न्' का आदेश होता है। ३. मागधी मे 'र्' और 'स्' के स्थान में 'ल्' और 'श्' का आदेश होता है। ४ शौरसेनी मे 'त्' के स्थान मे विकल्प से 'द्' आदेश होता है।

इस प्रकार इस व्याकरण की रचनाशैली का ही बाद के वररुचि, हेमचन्द्राचार्य आदि वैयाकरणों ने अनुसरण किया है। इससे चण्ड को प्राकृत-व्याकरण के रचयिताओ में प्रथम और आदर्श मान सकते हैं।

इस 'प्राकृतलक्षण' के रचना-काल से सम्बन्धित कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है तथापि अन्तःपरीक्षण करते हुए डा० हीरालालजी जैन रचना-काल के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं :

"प्राकृत सामान्य का जो निरूपण यहाँ पाया जाता है वह अशोक की धर्मलिपियो की भाषा और वररुचि द्वारा 'प्राकृतप्रकाश' मे वर्णित प्राकृत के बीच का प्रतीत होता है। वह अधिकाश अश्वघोष व अल्पाश भास के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृतों से मिलता हुआ पाया जाता है, क्योकि इसमें मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यञ्जनों की बहुलता से रक्षा की गई है, और उनमे से प्रथम वर्णों में केवल 'क', 'व', तृतीय वर्णों में 'ग' के लोप का एक सूत्र मे विधान किया गया है और इस प्रकार च, ट, त, प वर्णों की शब्द के मध्य मे भी रक्षा की प्रवृत्ति सूचित की गई है। इस आधार पर 'प्राकृतलक्षण' का रचना-काल ईसा की दूसरी-तीसरी शती अनुमान करना अनुचित नहीं है।"

प्राकृतलक्षण-वृत्ति :

'प्राकृतलक्षण' पर सूत्रकार चण्ड ने स्वय वृत्ति की रचना की है। यह ग्रथ एकाधिक स्थलों से प्रकाशित हुआ है।[1]

---

१ (क) बिब्लिओथेका इण्डिका, कलकत्ता, सन् १८८०
(ख) रेवतीकान्त भट्टाचार्य, कलकत्ता, सन् १९२३.
(ग) मुनि दर्शनविजयजी त्रिपुटी द्वारा सपादित—चारित्र ग्रंथमाला, अहमदाबाद

स्वयंभू-व्याकरण :

[illegible] स्वयंभू ने किसी अपभ्रंश व्याकरण की रचना की थी, यह उनके [illegible] 'पउमचरिय' महाकाव्य के निम्न उल्लेख से मालूम होता है :

तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भंस मत्त-मायंगो ।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो पडइ ॥

यह 'स्वयंभूव्याकरण' उपलब्ध नहीं है। इसका नाम क्या था यह भी मालूम नहीं।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन-प्राकृतव्याकरण :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि (सन् १०८८ से ११७२) ने व्याकरण, साहित्य, अलंकार, छन्द, न्याय आदि कई शास्त्रों का निर्माण किया है। उनकी विविध विषयों के सर्वांगपूर्ण शास्त्रों के निर्माता के रूप में प्रसिद्धि है। इसीलिये तो उनके समस्त साहित्य का अभ्यास परिशीलन करनेवाला सर्वशास्त्रवेत्ता होने की योग्यता प्राप्त कर सकता है। उनका 'प्राकृतव्याकरण'[1] 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' का आठवाँ अध्याय है। सिद्धराज को अर्पित करने से और हेमचन्द्ररचित होने से इसे 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' कहा गया है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने प्राचीन प्राकृत व्याकरणवाङ्मय का अवलोकन करके और देशी धातु प्रयोगों का धात्वादेशों में संग्रह करके प्राकृत भाषाओं के अति विस्तृत और सर्वोत्कृष्ट व्याकरण की रचना की है। यह रचना अपने युग के

---

१. (क) डा० आर पिशल—Hemachandra's Gramatik der Prakrit Sprachen (Siddha Hemachandra Adhyaya VIII,) Halle 1877, and Theil (uber Setzung and Erlauterungen), Halle, 1880 (in Roman script)

(ख) कुमारपाल-चरित के परिशिष्ट के रूप में—B S P. S (XX), बंबई, सन् १९००.

(ग) पूना, सन् १९२८, १९३६

(घ) दलीचंद पीतांबरदास, मीयागाम, वि० सं० १९६१ (गुजराती अनुवादसहित)

(ङ) हिन्दी व्याख्यासहित—जैन दिवाकर दिव्यज्योति कार्यालय, ब्यावर, वि० सं० २०२०

प्राकृत भाषा के व्याकरण और साहित्यिक प्रवाह को लक्ष्य में रखकर ही की है। आचार्य ने 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि जिसकी प्रकृति संस्कृत है उससे उत्पन्न व आगत प्राकृत है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संस्कृत में से प्राकृत का अवतार हुआ। यहाँ आचार्य का अभिप्राय यह है कि संस्कृत के रूपों को आदर्श मानकर प्राकृत शब्दों का अनुशासन किया गया है। तात्पर्य यह है कि संस्कृत की अनुकूलता के लिये प्रकृति को लेकर प्राकृत भाषा के आदेशों की सिद्धि की गई है।

प्राकृत वैयाकरणों की पाश्चात्य और पौरस्त्य इन दो शाखाओं में आचार्य हेमचन्द्र पाश्चात्य शाखा के गणमान्य विद्वान् हैं। इस शाखा के प्राचीन वैयाकरण चण्ड आदि की परंपरा का अनुसरण करते हुए आचार्य हेमचन्द्रसूरि के 'प्राकृतव्याकरण' में चार पाद हैं। प्रथम पाद के २७१ सूत्रों में संधि, व्यञ्जनान्त शब्द, अनुस्वार, लिंग, विसर्ग, स्वरव्यत्यय और व्यञ्जनव्यत्यय—इनका क्रमशः निरूपण किया गया है। द्वितीय पाद के २१८ सूत्रों में संयुक्त व्यञ्जनों के विपरिवर्तन, समीकरण, स्वरभक्ति, वर्णविपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात और अव्ययों का वर्णन है। तृतीय पाद के १८२ सूत्रों में कारक-विभक्तियों तथा क्रिया-रचना से संबंधित नियम बताये गये हैं। चौथे पाद में ४४८ सूत्र हैं, जिनमें से प्रथम २५९ सूत्रों में धात्वादेश और शेष सूत्रों में क्रमशः शौरसेनी के २६० से २८६ सूत्र, मागधी के २८७ से ३०२, पैशाची के ३०३ से ३२४, चूलिका-पैशाची के ३२५ से ३२८ और फिर अपभ्रंश के ३२९ से ४४६ सूत्र हैं। अंत के समाप्ति-सूचक दो सूत्रों (४४७ और ४४८) में यह कहा गया है कि प्राकृतों में उक्त लक्षणों का व्यत्यय भी पाया जाता है तथा जो बात यहाँ नहीं बताई गई है वह 'संस्कृतवत्' सिद्ध समझनी चाहिये।

आचार्य हेमचंद्रसूरि ने आगम आदि (जो अर्धमागधी भाषा में लिखे गये हैं) साहित्य को लक्ष्य में रखकर तृतीय सूत्र व अन्य अनेक सूत्रों की वृत्ति में 'आर्ष प्राकृत' का उल्लेख किया है और उसके उदाहरण भी दिये हैं किन्तु वे बहुत ही अल्प प्रमाण में हैं। कश्चित्, केचित्, अन्ये आदि शब्दप्रयोगों से मालूम होता है कि अपने से पहले के व्याकरणों से भी सामग्री ली है। मागधी का विवेचन करते हुए कहा है कि अर्धमागधी में पुल्लिंग कर्ता के लिये एक वचन में 'अ' के स्थान में 'ए' कार हो जाता है। (वस्तुतः यह नियम मागधी भाषा के लिये लागू होता है।) अपभ्रंश भाषा का यहाँ विस्तृत विवेचन है। ऐसा विवेचन इतनी पूर्णता से कोई भी नहीं कर पाया है। अपभ्रंश के अनेक अज्ञात

पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह मे विद्यमान है।

आचार्य हरिप्रभसूरि के समय और गुरु के विषय में कुछ जानने मे नहीं आया। इन्होने अन्त मे शान्तिप्रभसूरि के संप्रदाय मे होने का उल्लेख इस प्रकार किया है :

इति श्रीहरिप्रभसूरिविरचितायां प्राकृतदीपिकायां चतुर्थः पादः समाप्तः।

मन्दमतिविनेयबोधहेतोः श्रीशान्तिप्रभसूरिसंप्रदायात्।
अस्यां बहुरूपसिद्धौ विदधे सूरिहरिप्रभः प्रयत्नम्॥

हैमप्राकृतढुंढिका :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर आचार्य सौभाग्यसागर के शिष्य उदयसौभाग्यगणि ने 'हैमप्राकृतढुंढिका' अपरनाम 'व्युत्पत्ति-दीपिका' नामक वृत्ति की रचना वि० स० १५९१ में की है।[1]

प्राकृतप्रबोध (प्राकृतवृत्तिढुंढिका) :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर मलधारी उपाध्याय नरचन्द्र-सूरि ने अवचूरिरूप ग्रन्थ की रचना की है। इसके अन्त में उन्होंने ग्रन्थ-निर्माण का हेतु इस प्रकार बतलाया है :

नानाविधैर्विधुरितां विबुधैः सबुद्ध्या
तां रूपसिद्धिमखिलामवलोक्य शिष्यैः।
अभ्यर्थितो मुनिरनुज्झितसंप्रदाय—
मारम्भमेनमकरोन्नरचन्द्रनामा ॥

इस ग्रन्थ मे 'तत्त्वप्रकाशिका' (बृहद्वृत्ति) मे निर्दिष्ट उदाहरणों की सूत्र-पूर्वक साधनिका की गई है। 'न्यायकदली' की टीका में राजशेखरसूरि ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में हैं।

प्राकृतव्याकृति (पद्यविवृति) :

आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने आचार्य हेमचन्द्र के सूत्रों की स्वोपज्ञ सोदाहरण वृत्ति को पद्य में ग्रथित कर उसका 'प्राकृतव्याकृति' नाम रखा है।

---

१ यह वृत्ति भीमसिंह माणेक, बम्बई से प्रकाशित हुई है।

सकता है। जो शब्द साध्यमान और सिद्ध संस्कृत है उनके विषय में ही इस व्याकरण में प्राकृत के नियम दिये गये हैं।

प्रस्तुत व्याकरण में तीन अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के चार चार पाद हैं। प्रथम अध्याय, द्वितीय अध्याय और तृतीय अध्याय के प्रथम पाद में प्राकृत का विवेचन है। तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद में शौरसेनी (सूत्र १ से २६), मागधी (२७ से ४२), पैशाची (४३ से ६३) और चूलिका-पैशाची (६४ से ६७) के नियम बताये गये हैं। तीसरे और चौथे पाद में अपभ्रंश का विवेचन है। अपभ्रंश के उदाहरणों की अपेक्षा से आचार्य हेमचंद्रसूरि से इसमें कुछ मौलिकता दिखाई देती है।

प्राकृतशब्दानुशासन वृत्ति :

त्रिविक्रम ने अपने 'प्राकृतशब्दानुशासन पर स्वोपज्ञ वृत्ति' की रचना की है। प्राकृत रूपों के विवेचन में इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र का आधार लिया है।

प्राकृत-पद्यव्याकरण :

प्रस्तुत ग्रन्थ का वास्तविक नाम और कर्ता का नाम अज्ञात है। यह अपूर्ण रूप में उपलब्ध है, जिसमें केवल ८२७ श्लोक हैं। इस ग्रंथ का आरंभ इस प्रकार है

संस्कृतस्य विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं तत् तु [यद्] नानावस्थान्तरम्॥ १ ॥
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमिति त्रिधा।
सौरसेन्यं च मागध्यं पैशाच्यं चापभ्रंशिकम्॥ २ ॥
देशीगतं चतुर्धेति तदग्रे कथयिष्यते।
. .. .

इनके गुरु का नाम विद्यानन्दी था और मल्लिभूषण नामक मुनि इनके गुरुभाई थे। ये कट्टर दिगंबर थे, ऐसा इनके ग्रंथों के विवेचन से फलित होता है। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचित 'षट्प्राभृत-टीका' और 'यशस्तिलक-चन्द्रिका' में इन्होंने स्वयं का परिचय 'उभयभाषाचक्रवर्ती, कलिकालगौतम, कलिकालसर्वज्ञ, तार्किकशिरोमणि, नवनवतिवादिविजेता, परागमप्रवीण, व्याकरण-कमलमार्तण्ड' विशेषणों से दिया है।

औदार्यचिन्तामणि व्याकरण की रचना इन्होंने वि० सं० १५७५ में की है। इसमें प्राकृतभाषाविषयक छ अध्याय हैं। यह आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' और त्रिविक्रम के 'प्राकृतशब्दानुशासन' से बड़ा है। इन्होंने आचार्य हेमचद्र के व्याकरण का ही अनुसरण किया है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है।[1] इसलिये इसके विषय में विशेष कहा नहीं जा सकता।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है

१ व्रतकथाकोश, २ श्रुतसघपूजा, ३ जिनसहस्रनामटीका, ४ तत्त्वत्रय-प्रकाशिका, ५ तत्त्वार्थसूत्र-वृत्ति, ६ महाभिषेक टीका, ७ यशस्तिलकचन्द्रिका।

चिन्तामणि-व्याकरण :

'चिन्तामणि व्याकरण' के कर्ता शुभचद्रसूरि दिगम्बरीय मूलसघ, सरस्वती-गच्छ और बलात्कारगण के भट्टारक थे। ये विजयकीर्ति के शिष्य थे। इनको त्रैविद्यविद्याधर और षड्भाषाचक्रवर्ती की पदवियाँ प्राप्त थीं। इन्होंने साहित्य के विविध विषयों का अध्ययन किया था।

इनके रचित 'चिन्तामणिव्याकरण' मे प्राकृत-भाषाविषयक चार चार पादयुक्त तीन अध्याय है। कुल मिलाकर १२२४ सूत्र है। यह व्याकरण आचार्य हेमचद्र के 'प्राकृतव्याकरण' का अनुसरण करता है। इसकी रचना वि० स० १६०५ में हुई है। 'पाण्डवपुराण' की प्रशस्ति मे इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है.

योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयम्।

---

१ यह ग्रथ तीन अध्यायों मे विजागापट्टम् से प्रकाशित हुआ है देखिए—Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol XIII, pp 52-53.

चिन्तामणि-व्याकरणवृत्ति :

'चिन्तामणिव्याकरण'[1] पर आचार्य शुभचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ के अलावा इन्होंने अन्य अनेक ग्रथों की भी रचना की है।

अर्धमागधी-व्याकरण :

'अर्धमागधी-व्याकरण'[2] की सूत्रबद्ध रचना वि० स० १९९५ के आसपास शतावधानी मुनि रत्नचन्द्रजी (स्थानकवासी) ने की है। मुनि श्री ने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी बनाई है।

प्राकृत-पाठमाला :

उपर्युक्त मुनि रत्नचन्द्रजी ने 'प्राकृत-पाठमाला' नामक ग्रथ की रचना प्राकृत भाषा के विद्यार्थियों के लिये की है। यह कृति भी छप चुकी है।

कर्णाटक-शब्दानुशासन :

दिगम्बर जैन मुनि अकलक ने 'कर्णाटकशब्दानुशासन' नामक कन्नड भाषा के व्याकरण की रचना शक स० १५२६ (वि० स० १६६१) मे सस्कृत में की है। इस व्याकरण मे ५९२ सूत्र हैं।[3]

नागवर्म ने जिस 'कर्णाटकभूषण' व्याकरण की रचना की है उससे यह व्याकरण बड़ा है और 'शब्दमणिदर्पण' नामक व्याकरण से इसमे अधिक विषय है। इसलिए यह सर्वोत्तम व्याकरण माना जाता है।

मुनि अकलक ने इसमें अपने गुरु का परिचय दिया है। इसमे इन्होंने चारुकीर्ति के लिये अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। 'कर्णाटक-शब्दानुशासन' पर किसी ने 'भाषामञ्जरी' नामक वृत्ति लिखी है तथा 'मञ्जरीमकरन्द' नामक विवरण भी लिखा है।

---

१ विशेष परिचय के लिए देखिए—डा० ए० एन० उपाध्ये का लेख A B O R I, Vol. XIII, pp 46-52

२ यह ग्रन्थ मेहरचन्द लछमणदास ने लाहोर से सन् १९३८ मे प्रकाशित किया है।

३ 'अनेकान्त' वर्ष १, किरण ६–७, पृ० ३३५

इनके गुरु का नाम विद्यानन्दी था और मल्लिभूषण नामक मुनि इनके गुरुभाई थे। ये कट्टर दिगंबर थे, ऐसा इनके ग्रंथों के विवेचन से फलित होता है। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचित 'षट्प्राभृत-टीका' और 'यशस्तिलक-चन्द्रिका' में इन्होंने स्वय का परिचय 'उभयभाषाचक्रवर्ती, कलिकालगौतम, कलिकालसर्वज्ञ, तार्किकशिरोमणि, नवनवतिवादिविजेता, परागमप्रवीण, व्याकरण-कमलमार्तण्ड' विशेषणों से दिया है।

औदार्यचिन्तामणि व्याकरण की रचना इन्होंने वि० स० १५७५ में की है। इसमें प्राकृतभाषाविषयक छ. अध्याय हैं। यह आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' और त्रिविक्रम के 'प्राकृतशब्दानुशासन' से बड़ा है। इन्होंने आचार्य हेमचद्र के व्याकरण का ही अनुसरण किया है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है।[1] इसलिये इसके विषय में विशेष कहा नहीं जा सकता।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है .

१. व्रतकथाकोश, २. श्रुतसघपूजा, ३ जिनसहस्रनामटीका, ४ तत्त्वत्रय-प्रकाशिका, ५ तत्त्वार्थसूत्र-वृत्ति, ६ महाभिषेक-टीका, ७ यशस्तिलकचन्द्रिका।

चिन्तामणि-व्याकरण :

'चिन्तामणि-व्याकरण' के कर्ता शुभचद्रसूरि दिगम्बरीय मूलसघ, सरस्वती-गच्छ और बलात्कारगण के भट्टारक थे। ये विजयकीर्ति के शिष्य थे। इनको त्रैविद्यविद्याधर और षड्भाषाचक्रवर्ती की पदवियाँ प्राप्त थीं। इन्होंने साहित्य के विविध विषयों का अध्ययन किया था।

इनके रचित 'चिन्तामणिव्याकरण' में प्राकृत-भाषाविषयक चार चार पादयुक्त तीन अध्याय हैं। कुल मिलाकर १२२४ सूत्र हैं। यह व्याकरण आचार्य हेमचद्र के 'प्राकृतव्याकरण' का अनुसरण करता है। इसकी रचना वि० स० १६०५ में हुई है। 'पाण्डवपुराण' की प्रशस्ति में इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है :

योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयम्।

---

१ यह ग्रंथ तीन अध्यायों में विजागापट्टम् से प्रकाशित हुआ है · देखिए—
Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol XIII, pp 52-53.

चिन्तामणि-व्याकरणवृत्ति :

'चिन्तामणिव्याकरण'[1] पर आचार्य शुभचद्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ के अलावा इन्होंने अन्य अनेक ग्रथों की भी रचना की है।

अर्धमागधी-व्याकरण :

'अर्धमागधी-व्याकरण'[2] की सूत्रबद्ध रचना वि० स० १९९५ के आसपास शतावधानी मुनि रत्नचन्द्रजी (स्थानकवासी) ने की है। मुनि श्री ने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी बनाई है।

प्राकृत-पाठमाला :

उपर्युक्त मुनि रत्नचन्द्रजी ने 'प्राकृत-पाठमाला' नामक ग्रथ की रचना प्राकृत भाषा के विद्यार्थियों के लिये की है। यह कृति भी छप चुकी है।

कर्णाटक-शब्दानुशासन :

दिगम्बर जैन मुनि अकलक ने 'कर्णाटकशब्दानुशासन' नामक कन्नड भाषा के व्याकरण की रचना शक स० १५२६ (वि० स० १६६१) मे सस्कृत में की है। इस व्याकरण मे ५९२ सूत्र है।[3]

नागवर्म ने जिस 'कर्णाटकभूषण' व्याकरण की रचना की है उससे यह व्याकरण बड़ा है और 'शब्दमणिदर्पण' नामक व्याकरण से इसमे अधिक विषय है। इसलिए यह सर्वोत्तम व्याकरण माना जाता है।

मुनि अकलक ने इसमे अपने गुरु का परिचय दिया है। इसमे इन्होंने चारुकीर्ति के लिये अनेक विशेषणो का प्रयोग किया है। 'कर्णाटक-शब्दानुशासन' पर किसी ने 'भाषामञ्जरी' नामक वृत्ति लिखी है तथा 'मञ्जरीमकरन्द' नामक विवरण भी लिखा है।

१ विशेष परिचय के लिए देखिए—डा० ए० एन० उपाध्ये का लेख : A. B O R I., Vol. XIII, pp. 46-52

२ यह ग्रन्थ मेहरचन्द लछमणदास ने लाहोर से सन् १९३८ मे प्रकाशित किया है।

३ 'अनेकान्त' वर्ष १, किरण ६–७, पृ० ३३५

पारसीक-भाषानुशासन :

'पारसीकभाषानुशासन' अर्थात् फारसी भाषा के व्याकरण की रचना मदनपाल ठक्कुर के पुत्र विक्रमसिंह ने की है। संस्कृत भाषा में रचे हुए इस व्याकरण में पाँच अध्याय हैं। विक्रमसिंह आचार्य आनन्दसूरि के भक्त शिष्य थे। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पञ्जाब के किसी भंडार में है।[1]

फारसी-धातुरूपावली :

किसी अज्ञात विद्वान् ने 'फारसी-धातुरूपावली' नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसकी १९ वीं शती में लिखी गई ७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

1. A Catalogue of Manuscripts ... Bhandars, ...

दूसरा प्रकरण

कोश

कोश भी व्याकरण-शास्त्र की ही भांति भाषा-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। व्याकरण केवल यौगिक शब्दों की सिद्धि करता है, लेकिन रूढ और योगरूढ शब्दों के लिये तो कोश का ही आश्रय लेना पड़ता है।

वैदिक काल से ही कोश का ज्ञान और महत्त्व स्वीकृत है, यह 'निघण्टु-कोश' से ज्ञात होता है। वेद के 'निरुक्त'कार यास्क मुनि के सम्मुख 'निघण्टु' के पाँच संग्रह थे। इनमें से प्रथम के तीन संग्रहो मे एक अर्थवाले भिन्न-भिन्न शब्दो का संग्रह था। चौथे में कठिन शब्द और पाँचवें मे वेद के भिन्न-भिन्न देवताओ का वर्गीकरण था। 'निघण्टु-कोश बाद में बननेवाले लौकिक शब्द-कोशों से अलग-सा जान पडता है। 'निघण्टु' में विशेष रूप से वेद आदि 'संहिता' ग्रथों के अस्पष्ट अर्थों को समझाने का प्रयत्न किया गया है अर्थात् 'निघण्टु-कोश' वैदिक ग्रथों के विषय की चर्चा से मर्यादित है, जबकि लौकिक कोश विविध वाड्मय के सब विषयों के नाम, अव्यय और लिंग का बोध कराते हुए शब्दो के अर्थों को समझाने- वाला व्यापक शब्दभंडार प्रस्तुत करता है।

'निघण्टु-कोश' के बाद यास्क के 'निरुक्त' ने विशिष्ट शब्दों का संग्रह है और उसके बाद पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' मे यौगिक शब्दो का विशाल समूह कोश की समृद्धि का विकास करता हुआ जान पड़ता है।

पाणिनि के समय तक के सब कोश-ग्रथ गद्य में प्राप्त होते हैं परन्तु बाद के लौकिक कोशों की अनुष्टुप्, आर्या आदि छंदों मे पद्यमय रचनाएँ प्राप्त होती है।

है। हेमचन्द्ररचित 'देशीनाममाला' (रयणावली) मे भी धनपाल का उल्लेख है। 'शार्ङ्गधर-पद्धति' में धनपाल के कोशविषयक पद्यों के उद्धरण मिलते है और एक टिप्पणी मे धनपालरचित 'नाममाला' के १८०० श्लोक-परिमाण होने का उल्लेख किया गया है। इन सब प्रमाणों से मालूम होता है कि धनपाल ने संस्कृत और देशी शब्दकोश ग्रंथों की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं हैं।

इनके रचित अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं :

१ तिलकमञ्जरी (संस्कृत गद्य), २. श्रावकविधि (प्राकृत पद्य), ३ ऋषभपञ्चाशिका (प्राकृत पद्य), ४ महावीरस्तुति (प्राकृत पद्य), ५. सत्य-पुरीयमंडन-महावीरोत्साह (अपभ्रंश पद्य), ६ शोभनस्तुति-टीका (संस्कृत गद्य)।

धनञ्जयनाममाला :

धनंजय नामक दिगंबर गृहस्थ विद्वान् ने अपने नाम से 'धनञ्जयनाममाला'[1] नामक एक छोटे से संस्कृतकोश की रचना की है।

माना जाता है कि कर्ता ने २०० अनुष्टुप् श्लोक ही रचे हैं। किसी आवृत्ति मे २०३ श्लोक हैं तो कहीं २०५ श्लोक हैं।

धनञ्जय कवि ने इस कोश मे एक शब्द से शब्दान्तर बनाने की विशिष्ट पद्धति बताई है। जैसे, 'पृथ्वी' वाचक शब्द के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत-वाची नाम बनता है, 'मनुष्य' वाचक शब्द के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से नृपवाची नाम बनता है और 'वृक्ष' वाचक शब्द के आगे 'चर' शब्द जोड़ देने से वानरवाची नाम बनता है।

इस कोश में २०१ वां श्लोक इस प्रकार है

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥

इस श्लोक में 'द्विसन्धान' नाम धनञ्जय कवि की प्रशंसा है, इसलिए यह श्लोक मूल ग्रंथकार का नहीं होगा, ऐसा कुछ विद्वान् मानते हैं। पं० महेन्द्र-

---

१. धनञ्जयनाममाला, अनेकार्थनाममाला के साथ हिंदी अनुवादसहित, चतुर्थ आवृत्ति, हरप्रसाद जैन, वि सं. १९९९

हुए, यह निश्चित है। इन्होंने 'हेम-नाममाला' का उल्लेख भी किया है। टीका के प्रारम्भ में अमरकीर्ति ने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। सं० १३५० में 'जिनयज्ञफलोदय' की रचना करनेवाले कल्याणकीर्ति से ये अभिन्न हों तो अमरकीर्ति ने इस 'भाष्य' की रचना निश्चित रूप से वि० सं० १३५० के आसपास में की है।

निघण्टसमय :

कवि धनञ्जयरचित 'निघण्टसमय' नामक रचना का उल्लेख 'जिनरत्नकोश' पृ० २१२ में है। यह कृति दो परिच्छेदात्मक बताई गई है, परन्तु ऐसी कोई कृति देखने में नहीं आई। संभवतः यह धनञ्जय की 'अनेकार्थनाममाला' हो।

अनेकार्थ-नाममाला :

कवि धनञ्जय ने 'अनेकार्थनाममाला' की रचना की है। इसमें ४६ पद्य हैं। विद्यार्थी को एक शब्द के अनेक अर्थों का ज्ञान हो सके, इस दृष्टि से यह छोटा-सा कोश बनाया है। यह कोश 'धनञ्जय नाममाला सभाष्य' के साथ छपा है।

अनेकार्थनाममाला-टीका :

कवि धनञ्जयकृत 'अनेकार्थनाममाला' पर किसी विद्वान् ने टीका रची है। यह टीका भी 'धनञ्जय नाममाला सभाष्य' के साथ छपी है।

अभिधानचिन्तामणिनाममाला :

विद्वानों की मान्यता है कि आचार्य हेमचंद्र ने 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के बाद 'काव्यानुशासन' और उसके बाद 'अभिधानचिन्तामणिनाममाला'[1] कोश की वि० १३वीं शताब्दी में रचना की है। स्वयं आचार्य हेमचन्द्र ने भी इस कोश के आरंभ में स्पष्ट कहा है कि शब्दानुशासन के समस्त अङ्गों की रचना प्रतिष्ठित हो जाने के बाद इस कोश ग्रंथ की रचना की गई है।[2]

---

१ (क) महावीर जैन सभा, खंभात, शक-सं० १८१८ (मूल)
(ख) यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर, वीर-सं० २४४६ (स्वोपज्ञ वृत्तिसहित)
(ग) मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ौदा (रत्नप्रभा वृत्तिसहित)
(घ) देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, सूरत, सन् १९४६ (मूल).
(ङ) नेमि-विज्ञान-ग्रंथमाला, अहमदाबाद (मूल—गुजराती अर्थ के साथ)

२. प्रणिपत्यार्हतं सिद्धसाङ्गशब्दानुशासनं।
रूढ यौगिक-मिश्राणां नाम्नां मालां तनोम्यहम् ॥१॥

'रत्नप्रभा' नाम से टीका की रचना की है। इसमे कहीं-कहीं सस्कृत शब्दों के गुजराती अर्थ भी दिये हैं।

अभिधानचिन्तामणि-बीजक :

'अभिधानचिन्तामणिनाममाला-बीजक' नाम से तीन मुनियो की रचनाएँ[1] उपलब्ध होती है। बीजको मे कोश की विस्तृत विषय-सूची दी गई है।

अभिधानचिन्तामणिनाममाला-प्रतीकावली :

इस नाम की एक हस्तलिखित प्रति भाडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना मे है। इसके कर्ता का नाम इसमे नहीं है।

अनेकार्थसंग्रह :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'अनेकार्थ-सग्रह' नामक कोशग्रन्थ की रचना विक्रमीय १३ वीं शताब्दी मे की है। इस कोश में एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये है।

इस ग्रथ मे सात काड है। १ एकस्वरकाड मे १६, २. द्विस्वरकाड मे ५९१, ३. त्रिस्वरकाड मे ७६६, ४ चतु.स्वरकाड मे ३४३, ५ पञ्चस्वर-काड मे ४८, ६. षट्स्वरकाड मे ५, ७. अव्ययकाड मे ६०—इस प्रकार कुल मिलाकर १८२९ + ६० पद्य है। इसमें आरभ में अकारादि क्रम से और अत मे क आदि के क्रम से योजना की गई है।

इस कोश मे भी 'अभिधानचिंतामणि' के सदृश देश्य शब्द है। यह ग्रन्थ 'अभिधानचितामणि' के बाद ही रचा गया है, ऐसा इसके आद्य पद्य से ज्ञात होता है।[2]

अनेकार्थसंग्रह-टीका :

'अनेकार्थसग्रह' पर 'अनेकार्थ-कैरवाकर-कौमुदी' नामक टीका आचार्य हेमचन्द्रसूरि के ही शिष्य आचार्य महेन्द्रसूरि ने रची है, ऐसा टीका क

१ (क) तपागच्छीय आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य शुभविजयजी ने वि० स० १६६१ में रचा। (ख) श्री देवविमलगणि ने रचा। (ग) किसी अज्ञात नामा मुनि ने रचना की है।

२ यह कोश चौखबा सस्कृतसिरीज, बनारस से प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'अभिधान-सग्रह' मे शक-सवत् १८१८ मे महावीर जैन सभा, खभात से तथा विद्याकर मिश्र द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था।

निघण्टुशेष-टीका :

खरतरगच्छीय श्रीवल्लभगणि ने १७ वीं शती मे 'निघण्टुशेष' पर टीका लिखी है।

देशीशब्दसंग्रह :

आचार्य हेमचद्रसूरि ने 'देशीशब्द सग्रह'[1] नाम से देश्य शब्दो के सग्रहात्मक कोशग्रथ की रचना की है। इसका दूसरा नाम 'देशीनाममाला' भी है। इसे रयणावली (रत्नावली) भी कहते हैं। देश्य शब्दों का ऐसा कोश अभी तक देखने मे नहीं आया। इसमें कुल ७८३ गाथाएँ हैं, जो आठ वर्गों मे विभक्त की गई है। इन वर्गो के नाम ये है . १. स्वरादि, २ कवर्गादि, ३ चवर्गादि, ४ टवर्गादि, ५ तवर्गादि, ६ पवर्गादि, ७ यकारादि और ८ सकारादि। सातवें वर्ग के आदि मे कहा है कि इस प्रकार की नाम व्यवस्था यद्यपि ज्योतिषशास्त्र मे प्रसिद्ध है परतु व्याकरण में नहीं है। इन वर्गों मे भी शब्द उनकी अक्षरसख्या के क्रम से रखे गये हैं और अक्षर सख्या मे भी अकारादि वर्णानुक्रम से शब्द बताये गये है। इस क्रम से एकार्थवाची शब्द देने के बाद अनेकार्थवाची शब्दो का आख्यान किया गया है।

इस कोश-ग्रन्थ की रचना करते समय ग्रन्थकार के सामने अनेक कोश-ग्रन्थ विद्यमान थे, ऐसा मालूम होता है। प्रारभ की दूसरी गाथा मे कोशकार ने कहा है कि पादलिप्ताचार्य आदि द्वारा विरचित देशी-शास्त्रो के होते हुए भी उन्होने किस प्रयोजन से यह ग्रथ लिखा। तीसरी गाथा में बताया गया है ·

जे लक्खणे ण सिद्धा ण पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु।
ण य गउडलक्खणासत्तिसंभवा ते इह णिबद्धा ॥ ३ ॥

अर्थात् जो शब्द न तो उनके सस्कृत-प्राकृत व्याकरणों के नियमों द्वारा सिद्ध होते, न सस्कृत कोशों में मिलते और न अलकारशास्त्रप्रसिद्ध गौडी लक्षणाशक्ति मे अभीष्ट अर्थ प्रदान करते हैं उन्हें ही देशी मान कर इस कोश म निबद्ध किया गया है।

---

१ पिशल और बुहर द्वारा सम्पादित—बम्बई सस्कृत सिरीज, सन् १८८०, बनर्जी द्वारा सम्पादित—कलकत्ता, सन् १९३१, Studies in Hemacandra's Desīnāmamālā by Bhayani—P. V Research Institute, Varanasi, 1966

३. कल्पसूत्र पर 'कल्पमञ्जरी' नामक टीका (अपने सतीर्थ्य श्रीसार मुनि के साथ, सं० १६८५),

४ अनेकशास्त्रसारसमुच्चय,

५ एकादिदशपर्यन्तशब्द-साधनिका,

६ सारस्वतवृत्ति,

७. शब्दार्णवव्याकरण (ग्रन्थाग्र, १७०००),

८. फलवर्द्धिपार्श्वनाथमाहात्म्यमहाकाव्य (२८ सर्गात्मक),

९ प्रीतिषट्त्रिंशिका (सं० १६८८)।

शब्दचन्द्रिका :

इस कोशग्रन्थ के कर्ता का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसकी १७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह में है। यह कृति शायद अपूर्ण है। इसका प्रारंभ इस प्रकार है

ध्यायं ध्यायं महावीरं स्मारं स्मारं गुरोर्वचः।
शास्त्रं दृष्ट्वा वयं कुर्मः बालबोधाय पद्धतिम्॥
पत्रलिखनस्याद्वादमतं ज्ञात्वा वरं किल।
मनोरमा वयं कुर्मः बालबोधाय पद्धतिम्॥

इन श्लोकों के आधार पर इसका नाम 'बालबोधपद्धति' या 'मनोरमा-कोश' भी हो सकता है। हस्तलिखित प्रति के हाशिये में 'शब्द-चन्द्रिका' उल्लिखित है। इसी से यहाँ इस कोश का नाम 'शब्द-चन्द्रिका' दिया गया है। इसमें शब्द का उल्लेखकर पर्यायवाची नाम एक साथ गद्य में दे दिये गये हैं। विद्यार्थियों के लिए यह कोश उपयोगी है। यह ग्रन्थ छपा नहीं है।

सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव :

नागोरी तपागच्छीय श्री पद्ममेरु के शिष्य पद्मसुन्दर ने पाँच प्रकरणों में 'सुन्दरप्रकाश शब्दार्णव' नामक कोश-ग्रंथ की रचना वि० सं० १६१९ में की है। इसकी हस्तलिखित प्रति उस समय की यानी वि. सं. १६१९ की लिखी हुई प्राप्त होती है। इस कोश में २६६८ पद्य हैं। इसकी ८८ पत्रों की हस्तलिखित प्रति सुजानगढ़ में श्री पनेचंदजी सिंघी के संग्रह में है।

पं० पद्मसुन्दर उपाध्याय १७वीं शती के विद्वान् थे। सम्राट् अकबर के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। अकबर के समक्ष एक ब्राह्मण पंडित को शास्त्रार्थ में पराजित करने के उपलक्ष्य में अकबर ने उन्हें सम्मानित किया था तथा

उनके लिये आगरा में एक धर्मस्थानक बनवा दिया था। उपाध्याय पद्मसुन्दर ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य और तर्क आदि शास्त्रों के धुरधर विद्वान् थे। उनके पास आगरा में विशाल शास्त्रसग्रह था। उनका स्वर्गवास होने के बाद सम्राट् अकबर ने वह शास्त्र सग्रह आचार्य हीरविजयसूरि को समर्पित किया था।

शब्दभेदनाममाला :

महेश्वर नामक विद्वान् ने 'शब्दभेदनाममाला' की रचना की है। इसमे सभवतः थोड़े अन्तर वाले शब्द जैसे—अम्भा, आम्भा, अगार, आगार, अराति, आराति आदि एकार्थक शब्दों का सग्रह होगा।

शब्दभेदनाममाला वृत्ति :

'शब्दभेदनाममाला' पर खरतरगच्छीय भानुमेरु के शिष्य ज्ञानविमल-सूरि ने वि स १६५४ मे ३८०० श्लोक-प्रमाण वृत्तिग्रन्थ की रचना की है।

नामसंग्रह :

उपाध्याय भानुचन्द्रगणि ने 'नामसग्रह' नामक कोश की रचना की है। इसे 'नाममाला-सग्रह' अथवा 'विविक्तनाम-सग्रह' भी कहते हैं। इस 'नाममाला' को कई विद्वान् 'भानुचन्द्र नाममाला' के नाम से भी पहिचानते हैं।[१] इस कोश म 'अभिधान-चिन्तामणि' के अनुसार ही छ काड हैं और काडों के शीर्षक भी उसी प्रकार हैं। उपाध्याय भानुचन्द्र मुनि सूरचन्द्र के शिष्य थे। उनको वि स १६४८ में लाहौर मे उपाध्याय की पदवी दी गई। वे सम्राट् अकबर के सामने स्वरचित 'सूर्यसहस्रनाम' प्रत्येक रविवार को सुनाया करते थे। उनके रचे हुए अन्य ग्रथ इस प्रकार हैं

१ रत्नपालकथानक (वि स १६६२), २ सूर्यसहस्रनाम, ३ कादम्बरी-वृत्ति, ४ वसन्तराजशाकुन वृत्ति, ५ विवेकविलास वृत्ति, ६ सारस्वत-व्याकरण वृत्ति।

शारदीयनाममाला :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चद्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'शारदीयनाममाला' या 'शारदीयाभिधानमाला' नामक कोश ग्रन्थ की रचना १७ वीं शताब्दी म की है। इसमे करीब ३०० श्लोक हैं।

---

१ देखिए—जैन ग्रन्थावली, पृ ३११

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि व्याकरण और वैद्यक में निपुण थे। इनके निम्नोक्त ग्रन्थ हैं :

१. योगचिन्तामणि, २. वैद्यकसारोद्धार, ३. धातुपाठ, ४. सेट्-अनिट्-कारिका, ५. कल्याणमंदिरस्तोत्र-टीका, ६. बृहच्छान्तिस्तोत्र-टीका, ७. सिन्दूर-प्रकर, ८. श्रुतबोध-टीका आदि।

शब्दरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुन्दरगणि ने वि० सं० १६८० में 'शब्दरत्नाकर' नामक कोशग्रंथ की रचना की है। साधुसुंदर साधुकीर्ति के शिष्य थे।

शब्दरत्नाकर पद्यात्मक कृति है। इसमें छः कांड—१. अर्हत्, २ देव, ३ मानव, ४ तिर्यक्, ५ नारक और ६. सामान्य कांड—हैं।[1]

इस ग्रंथ के कर्ता ने 'उक्तिरत्नाकर' और क्रियाकलापवृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर' की रचना भी की है। इनका जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ तीर्थंकर की स्तुतिरूप स्तोत्र भी प्राप्त होता है।

अव्ययैकाक्षरनाममाला :

मुनि सुधाकलशगणि ने 'अव्ययैकाक्षरनाममाला' नामक ग्रंथ १४ वीं शताब्दी में रचा है। इसकी ४ पत्र की १७ वीं शती में लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में विद्यमान है।

शेषनाममाला

खरतरगच्छीय मुनि श्री साधुकीर्ति ने 'शेषनाममाला' या 'शेषसंग्रहनाममाला' नामक कोशग्रंथ की रचना की है। इन्हीं के शिष्यरत्न साधुसुन्दरगणि ने वि०सं० १६८० में 'क्रियाकलाप' नामक वृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर', 'शब्दरत्नाकर' और 'उक्तिरत्नाकर' नामक ग्रंथों की रचना की है।

मुनि साधुकीर्ति ने यवनपति बादशाह अकबर की सभा में अन्यान्य धर्मपथों के पंडितों के साथ वाद-विवाद में खूब ख्याति प्राप्त की थी। इसलिये बादशाह

---

[1] यह ग्रंथ यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर से वी० सं० २४३९ में प्रकाशित हुआ है।

ने इनको 'वादिसिंह' की पदवी से विभूषित किया था। ये हजारों शास्त्रों का सार जाननेवाले असाधारण विद्वान् थे।[1]

शब्दसंदोहसंग्रह :

जैन ग्रंथावली, पृ० ३१३ में 'शब्दसंदोहसंग्रह' नामक कृति की ४७९ पत्रों की ताडपत्रीय प्रति होने का उल्लेख है।

शब्दरत्नप्रदीप :

'शब्दरत्नप्रदीप' नामक कोशग्रंथ के कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हुआ है, परन्तु सुमतिगणि की वि० सं० १२९५ में रची हुई 'गणधरसार्धशतक बृत्ति' में इस ग्रंथ का नामोल्लेख बार-बार आता है। कल्याणमल्ल नामक किसी विद्वान् ने भी 'शब्दरत्नप्रदीप' नामक ग्रंथ की रचना की है। यदि उक्त ग्रंथ यही हो तो यह ग्रंथ जैनेतरकृत होने से यहाँ नहीं गिनाया जा सकता।

विश्वलोचनकोश :

दिगम्बर मुनि धरसेन ने 'विश्वलोचनकोश' अपर नाम 'मुक्तावलीकोश' की संस्कृत में रचना की है। इस अनेकार्थककोश में कुल २४५३ पद्य हैं। इसके रचनाक्रम में स्वर और ककार आदि वर्णों के क्रम से शब्द के आदि का निर्णय किया गया है और द्वितीय वर्ण में भी ककारादि का क्रम रखा गया है। इसमें शब्दों को कान्त से लेकर हान्त तक के ३३ वर्ग, क्षान्त वर्ग और अव्यय वर्ग—इस प्रकार कुल मिलाकर ३५ वर्गों में विभक्त किया गया है।

मुनि धरसेन सेन-वंश में होनेवाले कवि, आन्वीक्षिकी विद्या में निष्णात और वादी मुनिसेन के शिष्य थे। वे समस्त शास्त्रों के पारगामी, राजाओं के विश्वासपात्र और काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। यह अनेकार्थककोश विविध कवीश्वरों के कोशों को देखकर रचा गया है, ऐसा इसकी प्रशस्ति में कहा गया है।[2]

इन धरसेन के समय के बारे में कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह कोश चौदहवीं शताब्दी में रचा गया, ऐसा अनुमान होता है।

---

१ खरतरगणपाथोराशिवृद्धौ मृगाङ्का यवनपतिसभाया स्थापिताहन्मताज्ञा।
महत्तक्रमतिदर्पा पाठकाः साधुकीर्तिप्रवरसदभिधाना वादिसिंहा जयन्तु॥
तेषां शास्त्रसहस्रसारविदुषां ॥—उक्तिरत्नाकर-प्रशस्ति

२ यह ग्रंथ 'गांधी नाथारंग जैन ग्रंथमाला' में सन् १९१२ में छप चुका है।

नानार्थकोश :

'नानार्थकोश' के रचयिता असग नामक कवि थे, ऐसा मात्र उल्लेख प्राप्त होता है। वे शायद दिगंबर जैन गृहस्थ थे। वे कब हुए और ग्रंथ की रचना-शैली कैसी है, यह ग्रंथ प्राप्त नहीं होने से कहा नहीं जा सकता।

पञ्चवर्गसंग्रहनाममाला :

आचार्य मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि ने वि० सं० १५२५ में 'पंचवर्गसंग्रह नाममाला' की रचना की है।

ग्रंथकर्ता के अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१ भरतेश्वरबाहुबली-सवृत्ति, २ पञ्चशतीप्रबन्ध, ३ शत्रुञ्जयकल्पकथा (वि० सं० १५१८), ४ शालिवाहन-चरित्र (वि० सं० १५४०), ५ विक्रम-चरित्र आदि कई कथाग्रंथ।

अपवर्गनाममाला :

इस ग्रंथ का 'जिनरत्नकोश' पृ० २७७ में 'पञ्चवर्गपरिहारनाममाला' नाम दिया गया है परंतु इसका आदि और अन्त भाग देखते हुए 'अपवर्ग-नाममाला'[1] ही वास्तविक नाम मालूम पड़ता है।

इस कोश में पाँच वर्ग याने क से म तक के वर्णों को छोड़ कर य, र, ल, व, श, ष, स, ह—इन आठ वर्णों में से कम-ज्यादा वर्णों से बने हुए शब्दों को बताया गया है।

इस कोश के रचयिता जिनभद्रसूरि हैं। इन्होंने अपने को जिनवल्लभसूरि और जिनदत्तसूरि के सेवक के रूप में बताया है और अपना जिनप्रिय (वल्लभ) सूरि के विनेय—शिष्य के रूप में परिचय दिया है।[2] इसलिए ये १२ वीं शती में हुए, ऐसा अनुमान होता है, लेकिन यह समय विचारणीय है।

अपवर्गनाममाला :

जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०९ में अज्ञातकर्तृक 'अपवर्गनाममाला' नामक ग्रंथ का उल्लेख है जो २१५ श्लोक-प्रमाण है।

---

१ अपवर्गपदाध्यासितमपवर्गविनयमार्हतं नत्वा ।
अपवर्गनाममाला विरच्यते मुग्धबोधाय ॥

२ श्रीजिनवल्लभजिनदत्तसूरिसेवी जिनप्रियविनेयः ।
अपवर्गनाममालामकरोज्जिनभद्रसूरिरिमाम् ॥

एकाक्षरी-नानार्थकाण्ड :

दिगम्बर धरसेनाचार्य ने 'एकाक्षरी नानार्थकाण्ड' नामक कोश की भी रचना की है।[1] इसमें ३५ पद्य है। क से लेकर क्ष पर्यंत वर्णों का अर्थ-निर्देश प्रथम २८ पद्यो मे है और स्वरों का अर्थ-निर्देश बाद के ७ पद्यों मे है।

एकाक्षरनाममालिका :

अमरचन्द्रसूरि ने 'एकाक्षरनाममालिका' नामक कोश-ग्रथ की रचना १३ वीं शताब्दी में की है। इस कोश के प्रथम पद्य म कर्ता ने अमर कवीन्द्र नाम दर्शाया है और सूचित किया है कि विश्वाभिधानकोशों का अवलोकन करके इस 'एकाक्षरनाममालिका' की रचना की है। इसमे २१ पद्य हैं।

अमरचन्द्रसूरि ने गुजरात के राजा विसलदेव की राजसभा को विभूषित किया था। इन्होंने अपनी शीघ्रकवित्वशक्ति से सस्कृत मे काव्य-समस्यापूर्ति करके समकालीन कविसमाज मे प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया था।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है ·

१ बालभारत, २ काव्यकल्पलता (कविशिक्षा), ३ पद्मानन्द-महाकाव्य, ४ स्यादिशब्दसमुच्चय।

एकाक्षरकोश :

महाक्षपणक ने 'एकाक्षरकोश' नाम से ग्रथ की रचना की है। कवि ने प्रारम्भ मे ही आगमों, अभिधानो, धातुओं और शब्दशासन से यह एकाक्षर-नामाभिधान किया है। ४१ पद्यो में क से क्ष तक के व्यञ्जनों के अर्थप्रतिपादन के बाद स्वरो के अर्थों का दिग्दर्शन किया है।

एक प्रति में कर्ता के सम्बन्ध मे इस प्रकार पाठ मिलता है : एकाक्षरार्थ-संलाप स्मृत क्षपणकादिभि। इस प्रकार नाम के अलावा इस ग्रन्थकार के बारे मे कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। यह कोश-ग्रथ प्रकाशित है।[2]

---

१ प० नन्दलाल शर्मा की भाषा-टीका के साथ सन् १९१२ में आकलूज-निवासी नाथारगजी गाधी द्वारा यह अनेकार्थकोश प्रकाशित किया गया है।

२ एकाक्षरनाम-कोषसग्रह सपादक—प० मुनि श्री रमणीकविजयजी, प्रकाशक—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, वि० स० २०२१.

एकाक्षरनाममाला :

'एकाक्षरनाममाला'[1] मे ५० पद्य हैं। विक्रम की १५ वीं शताब्दी मे इसकी रचना सुधाकलश मुनि ने की है। कर्त्ता ने श्री वर्धमान तीर्थंकर को प्रणाम करके अन्तिम पद्य मे अपना परिचय देते हुए अपने को मलधारिगच्छभर्त्ता गुरु राजशेखरसूरि का शिष्य बताया है।

राजशेखरसूरि ने वि० स० १४०५ म 'प्रबन्धकोश' (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) नामक ग्रथ की रचना की है।

उपाध्याय समयसुन्दरगणि ने स० १६४९ मे रचित 'अष्टलक्षार्थी—अर्थरत्नावली' मे इस कोश का नामनिर्देश किया है और अवतरण दिया है।

सुधाकलशगणिरचित 'सगीतोपनिषत्' (स० १३८०) और उसका सार—सारोद्धार (स० १४०६) प्राप्त होता है जो सन् १९६१ मे डा० उमाकान्त प्रेमानद शाह द्वारा सपादित होकर गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, १३३, मे 'सगीतोपनिषत्सारोद्धार' नाम से प्रकाशित हुआ है।

आधुनिक प्राकृत-कोश :

आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने साढे चार लाख श्लोक-प्रमाण 'अभिधानराजेन्द्र' नामक प्राकृत कोश ग्रथ की रचना का प्रारम्भ वि० स० १९४६ मे सियाणा में किया था और स० १९६० मे सूरत मे उसकी पूर्णाहुति की थी। यह कोश सात विशालकाय भागों मे है। इसमे ६०००० प्राकृत शब्दों का मूल के साथ संस्कृत में अर्थ दिया है और उन शब्दों के मूल स्थान तथा अवतरण भी दिये है। कहीं कहीं तो अवतरणों मे पूरे ग्रथ तक द दिये गये है। कई अवतरण सस्कृत में भी है। आधुनिक पद्धति से इसकी सकलना हुई है।[2]

इसी प्रकार इन्हीं विजयराजेन्द्रसूरि का 'शब्दाम्बुधिकोश' प्राकृत मे है, जो अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

1 यह 'एकाक्षरनाममाला हेमचन्द्राचार्य की 'अभिधानचिन्तामणि' की अनेक आवृत्तियो के साथ परिशिष्टो मे (देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, विजयकस्तूरसूरिसपादित 'अभिधानचिन्तामणि-कोश, पृ० २३६-२४०, और 'अनेकार्थरत्नमञ्जूषा' परिशिष्ट क (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, ग्रन्थ ८१) मे भी प्रकाशित है।

2 यह कोश रतलाम से प्रकाशित हुआ है।

प० हरगोविन्ददास त्रिकमचद शेठ ने 'पाइयसद्दमहण्णव' (प्राकृतशब्द-महार्णव) नामक प्राकृत-हिन्दी-शब्द-कोश रचा है जो प्रकाशित है।

शतावधानी श्री रत्नचद्रजी मुनि ने 'अर्धमागधी-डिक्शनरी' नाम से आगमों के प्राकृत शब्दों का चार भाषाओं में अर्थ देकर प्राकृत-कोशग्रथ बनाया है जो प्रकाशित है।

आगमोद्धारक आचार्य आनन्दसागरसूरि के 'अल्पपरिचितसैद्धान्तिक-शब्दकोश' के दो भाग प्रकाशित हुए है।

तौरुष्कीनाममाला :

सोममत्री के पुत्र (जिनका नाम नहीं बताया गया है) ने 'तौरुष्की-नाममाला' अपर नाम 'यवननाममाला' नामक सस्कृत फारसी-कोशग्रथ की रचना की है, जिसकी वि० स० १७०६ में लिखित ६ पत्रों की एक प्रति अहम-दाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर के सग्रह में है। इसके अत में इस प्रकार प्रशस्ति है

राजर्षेर्देशरक्षाकृत् गुमास्त्यु स च कथ्यते।
ह्रीमतिः सत्त्वमित्युक्ता यवनीनाममालिका ॥

इति श्रीजैनधर्मीय श्रीसोममन्त्रीश्वरात्मजविरचिते यवनीभाषायां तौरुष्कीनाममाला समाप्ता। सं० १७०६ वर्षे शाके १५७२ वर्तमाने ज्येष्ठशुक्लाष्टमीघस्रे श्रीसमालखानडेरके लिपिकृता महिमासमुद्रेण।

मुस्लिम राजकाल में सस्कृत-फारसी के व्याकरण और कोशग्रथों की जैन-जैनेतरकृत बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं। बिहारी कृष्णदास, वेदागराय और दो अज्ञात विद्वानों की व्याकरण-ग्रन्थों की रचनाएँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर मे हैं। प्रतापभट्टकृत 'यवननाममाला' और अज्ञातकर्तृक एक फारसी कोश की हस्तलिखित प्रतियाँ भी उपर्युक्त विद्यामदिर के सग्रह में हैं।

फारसी-कोश :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने इस 'फारसी-कोश' की रचना की है। इसकी २० वी सदी मे लिखी गई ६ पत्रो की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लाल-भाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है।

तीसरा प्रकरण

अलङ्कार

वामन ने अपने 'काव्यालकारसूत्र' मे 'अलकार' शब्द के दो अर्थ बताये है : १ सौन्दर्य के रूप में (सौन्दर्यमलकारः) और २ अलकरण के रूप में (अलंक्रियतेऽनेन, करणव्युत्पत्त्या पुनरलंकारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते)। इनके मत मे काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ को काव्यालकार इसलिये कहते हैं कि उसमें काव्यगत सौन्दर्य का निर्देश और आख्यान किया जाता है। इससे हम 'काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्' काव्य को ग्राह्य और श्रेष्ठ मानते है।

'अलकार' शब्द के दूसरे अर्थ का इतिहास देखा जाय तो रुद्रदामन् के शिलालेख के अनुसार द्वितीय शताब्दी ईस्वी सन् में साहित्यिक गद्य और पद्य को अलकृत करना आवश्यक माना जाता था।

'नाट्यशास्त्र' (अ० १७, १-५) में ३६ लक्षण गिनाये गये हैं। नाट्य मे प्रयुक्त काव्य में इनका व्यवहार होता था। धीरे-धीरे ये लक्षण लुप्त होते गये और इनमें से कुछ लक्षणों को दण्डी आदि प्राचीन आलकारिकों ने अलकार के रूप में स्वीकार किया। भूषण[1] अथवा विभूषण नामक प्रथम लक्षण मे अलकारो और गुणों का समावेश हुआ।

'नाट्यशास्त्र' में उपमा, रूपक, दीपक, यमक—ये चार अलकार नाटक के अलकार माने गये हैं।

जैनों के प्राचीन साहित्य में 'अलकार' शब्द का प्रयोग और उसका विवेचन कहाँ हुआ है और अलकार-सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ कौन-सा है, इसकी खोज करनी होगी।

जैन सिद्धात-ग्रथों में व्याकरण की सूचना के अलावा काव्यरस, उपमा आदि विविध अलकारों का उपयोग हुआ है। ५ वीं शताब्दी में रचित नन्दिसूत्र में

---

१. भूषण की व्याख्या—अलकारैर्गुणैश्चैव बहुभि. समलङ्कृतम्।
भूषणैरिव चित्रार्थैस्तद् भूषणमिति स्मृतम्॥

काव्यरस का उल्लेख है। 'स्वरपाहुड' में ११ अलकारों का उल्लेख है और 'अनुयोगद्वारसूत्र' में नौ रसों के ऊहापोह के अलावा सूत्र का लक्षण बताते हुए कहा गया है :

निद्दोसं सारमंतं च हेउजुत्तमलंकियं।
उवणीअं सोवयारं च मियं महुरमेव च ॥

अर्थात् सूत्र निर्दोष, सारयुक्त, हेतुवाला, अलकृत, उपनीत—प्रस्तावना और उपसहारवाला, सोपचार—अविरुद्धार्थक और अनुप्रासयुक्त और मित—अल्पाक्षरी तथा मधुर होना चाहिये।

विक्रम सवत् के प्रारभ के पूर्व ही जैनाचार्यों ने काव्यमय कथाएँ लिखने का प्रयत्न किया है। आचार्य पादलिप्त की तरगवती, मलयवती, मगधसेना, सघदासगणिविरचित वसुदेवहिंडी तथा धूर्त्ताख्यान आदि कथाओं का उल्लेख विक्रम की पाचवीं-छठी सदी मे रचित भाष्यों में आता है। ये ग्रन्थ अलकार और रस से युक्त हैं।

विक्रम की ७ वीं शताब्दी के विद्वान् जिनदासगणि महत्तर और ८ वीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य हरिभद्रसूरि के ग्रन्थों में 'कव्वालकारेहिं जुत्तम लकियं' काव्य को अलकारों से युक्त और अलकृत कहा है।

हरिभद्रसूरि ने 'आवश्यकसूत्र-वृत्ति' (पत्र ३७५) मे कहा है कि सूत्र बत्तीस दोषों से मुक्त और 'छवि' अलकार से युक्त होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सूत्र आदि की भाषा भले ही सीधी-सादी स्वाभाविक हो परन्तु वह शब्दालकार और अर्थालकार से विभूषित होनी चाहिये। इससे काव्य का कलेवर भाव और सौंदर्य से देदीप्यमान हो उठता है। चाहे जैसी रुचिवाले को ऐसी रचना हृदयगम होती है।

प्राचीन कवियों में पुष्पदत ने अपनी रचना में रुद्रट आदि काव्यालकारिको का स्मरण किया है। जिनवल्लभसूरि, जिनका वि० स० ११६७ में स्वर्गवास हुआ, रुद्रट, दडी, भामह आदि आलकारिकों के शास्त्रों मे निपुण थे, ऐसा कहा गया है।

जैन साहित्य में विक्रम की नवीं शताब्दी के पूर्व किसी अल्कारशास्त्र की स्वतत्र रचना हुई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। नवीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य बप्पभट्टिसूरिरचित 'कवि शिक्षा' नामक रचना उपलब्ध नहीं है। प्राकृत भाषा में रचित 'अल्कारदर्पण' यद्यपि वि० स० ११६५ के पूर्व की रचना है परतु यह

किस सवत् या शताब्दी में रचा गया, यह निश्चित नहीं है। यदि इसे दसवीं शताब्दी का ग्रन्थ माना जाय तो यह अलकारविषयक सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है। विक्रम की १० वीं शताब्दी मे मुनि अजितसेन ने 'शृङ्गारमञ्जरी' ग्रथ की रचना की है परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आया। उसके बाद थारापद्रीयगच्छ के नमिसाधु ने रुद्रट कवि के 'काव्यालकार' पर वि० स० ११२५ में टीका लिखी है। उसके बाद की तो आचार्य हेमचन्द्रसूरि, महामात्य अम्बाप्रसाद और अन्य विद्वानों की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं।

आचार्य रत्नप्रभसूरिरचित 'नेमिनाथचरित' में अलकारशास्त्र की विस्तृत चर्चा आती है। इस प्रकार अन्य विषयों के ग्रन्थों में प्रसगवशात् अलंकार और रसविषयक उल्लेख मिलते हैं।

जैन विद्वानो की इस प्रकार की कृतियो पर जैनेतर विद्वानों ने टीका-ग्रथों की रचना की हो, ऐसा 'वाग्भटालकार' के सिवाय कोई ग्रन्थ सुलभ नहीं है। जैनेतर विद्वानों की कृतियों पर जैनाचार्यों के अनेक व्याख्याग्रथ प्राप्त होते हैं। ये ग्रथ जैन विद्वानो के गहन पाण्डित्य तथा विद्याविषयक व्यापक दृष्टि के परिचायक हैं।

अलङ्कारदर्पण (अलंकारदप्पण) :

'अलकारदप्पण' नाम की प्राकृत भाषा में रची हुई एकमात्र कृति, जोकि वि० स० ११६१ मे तालपत्र पर लिखी गई है, जैसलमेर के भण्डार में मिलती है। उसका आन्तर निरीक्षण करने से पता लगता है कि यह ग्रन्थ सक्षिप्त होने पर भी अलकार ग्रन्थों में अति प्राचीन उपयोगी ग्रन्थ है। इसमे अलकार का लक्षण बताकर करीब ४० उपमा, रूपक आदि अर्थालकारों और शब्दालकारों के प्राकृत भाषा में लक्षण दिये हैं। इसमें कुल १३४ गाथाएँ हैं। इसके कर्ता के विषय में इस ग्रन्थ में या अन्य ग्रन्थों मे कोई सूचना नहीं मिलती। कर्ता ने मंगलाचरण में श्रुतदेवी का स्मरण इस प्रकार किया है·

सुंदरपअविण्णासं विमलालकाररेहिअसरीरं।
सुह (?य) देविअ च कव्वं पणवियं पवरवण्णड्ढं॥

इस पद्य से मालूम पड़ता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता कोई जैन होगे जो वि० स० ११६१ के पूर्व हुए होंगे।

मुनिराज श्री पुण्यविजयजी द्वारा जैसलमेर की प्रति के आधार पर की हुई प्रतिलिपि देखने में आई है।

कविशिक्षा :

आचार्य बप्पभट्टिसूरि (वि० सं० ८०० से ८९५) ने 'कविशिक्षा' या ऐसे ही नाम का कोई साहित्यग्रन्थ रचा हो, ऐसा विनयचन्द्रसूरिरचित 'काव्यशिक्षा' के उल्लेखों से ज्ञात होता है। आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने 'काव्यशिक्षा' के प्रथम पद्य में 'बप्पभट्टिगुरोर्गिरम्' (पृष्ठ १) और 'लक्षणैर्जायते काव्य बप्पभट्टि प्रसादतः' (पृष्ठ १०९) इस प्रकार उल्लेख किये हैं। बप्पभट्टसूरि का 'कविशिक्षा' या इसी प्रकार के नाम का अन्य कोई ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि ने अन्य ग्रन्थों की भी रचना की थी। इनके 'तारागण' नामक काव्य का नाम लिया जाता है परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

शृङ्गारमंजरी :

मुनि अजितसेन ने 'शृङ्गारमञ्जरी' नाम की कृति की रचना की है। इसमें ३ अध्याय हैं और कुल मिलाकर १२८ पद्य हैं। यह अलकारशास्त्र सम्बन्धी सामान्य ग्रन्थ है। इसमें दोष, गुण और अर्थालकारों का वर्णन है।

कर्ता के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। सिर्फ रचना से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ विक्रम की १० वीं शताब्दी में लिखा गया होगा।

इसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के एक भण्डार में है, ऐसा 'जिनरत्नकोश' पृ० ३८६ में उल्लेख है। कृष्णमाचारियर ने भी इसका उल्लेख किया है।[1]

काव्यानुशासन :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' वगैरह अनेक ग्रन्थों के निर्माण से सुविख्यात, गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह से सम्मानित और परमार्हत कुमारपाल नरेश के धर्माचार्य कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'काव्यानुशासन' नामक अलकार-ग्रन्थ की वि० सं० ११९६ के आसपास में रचना की है।[2]

---

१. देखिए—हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ७५२.

२ यह ग्रन्थ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई की 'काव्यमाला' ग्रन्थावली में स्वोपज्ञ दोनों वृत्तियों के साथ प्रकाशित हुआ था। फिर महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ। इसकी दूसरी आवृत्ति वहीं से सन् १९६५ में प्रकाशित हुई है।

संस्कृत के सूत्रबद्ध इस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में काव्य का प्रयोजन और लक्षण है। दूसरे में रस का निरूपण है। तीसरे में शब्द, वाक्य, अर्थ और रस के दोष बताये गए हैं। चतुर्थ में गुणों की चर्चा की गई है। पाँचवें अध्याय में छ प्रकार के शब्दालकारों का वर्णन है। छठे में २९ अर्थालकारों के स्वरूप का विवेचन है। सातवें अध्याय में नायक, नायिका और प्रतिनायक के विषय मे चर्चा की गई है। आठवें में नाटक के प्रेक्ष्य और श्रव्य—ये दो भेद और उनके उपभेद बताये गए हैं। इस प्रकार २०८ सूत्रों मे साहित्य और नाट्य-शास्त्र का एक ही ग्रन्थ मे समावेश किया गया है।

कई विद्वान् आचार्य हेमचद्र के 'काव्यानुशासन' पर मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' की अनुकृति होने का आक्षेप लगाते हैं। बात यह है कि आचार्य हेमचद्र ने अपने पूर्वज विद्वानों की कृतियों का परिशीलन कर उनमें से उपयोगी दोहन कर विद्यार्थियों के शिक्षण को लक्ष्य में रखकर 'काव्यानुशासन' को सरल और सुबोध बनाने की भरसक कोशिश की है। मम्मट के 'काव्यप्रकाश' मे जिन विषयों की चर्चा १० उल्लास और २१२ सूत्रों में की गई है उन सब विषयों का समावेश ८ अध्यायों और २०८ सूत्रों में मम्मट से भी सरल शैली मे किया है। नाट्यशास्त्र का समावेश भी इसी में कर दिया है, जबकि 'काव्य-प्रकाश' मे यह विभाग नहीं है।

भोजराज के 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में विपुल सख्या में अलकार दिये गये हैं। आचार्य हेमचद्र ने इस ग्रन्थ का उपयोग किया है, ऐसा उनकी 'विवेकवृत्ति' से मालूम पडता है, लेकिन उन अलकारो की व्याख्याएँ सुधार सँवार कर अपनी दृष्टि से श्रेष्ठतर बनाने का कार्य भी आचार्य हेमचद्र ने किया है।

जहाँ मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में ६१ अलकार बताये हैं वहाँ हेमचद्र ने छठे अध्याय मे सकर के साथ २९ अर्थालकार बताये हैं। इससे यही व्यक्त होता है कि हेमचद्र ने अलकारों की सख्या को कम करके अत्युपयोगी अलकार ही बताये हैं। जैसे, इन्होंने ससृष्टि का अन्तर्भाव सकर में किया है। दीपक का लक्षण ऐसा दिया है जिससे इसमे तुल्ययोगिता का समावेश हो। परिवृत्ति नामक अलकार का जो लक्षण दिया है उसमें मम्मट के पर्याय और परिवृत्ति दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है। रस, भाव इत्यादि से सबद्ध रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्विन्, समाहित आदि अलकारों का वर्णन नहीं किया गया। अनन्वय और उपमेयोपमा को उपमा के प्रकार मानकर अत में उल्लेख कर दिया गया। प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त तथा दूसरे लेखकों द्वारा निरूपित निदर्शना का अन्तर्भाव

इन्होंने निदर्शन म ही कर दिया है। स्वभावोक्ति और अप्रस्तुतप्रशसा को इन्होंने क्रमश जाति और अन्योक्ति नाम दिया है।

हेमचद्र की साहित्यिक विशेषताएँ निम्नलिखित है :

१ साहित्य रचना का एक लाभ अर्थ की प्राप्ति, जो मम्मट ने कहा है, हेमचद्र को मान्य नहीं है।

२ मुकुल भट्ट और मम्मट की तरह लक्षणा का आधार रूढि या प्रयोजन न मानते हुए सिर्फ प्रयोजन का ही हेमचद्र ने प्रतिपादन किया है।

३ अर्थशक्तिमूलक ध्वनि के १ स्वतःसभवी, २ कविप्रौढोक्तिनिष्पन्न और ३ कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिनिष्पन्न—ये तीन भेद दर्शानेवाले ध्वनिकार से हेमचद्र ने अपना अलग मत प्रदर्शित किया है।

४ मम्मट ने 'पुरुत्वादपि प्रविचलेत्' पद्य श्लेषमूलक अप्रस्तुतप्रशसा के उदाहरण में लिया है, तो हेमचद्र ने इसे शब्दशक्तिमूलक ध्वनि का उदाहरण बताया है।

५ रसों मे अलकारों का समावेश करके बड़े-बडे कवियों ने नियम का उल्लघन किया है। इस दोष का ध्वनिकार ने निर्देश नहीं किया, जबकि हेमचद्र ने किया है।

'काव्यानुशासन' में कुल मिलाकर १६३२ उद्धरण दिये गये हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने साहित्य-शास्त्र के अनेकों ग्रन्थों का गहरा परिशीलन किया था।

हेमचद्र ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के आधार पर अपने 'काव्यानुशासन' की रचना की है अत. इसमें कोई विशेषता नहीं है, यह सोचना भी हेमचद्र के प्रति अन्याय ही होगा, क्योंकि हेमचद्र का दृष्टिकोण व्यापक एव शैक्षणिक था।

काव्यानुशासन-वृत्ति (अलङ्कारचूडामणि) :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य हेमचद्र ने शिष्यहितार्थ 'अलकारचूडामणि' नामक स्वोपज्ञ लघुवृत्ति की रचना की है। हेमचद्र ने इस वृत्ति रचना का हेतु बताते हुए कहा है : आचार्यहेमचन्द्रेण विद्वत्प्रीत्यै प्रतन्यते।

यह वृत्ति विद्वानों की प्रीति सपादन करने के हेतु बनाई है। यह सरल है। इसमें कर्ता ने विवादग्रस्त बातों की सूक्ष्म विवेचना नहीं की है। यह भी कहना ठीक होगा कि इस वृत्ति से अलकारविषयक विशिष्ट ज्ञान सपन्न नहीं हो सकता। वृत्तिकार ने इसमें ७४० उदाहरण और ६७ प्रमाण दिये हैं।

काव्यानुशासन-वृत्ति (विवेक) :

विशिष्ट प्रकार के विद्वानों के लिए हेमचंद्र ने स्वय इसी 'काव्यानुशासन' पर 'विवेक' नामक वृत्ति की रचना की है। इस वृत्तिरचना का हेतु बताते हुए हेमचद्र ने इस प्रकार कहा है :

विवरीतुं क्वचिद् दृब्धं नवं सदर्भितुं क्वचित्।
काव्यानुशासनस्यायं विवेकः प्रवितन्यते ॥

इस 'विवेक' वृत्ति में आचार्य ने ६२४ उदाहरण और २०१ प्रमाण दिये हैं। इसमे सभी विवादास्पद विषयों की चर्चा की गई है।

अलङ्कारचूडामणि-वृत्ति (काव्यानुशासन-वृत्ति) :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने आचार्य हेमचद्रसूरि के 'काव्यानुशासन' पर 'अलङ्कारचूडामणि-वृत्ति' की रचना की है, ऐसा उनके 'प्रतिमाशतक' की स्वोपज्ञ वृत्ति में उल्लिखित 'प्रपञ्चित चैतदलङ्कारचूडामणिवृत्तावस्माभि' से मालूम पड़ता है। यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

काव्यानुशासन-वृत्ति :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य विजयलावण्यसूरि ने स्वोपज्ञ दोनों वृत्तियों के आधार पर एक नई वृत्ति की रचना की है, जिसका प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है।

काव्यानुशासन-अवचूरि :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य विजयलावण्यसूरि के प्रशिष्य आचार्य विजय-सुशीलसूरि ने छोटी-सी 'अवचूरि' की रचना की है।

कल्पलता :

'कल्पलता' नामक साहित्यिक ग्रन्थ पर 'कल्पलतापल्लव' और 'कल्पपल्लव-शेष' नामक दो वृत्तियाँ लिखी गई, ऐसा 'कल्पपल्लवशेष' की हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है। यह प्रति वि० स० १२०५ में तालपत्र पर लिखी हुई जैसलमेर के हस्तलिखित ग्रन्थभण्डार से प्राप्त हुई है। अतः कल्पलता का रचनाकाल वि० स० १२०५ से पूर्व मानना उचित है।

'कल्पलता' के रचयिता कौन थे, इसका 'कल्पपल्लवशेष' में उल्लेख न होने से रचनाकार के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। वादी देवसूरि ने जो

अभिप्राय यह है कि जब वादी देवसूरि ने 'स्याद्वादरत्नाकर' की रचना की उसके पहले ही अम्बाप्रसाद ने अपने तीनों ग्रन्थों की रचना पूरी कर ली थी। चूँकि 'स्याद्वादरत्नाकर' अभी तक पूरा प्राप्त नहीं हुआ है इसलिए उसकी रचना का ठीक समय अज्ञात है। 'कल्पलता' ग्रन्थ भी अभी तक नहीं मिला है।

कल्पलतापल्लव (सङ्केत) :

'कल्पलता' पर महामात्य अम्बाप्रसाद-रचित 'कल्पलतापल्लव' नामक वृत्ति-ग्रन्थ था परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिये उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कल्पपल्लवशेष (विवेक) :

'कल्पलता' पर 'कल्पपल्लवशेष' नामक वृत्ति की ६५०० श्लोक-परिमाण हस्तलिखित प्रति जैसलमेर के भंडार से प्राप्त हुई है। इसके कर्ता भी महामात्य अम्बाप्रसाद ही है। इसका आदि पद्य इस प्रकार है :

यत् पल्लवे न विवृतं दुर्बोधं मन्दबुद्धेश्चापि।
क्रियते कल्पलतायां तस्य विवेकोऽयमतिसुगमः॥

इस ग्रन्थ में अलंकार, रस और भावों के विषय में दार्शनिक चर्चा की गई है। इसमें कई उदाहरण अन्य कवियों के है और कई स्वनिर्मित है। संस्कृत के अलावा प्राकृत के भी अनेक पद्य है।

'कल्पलता' को विबुधमंदिर, 'पल्लव' को मंदिर का कलश और 'शेष' को उसका ध्वज कहा गया है।

वाग्भटालङ्कार :

'वाग्भटालंकार' के कर्ता वाग्भट है। प्राकृत में उनको वाहड कहते थे[1]। वे गुर्जरनरेश सिद्धराज के समकालीन और उनके द्वारा सम्मानित थे। उनके पिता का नाम सोम था और वे महामंत्री थे। कई विद्वान् उदयन महामंत्री का दूसरा नाम सोम था, ऐसा मानते है। यह बात ठीक हो तो ये वाग्भट वि० सं० ११७९ से १२१३ तक विद्यमान थे[2]।

---

१ बंभंडसुत्तिसंपुड-मुत्तिअमणिणोपहासमूह व्व।
सिरिवाहड त्ति तणओ आसि बुहो तस्स सोमस्स॥ (४ १४८, पृ ७२)

२ 'प्रबन्धचिन्तामणि' सर्ग २२, श्लोक ४७२, ६७४

३. वाग्भटालंकार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय जिनप्रभसूरि के सतानीय जिनतिलकसूरि के शिष्य उपाध्याय राजहस (सन् १३५०–१४००) ने 'वाग्भटालकार' पर वृत्ति की रचना की है।[1]

४. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय सागरचद्र के सतानीय वाचनाचार्य रत्नधीर के शिष्य ज्ञान प्रमोदगणि वाचक ने वि० सं० १६८१ में 'वाग्भटालकार'[2] पर २९५६ श्लोक-परिमाण वृत्ति की रचना की है।[3]

५. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनराजसूरि के शिष्य आचार्य जिनवर्धनसूरि (सन् १४०५–१४१९) ने 'वाग्भटालकार' पर १०३५ श्लोक परिमाण वृत्ति की रचना की है, जिसकी चार हस्तलिखित प्रतिया अहमदाबाद के लालभाई दल-पतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में हैं, जिनमें से एक प्रति वि० स० १५२९ में और दूसरी वि० स० १६९८ में लिखी गई है।

६. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय सकलचद्र के शिष्य उपाध्याय समयसुदरगणि ने 'वाग्भटालकार' पर वि० स० १६९२ में १६५० श्लोक परिमाण वृत्ति की रचना की है जिसकी हस्तलिखित प्रति प्राप्त है।

७ वाग्भटालङ्कार-वृत्ति

मुनि क्षेमहसगणि ने 'वाग्भटालकार' पर 'समासान्वय' नामक टिप्पण की रचना की है।

---

१ देखिए–'भाडारकर रिपोर्ट' सन् १८८३–८४, पृ० १५६, २७९
"इति श्रीखरतरगच्छप्रभुश्रीजिनप्रभु(भ)सूरिसंतान्य(नीय)पूज्य श्रीजिनतिलकसूरि-शिष्यश्रीराजहसोपाध्यायविरचिताया श्रीवाग्भटालकार-टीकाया पञ्चम परिच्छेद ।" इसकी हस्तलिखित प्रति वि० स० १४८६ की भाडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में है।

२ सवद् विक्रमनृपते विधु-वसु-रस-शशिभिरङ्किते।
ज्ञानप्रमोदवाचकगणिभिरियं विरचिता वृत्ति ॥

३ इसकी हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के डेला भडार में है।

इस कृति में गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के प्रशसात्मक पद्य दृष्टान्त रूप मे दिये गये है। यह कृति विक्रम की १३ वीं शताब्दी मे रची गयी है।'

आचार्य जयमङ्गलसूरि ने मारवाड़ मे स्थित सुधा की पहाड़ी के सस्कृत शिलालेख की रचना की है। इनकी अपभ्रश और जूनी गुजराती भाषा की रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

अलङ्कारमहोदधि :

'अलङ्कारमहोदधि' नामक अलंकारविषयक ग्रन्थ हर्षपुरीय गच्छ के आचार्य नरचन्द्रसूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने महामात्य वस्तुपाल की विनती से वि० स० १२८० मे बनाया।

यह ग्रन्थ आठ तरगों में विभक्त है। मूल ग्रन्थ के ३०४ पद्य है। प्रथम तरग में काव्य का प्रयोजन और उसके भेदों का वर्णन, दूसरे मे शब्द-वैचित्र्य का निरूपण, तीसरे मे ध्वनि का निर्णय, चतुर्थ में गुणीभूत व्यग्य का निर्देश, पञ्चम में दोषों की चर्चा, छठे में गुणों का विवेचन, सातवें में शब्दालकार और आठवें मे अर्थालकार का निरूपण किया है। ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है।'

अलङ्कारमहोदधि-वृत्ति :

'अलङ्कारमहोदधि' ग्रन्थ पर आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना वि० स० १२८२ मे की है। यह वृत्ति ४५०० श्लोक-प्रमाण है। इसमें प्राचीन महाकवियों के ९८२ उदाहरणरूप विविध पद्य नाटक, काव्य आदि ग्रन्थो से उद्धृत किये गये है।

अहमदाबाद के डेला भण्डार की ३९ पत्रों की 'अर्थालङ्कार-वर्णन' नामक कृति कोई स्वतत्र ग्रन्थ नहीं है अपितु इस 'अलकारमहोदधि' ग्रन्थ के आठवे तरग और इसकी स्वोपज्ञ टीका की ही नकल है।

---

१ इस ग्रन्थ की तालपत्रीय प्रति खंभात के शान्तिनाथ भण्डार मे है। इसकी प्रेस कॉपी मुनिराज श्री पुण्यविजयजी के पास है।

२ यह 'अलकारमहोदधि' ग्रन्थ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज मे छप गया है।

उल्लेख किया गया है। इससे मालूम होता है कि आचार्य रविप्रभसूरि ने अलकारसम्बन्धी किसी ग्रन्थ की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं है। काव्यशिक्षा में ८४ देशों के नाम, राजा भोज द्वारा जीते हुए देशों के नाम, कवियों की प्रौढोक्तियों से उत्पन्न उपमाएँ और लोक व्यवहार के ज्ञान का भी परिचय दिया गया है। इस विषय में आचार्य ने इस प्रकार कहा है :।

इति लोकव्यवहारं गुरुपदविनयादवाप्य कविः सारम्।
नवनवभणितिश्रव्यं करोति सुतरां क्षणात् काव्यम्॥

चतुर्थ परिच्छेद मे सारभूत वस्तुओं का निर्देश करके उन-उन नामों के निर्देशपूर्वक प्राचीन महाकवियों के काव्यो का और जैनगुरुओं के रचित शास्त्रों का अभ्यास करना आवश्यक बताया है। दूसरा क्रियानिर्णय परिच्छेद व्याकरण के धातुओं का और पाँचवाँ अनेकार्थशब्दसग्रह-परिच्छेद शब्दों के एकाधिक अर्थों का ज्ञान कराता है। छठे परिच्छेद में रसों का निरूपण है। इससे यह मालूम होता है कि आचार्य विनयचन्द्रसूरि अलकार-विषय के अतिरिक्त व्याकरण और कोश के विषय में भी निष्णात थे। अनेक ग्रन्थों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वे एक बहुश्रुत विद्वान् थे।

कविशिक्षा और कवितारहस्य :

महामात्य वस्तुपाल के जीवन और उनके सुकृतों से सम्बन्धित 'सुकृत-सकीर्तनकाव्य' (सर्ग ११, श्लोक-सख्या ५५५) के रचयिता और ठक्कुर लावण्यसिंह के पुत्र महाकवि अरिसिंह महामात्य वस्तुपाल के आश्रित कवि थे। ये १३ वीं शताब्दी मे विद्यमान थे। ये कवि वायडगच्छीय आचार्य जीवदेवसूरि के भक्त थे और कवीश्वर आचार्य अमरचन्द्रसूरि के कलागुरु थे।

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'कविशिक्षा' नामक जो सूत्रबद्ध ग्रन्थ रचा है तथा उसपर जो 'काव्यकल्पलता' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति बनाई है उसमें कई सूत्र इन अरिसिंह के रचे हुए होने का आचार्य अमरसिंहसूरि ने स्वय उल्लेख किया है :

सारस्वतामृतमहार्णवपूर्णिमेन्दो-
मत्वाऽरिसिंहसुकवेः कवितारहस्यम्।
किञ्चिच्च तद्रचितमात्मकृत च किञ्चिद्
व्याख्यास्यते त्वरितकाव्यकृतेऽत्र सूत्रम्॥

चौथा अर्थसिद्धि प्रतान है। इसमें १ अलङ्काराभ्यास, २ वर्ण्यार्थोत्पत्ति, ३ आकारार्थोत्पत्ति, ४ क्रियार्थोत्पत्ति, ५ प्रकीर्णक, ६ संख्या नामक और ७. समस्याक्रम—इस प्रकार सात स्तबक २९० श्लोक-बद्ध सूत्रों में है।

कवि-सम्प्रदाय की परम्परा न रहने से और तद्विषयक अज्ञानता के कारण कविता की उत्पत्ति में सौंदर्य नहीं आ पाता। इस विषय की साधना के लिये आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने उपर्युक्त विषयों से भरी हुई इस 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' की रचना की है।

कविता-निर्माण-विधि पर राजशेखर की 'काव्य-मीमांसा' कुछ प्रकाश अवश्य डालती है परंतु पूर्णतया नहीं। कवि क्षेमेन्द्र का 'कविकण्ठाभरण' मूल तत्त्वों का बोध कराता है परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। कवि हलायुध का 'कविरहस्य' सिर्फ क्रिया-प्रयोगों की विचित्रताओं का बोध कराता है इसलिए वह भी एकदेशीय है। जयमंगलाचार्य की 'कविशिक्षा' एक छोटा सा ग्रंथ है अत: वह भी पर्याप्त नहीं है। विनयचंद्र की 'काव्य-शिक्षा' में कुछ विषय अवश्य है परंतु वह भी पूर्ण नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि काव्य-निर्माण के अभ्यासियों के लिये अमरचन्द्रसूरि की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' और देवेश्वर की 'काव्यकल्पलता' ये दोनों ग्रन्थ उपयोगी है। देवेश्वर ने अपनी काव्यकल्पलता की अमरचन्द्रसूरि की वृत्ति के आधार पर संक्षेप में रचना की है।'

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने सरस्वती की साधना करके सिद्धकवित्व प्राप्त किया था। उनके आशुकवित्व के बारे में प्रबन्धों में कई बातें उल्लिखित है।

जब आचार्य अमरचन्द्रसूरि विसलदेव राजा की विनती से उनके राज-दरबार में आये तब सोमेश्वर, सोमादित्य, कमलादित्य, नानाक पंडित वगैरह महाकवि उपस्थित थे। उन सभी ने उनसे समस्याएँ पूछीं। उस समय उन्होंने १०८ समस्याओं की पूर्ति की थी जिससे वे आशुकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। नानाक पंडित ने 'गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु' यह पाद देकर समस्या पूर्ण करने को कहा तब अमरचन्द्रसूरि ने झट से इस प्रकार समस्या-पूर्ति कर दी

---

१ प्रथम प्रतान के पांचवें स्तबक का 'अससोऽपि निरर्थेन' से लेकर 'निश्चयमेवाभिमतम्' तक का पूरा पाठ देवेश्वर ने अपनी 'काव्यकल्पलता' में लिया है।

अस्या [illegible] महसावतीर्णे
पूर्णो मृग विगतलाञ्छन एव चन्द्रः ।
सा [illegible] तुलामतीव-
गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु ॥

इस समस्यापूर्ति से सभा प्रसन्न हुई और आचार्य अमरचन्द्रसूरि सकल कवि-मण्डल में श्रेष्ठ कवि के रूप में माने जाने लगे। वे 'वेणीकृपाण अमर' नाम से भी प्रख्यात हैं।

इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है, जिनके आधार पर मालूम होता है कि ये व्याकरण, अलंकार, छंद इत्यादि विषयों में बड़े प्रवीण थे। इनकी रचना-शैली सरल, मधुर, स्वस्थ और नैसर्गिक है। इनकी रचनाएँ शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से मनोहर बनी हैं। इनके अन्य ग्रन्थ ये हैं: १ स्यादिशब्द-समुच्चय, २ पद्मानन्दकाव्य, ३ बालभारत, ४ छंदोरत्नावली, ५ द्रौपदी-स्वयंवर,[1] ६ काव्यकल्पलतामञ्जरी, ७ काव्यकल्पलता परिमल, ८ अलंकार-प्रबोध, ९ सूक्तावली, १० कलाकलाप आदि।

काव्यकल्पलतापरिमल वृत्ति तथा काव्यकल्पलतामञ्जरी-वृत्ति :

'काव्यकल्पलता वृत्ति' पर ही आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने स्वोपज्ञ 'काव्यकल्प-लतामञ्जरी', जो अभीतक प्राप्त नहीं हुई है, तथा ११२२ श्लोक-परिमाण 'काव्य-कल्पलतापरिमल' वृत्तियों की रचना की है।[2]

काव्यकल्पलतावृत्ति-मकरन्दटीका :

'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य शुभविजयजी ने वि० सं० १६६५ में (जहाँगीर बादशाह के राज्यकाल में) आचार्य विजय-देवसूरि की आज्ञा से ३१९६ श्लोक-परिमाण एक टीका रची है।[3]

---

१ यह ग्रंथ अनुपलब्ध है।

२ 'काव्यकल्पलतापरिमल' की दो हस्तलिखित अपूर्ण प्रतियाँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

३ इसकी प्रतियाँ जैसलमेर के भंडार में और अहमदाबादस्थित हाजा पटेल की पोल के उपाश्रय में हैं। यह टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

इनके रचे अन्य ग्रथ इस प्रकार है. १ हैमनाममाला-बीजक, २ तर्कभाषा-वार्तिक (स० १६६३), ३ स्याद्वादभाषा—वृत्तियुत (स० १६६७), ४ कल्पसूत्र-टीका, ५ प्रश्नोत्तररत्नाकर (सेनप्रश्न)।

काव्यकल्पलतावृत्ति-टीका :

जिनरत्नकोश के पृ० ८९ मे उपाध्याय यशोविजयजी ने ३२५० श्लोक-परिमाण एक टीका की आचार्य अमरचद्रसूरि की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' पर रचना की है, ऐसा उल्लेख है।[1]

काव्यकल्पलतावृत्ति-बालावबोध :

नेमिचद्र भडारी नामक विद्वान् ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर जूनी गुजराती मे 'बालावबोध' की रचना की है। इन्होने 'षष्टिशतक' प्रकरण भी बनाया है।

काव्यकल्पलतावृत्ति-बालावबोध :

खरतरगच्छीय मुनि मेरुसुन्दर ने वि० स० १५३५ मे 'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर जूनी गुजराती मे एक अन्य 'बालावबोध' की रचना की है। इन्होंने षष्टि-शतक, विदग्धमुखमडन, योगशास्त्र इत्यादि ग्रथो पर बालावबोधों की रचना की है।

अलङ्कारप्रबोध :

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'अलङ्कारप्रबोध' नामक ग्रथ की रचना वि० स० १२८० के आसपास मे की है। इस ग्रथ का उल्लेख आचार्य ने अपनी 'काव्य-कल्पलता वृत्ति' (पृ० ११६) में किया है। यह ग्रथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

काव्यानुशासन :

महाकवि वाग्भट ने 'काव्यानुशासन' नामक अलकार-ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी में की है। वे मेवाड़ देश मे प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के लघु बन्धु थे।

यह ग्रन्थ पॉच अध्यायों मे गद्य मे सूत्रबद्ध है। प्रथम अध्याय मे काव्य का प्रयोजन और हेतु, कवि समय, काव्य का लक्षण और गद्य आदि तीन

---

1. इसकी प्रति अहमदाबाद के विमलगच्छ के उपाश्रय में है, ऐसा सूचित किया गया है।

श्रृंगारार्णवचन्द्रिका :

दिगम्बर जैनमुनि विजयकीर्ति के शिष्य विजयवर्णी[1] ने 'श्रृगारार्णवचन्द्रिका' नामक अलकार-ग्रन्थ की रचना की है। दक्षिण कनाडा जिले मे राज करनेवाले जैन राजवंशो मे बगवशीय (गगवशीय) राजा कामराय बग जो शक स० ११८६ (सन् १२६४, वि० स० १३२०) मे सिंहासनारूढ हुआ था, की प्रार्थना से कविवर विजयवर्णी ने इस ग्रथ की रचना की। वे स्वय कहते है :

> इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः।
> क्रियते सूरिणा (? वर्णिना) नाम्ना श्रृगारार्णवचन्द्रिका ॥

इस ग्रथ मे काव्य के गुण, रीति, दोष, अलकार वगैरह का निरूपण करते हुए जितने भी पद्यमय उदाहरण दिये गये है वे सब राजा कामराय बग के प्रशसात्मक हैं। अन्त मे वर्णीजी कहते है :

> श्रीवीरनरसिंहकामरायबङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके श्रृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलकारसग्रहे ॥

कवि ने प्रारभ मे ७ पद्यों में सुप्रसिद्ध कन्नड़ कवि गुणवर्मा का स्मरण किया है। अन्य पद्यों से बगवाड़ी की तत्काल समृद्धि की स्पष्ट झलक मिलती है तथा कदब राजवश के विषय मे भी सूचना मिलती है।

'श्रृगारार्णवचंद्रिका' मे दस परिच्छेद इस प्रकार हैं : १. वर्ग-गण-फल-निर्णय, २ काव्यगतशब्दार्थनिर्णय, ३ रसभावनिर्णय, ४. नायकभेदनिर्णय, ५ दशगुणनिर्णय, ६. रीतिनिर्णय, ७ वृत्ति (त्त) निर्णय, ८. शय्याभागनिर्णय, ९ अलकारनिर्णय, १० दोष गुणनिर्णय। यह सरल और स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

अलङ्कारसंग्रह :

कन्नड जैनकवि अमृतनन्दी ने 'अलङ्कारसग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसे 'अलकारसार' भी कहते हैं। 'कन्नडकविचरिते' (भा० २, पृ० ३३) से ज्ञात होता है कि अमृतनन्दी १३ वीं शताब्दी में हुए थे।

'रसरत्नाकर' नामक कन्नड़ अलकारग्रन्थ की भूमिका मे ए० वेंकटराव तथा एच० टी० शेष आयगर ने 'अलकारसग्रह' के बारे मे इस प्रकार परिचय दिया है :

---

१ श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम् ॥ ५ ॥

भेद, महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चपू, मिश्रकाव्य, रूपक के दस भेद और गेय—इस प्रकार विविध विषयों का संग्रह है।

दूसरे अध्याय में पद और वाक्य के दोष, अर्थ के चौदह दोष, दूसरों द्वारा निर्दिष्ट दस गुण, तीन गुणों के सम्बन्ध में अपना स्पष्ट अभिप्राय और तीन रीतियों के बारे में उल्लेख है।

तीसरे अध्याय में ६३ अलकारों का निरूपण है। इसमे अन्य, अपर, आशिष्, उभयन्यास, पिहित, पूर्व, भाव, मत और लेश—इस प्रकार कितने ही विरल अलकारों का निर्देश है।

चतुर्थ अध्याय में शब्दालकार के चित्र, श्लेष, अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक और पुनरुक्तवदाभास—ये भेद और उनके उपभेद बताये गए हैं।

पञ्चम अध्याय मे नव रस, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी, नायक और नायिका के भेद, काम की दस दशाएँ और रस के दोष—इस प्रकार विविध विषयों की चर्चा है।

इन सूत्रों पर स्वोपज्ञ 'अलकारतिलक' नामक वृत्ति की रचना वाग्भट ने की है। इसमें काव्य-वस्तु का स्फुट निरूपण और उदाहरण दिये गए हैं। चन्द्रप्रभकाव्य, नेमिनिर्वाण-काव्य, राजीमती-परित्याग, सीता नामक कवयित्री और अब्धिमथन जैसे (अपभ्रश) ग्रन्थों के पद्य उदाहरण के रूप में दिये गए हैं। काव्यमीमासा और काव्यप्रकाश का इसमें खूब उपयोग किया गया है। इसमें 'वाग्भटालकार' का भी उल्लेख है। विविध देशों, नदियों और वनस्पतियों का उल्लेख तथा मेदपाट, राहडपुर और नलोटकपुर का निर्देश किया गया है। कवि के पिता नेमिकुमार का भी उल्लेख है। इनके दो अन्य ग्रन्थों—छदोनुशासन और ऋषभचरित—का भी उल्लेख मिलता है।

कवि ने टीका के अन्त में अपनी नम्रता प्रकट की है।[१] वे अपने को द्वितीय वाग्भट बताते हुए लिखते हैं कि राजा राजसिंह दूसरे जयसिंहदेव हैं, तक्षकनगर दूसरा अणहिल्लपुर है और मैं वादिराज दूसरा वाग्भट हूँ।

---

१ श्रीमद्भीमनृपालजस्य वलिन श्रीराजसिंहस्य मे
सेवायामवकाशमाप्य विहिता टीका शिशूना हिता।
हीनाधिक्यवचो यदत्र लिखित तद् व बुधैः क्षम्यता
गार्हस्थ्यावनिनाथसेवनधिय क स्वस्थतामाप्नुयात ॥

शृंगारार्णवचन्द्रिका :

दिगम्बर जैनमुनि विजयकीर्ति के शिष्य विजयवर्णी[1] ने 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' नामक अलकार-ग्रन्थ की रचना की है। दक्षिण कनाडा जिले मे राज करनेवाले जैन राजवंशों मे बगवशीय (गगवशीय) राजा कामराय बग जो शक स० ११८६ (सन् १२६४, वि० स० १३२०) मे सिंहासनारूढ हुआ था, की प्रार्थना से कविवर विजयवर्णी ने इस ग्रथ की रचना की। वे स्वय कहते है :

इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः।
क्रियते सूरिणा (? वर्णिना) नाम्ना शृंगारार्णवचन्द्रिका॥

इस ग्रथ मे काव्य के गुण, रीति, दोष, अलकार वगैरह का निरूपण करते हुए जितने भी पद्यमय उदाहरण दिये गये हैं वे सब राजा कामराय बग के प्रशसात्मक है। अन्त मे वर्णीजी कहते है

श्रीवीरनरसिंहकामरायवङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलकारसंग्रहे॥

कवि ने प्रारभ मे ७ पद्यों मे सुप्रसिद्ध कन्नड कवि गुणवर्मा का स्मरण किया है। अन्य पद्यों से बगवाड़ी की तत्काल समृद्धि की स्पष्ट झलक मिलती है तथा कदब राजवश के विषय में भी सूचना मिलती है।

'शृगारार्णवचंद्रिका' में दस परिच्छेद इस प्रकार है : १. वर्ण-गण-फल-निर्णय, २ काव्यगतशब्दार्थनिर्णय, ३ रसभावनिर्णय, ४. नायकभेदनिर्णय, ५ दशगुणनिर्णय, ६ रीतिनिर्णय, ७ वृत्ति (त्त) निर्णय, ८. शय्याभागनिर्णय, ९ अलकारनिर्णय, १० दोष गुणनिर्णय। यह सरल और स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

अलङ्कारसंग्रह :

कन्नड जैनकवि अमृतनन्दी ने 'अलङ्कारसग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसे 'अलकारसार' भी कहते हैं। 'कन्नडकविचरिते' (भा० २, पृ० ३३) से ज्ञात होता है कि अमृतनन्दी १३ वीं शताब्दी में हुए थे।

'रसरत्नाकर' नामक कन्नड अलकारग्रन्थ की भूमिका मे ए० वेंकटराव तथा एच० टी० शेष आयगर ने 'अलकारसग्रह' के बारे में इस प्रकार परिचय दिया है

---

१ श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम्॥ ५॥

अमृतनदी का 'अलकारसग्रह' नामक एक ग्रन्थ है। उसके प्रथम परिच्छेद मे वर्णगणविचार, दूसरे मे शब्दार्थनिर्णय, तीसरे मे रसनिर्णय, चतुर्थ मे नेतृभेद-विचार, पञ्चम मे अलकार-निर्णय, छठे मे दोषगुणालकार, सातवें में सन्ध्यङ्गनिरूपण, आठवे में वृत्ति (त्त) निरूपण और नवम परिच्छेद मे काव्यालकारनिरूपण है।[१]

यह उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। प्राचीन आलकारिकों के ग्रन्थों को देखकर मन्व भूपति की अनुमति से उन्होंने यह सग्रहात्मक ग्रन्थ बनाया। ग्रन्थकार स्वय इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं :

संचित्यैकत्र कथय सौकर्याय सतामिति।
मया तत्प्रार्थितेनेत्थममृतानन्दयोगिना ॥ ८ ॥

मन्व भूपति के पिता, वश, धर्म तथा काव्यविषयक जिज्ञासा के बारे मे भी ग्रन्थकार ने कुछ परिचय दिया है।[२] मन्व भूपति का समय सन् १२९९ (वि० स० १३५५) के आसपास माना

अलंकारमंडन :

मत्री मण्डन श्रीमालवशीय सोनगरा गोत्र के थे। वे जालोर के मूल निवासी थे परन्तु उनकी सातवीं-आठवीं पीढी के पूर्वज माडवगढ में आकर रहने लगे थे। उनके वश में मत्री पद भी परपरागत चला आता था। मडन भी आलमशाह (हुशगगोरी—वि० स० १४६१–१४८८) का मत्री था। आलमशाह विद्याप्रेमी था अत॰ मडन पर उसका अधिक स्नेह था। वह व्याकरण, अलकार, सगीत और साहित्यशास्त्र में प्रवीण तथा कवि था।

उसका चचेरा भाई धनद भी बड़ा विद्वान् था। उसने भर्तृहरि की 'सुभाषितत्रिशती' के समान नीतिशतक, शृगारशतक और वैराग्यशतक—इन तीन शतकों की रचना की थी।

उनके वश में विद्या के प्रति जैसा अनुराग था वैसी ही धर्म मे उत्कट श्रद्धा-भक्ति थी। वे सब जैनधर्मावलम्बी थे। आचार्य जिनभद्रसूरि के उपदेश से मत्री मण्डन ने प्रचुर धन व्यय करके जैन सिद्धात-ग्रन्थो का सिद्धान्तकोश लिखवाया था।

मत्री मडन विद्वान् होने के साथ ही धनी भी था। वह विद्वानो के प्रति अत्यन्त स्नेह रखता था और उनका उचित सम्मान कर दान देता था।

महेश्वर नामक विद्वान् कवि ने मडन और उसके पूर्वजों का ब्यौरेवार वर्णन करनेवाला 'काव्यमनोहर' ग्रन्थ लिखा है। उससे उसके जीवन की बहुत-कुछ बातों का पता लगता है। मडन ने अपने प्राय॰ सब ग्रन्थों के अन्त में मण्डन शब्द जोड़ा है। मडन के अन्य ग्रन्थ ये हैं

१ सारस्वतमडन, २ उपसर्गमडन, ३ शृगारमडन, ४ काव्यमडन, ५ चपूमडन, ६ कादम्बरीमडन, ७ सगीतमडन, ८ चद्रविजय, ९ कविकल्पद्रुमस्कन्ध।

काव्यालंकारसार :

कालिकाचार्य-सतानीय खडिलगच्छीय आचार्य जिनदेवसूरि के शिष्य आचार्य भावदेवसूरि ने पद्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे 'काव्यालकारसार'[1] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस पद्यात्मक कृति के प्रथम पद्य मे इसका 'काव्यालकारसारसकलना', प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में 'अलकारसार' और आठवें अध्याय के अतिम पद्य मे 'अलकारसग्रह' नाम मे उल्लेख किया है॰

---

१ यह ग्रन्थ 'अलंकारमहोदधि' के अन्त मे गायकवाड ओरियण्टल सिरीज बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

आचार्यभावदेवेन प्राच्यशास्त्रमहोदधेः।
आदाय साररत्नानि कृतोऽलंकारसंग्रहः॥

यह छोटा सा परन्तु अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ है। इसमें ८ अध्याय और १३१ श्लोक हैं। ८ अध्यायों का विषय इस प्रकार है:

१ काव्य का फल, हेतु और स्वरूपनिरूपण, २. शब्दार्थस्वरूपनिरूपण, ३ शब्दार्थदोषप्रकटन, ४ गुणप्रकाशन, ५ शब्दालंकारनिर्णय, ६ अर्थालंकार-प्रकाशन, ७. रीतिस्वरूपनिरूपण, ८. भावाविर्भाव।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार मालूम होते हैं: १. पार्श्वनाथचरित (वि० स० १४१२), २. जइदिणचरिया (यतिदिनचर्या), ३ कालिकाचार्यकथा।

अकबरसाहिशृंगारदर्पण:

जैनाचार्य भट्टारक पद्ममेरु के शिष्यरत्न पद्मसुन्दरगणि ने 'अकबरसाहिशृङ्गार-दर्पण' नामक अलंकार-ग्रन्थ की रचना की है। ये नागौरी तपागच्छ के भट्टारक यति थे। उनकी परम्परा के हर्षकीर्तिसूरि ने 'धातुतरङ्गिणी' में उनकी योग्यता का परिचय इस प्रकार दिया है.'

मुगल सम्राट अकबर की विद्वत्सभा में पद्मसुन्दर ने किसी महापण्डित को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। अकबर ने अपनी विद्वत्सभा में उनको समान्य विद्वानों में स्थान दिया था। उन्हें रेशमी वस्त्र, पालकी और गाँव भेंट में दिया था। वे जोधपुर के राजा मालदेव के सम्मान्य विद्वान् थे।

'अकबरसाहिशृङ्गारदर्पण' नाम से ही मालूम होता है कि यह ग्रन्थ बादशाह अकबर को लक्षित कर लिखा गया है। ग्रन्थकार ने रुद्र कवि के 'शृङ्गारतिलक' की शैली का अनुसरण करके इसकी रचना की है परन्तु इसका प्रस्तुतीकरण मौलिक है। कई स्थलों में तो यह ग्रन्थ सौन्दर्य और शैली में उससे बढ़कर है। लक्षण और उदाहरण ग्रंथकर्ता के स्वनिर्मित हैं।

यह ग्रन्थ चार उल्लासों में विभक्त है। कुल मिलाकर इसमें ३४५ छोटे-बड़े

साहे ससदि पद्मसुन्दरगणिर्जित्वा महापण्डित
क्षौम ग्राम सुखासनाद्यकबरश्रीसाहितो लब्धवान्।
हिन्दूकाधिपमालदेवनृपतेर्मान्यो वदान्योऽधिक
श्रीमद्योधपुरे सुरेप्सितवचा पद्माह्वय पाठकम्॥

पद्य हैं। इसके तीन उल्लासो मे शृङ्गार का प्रतिपादन है और चतुर्थ मे रसो का। इसमें नौ रस स्वीकार किये गये हैं।[1]

ग्रन्थकार की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१ रायमल्लाभ्युदयकाव्य (वि० स० १६१५), २ यदुसुन्दरमहाकाव्य, ३. पार्श्वनाथचरित, ४. जम्बूस्वामिकथानक, ५ राजप्रश्नीयनाट्यपदभञ्जिका, ६. परमतव्यवच्छेदस्याद्वादद्वात्रिंशिका, ७ प्रमाणसुन्दर, ८ सारस्वतरूपमाला, ९ सुन्दरप्रकाशशब्दार्णव, १०. हायनसुन्दर, ११ षड्भाषागर्भितनेमिस्तव, १२ वरमङ्गलिकास्तोत्र, १३ भारतीस्तोत्र।

कविमुखमण्डन :

खरतरगच्छीय साधुकीर्ति मुनि के शिष्य महिमसुदर के शिष्य प० ज्ञानमेरु ने 'कविमुखमण्डन' नामक अलकार-ग्रथ की रचना की है। ग्रन्थ का निर्माण दौलतखॉ के लिये किया गया, ऐसा उल्लेख कवि ने किया है।[2]

प० ज्ञानमेरु ने गुजराती भाषा मे 'गुणकरण्डगुणावलीरास' एव अन्य ग्रन्थ रचे हैं। यह रास-ग्रन्थ वि० स० १६७६ में रचा गया।[3]

कविमदपरिहार :

उपाध्याय सकलचद्र के शिष्य शातिचद्र ने 'कविमदपरिहार' नामक अलकारशास्त्रसबधी एक ग्रथ की रचना वि स १७०० के आसपास मे की है, ऐसा उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० ८२ मे है।

कविमदपरिहार-वृत्ति :

मुनि शातिचन्द्र ने 'कविमदपरिहार' पर स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

मुग्धमेधालंकार :

'मुग्धमेधालकार' नामक अलकारशास्त्रविषयक इस छोटी-सी कृति[4] के कर्ता रत्नमण्डनगणि हैं। इसका रचना-समय १७ वीं शती है।

---

१ यह ग्रथ प्राध्यापक सी० के० राजा द्वारा सपादित होकर गगा ओरियण्टल सिरीज, बीकानेर से सन् १९४३ में प्रकाशित हुआ है।

२ यह 'राजस्थान के जैन शास्त्र भडारों की ग्रन्थसूची' भा० २, पृ० २७८ मे सूचित किया गया है। इस ग्रन्थ की १० पत्रों की प्रति उपलब्ध है।

३ 'जैन गूर्जर कविओ' भा० १, पृ० ४९५, भाग, ३, खड, १, पृ० ९७९

४ यह २ पत्रात्मक कृति पूना के भाडारकर ओरियटल इन्स्टीट्यूट में है।

रत्नमण्डनगणि ने उपदेशतरङ्गिणी आदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

मुग्धमेधालंकार-वृत्ति :

'मुग्धमेधालंकार' पर किसी विद्वान् ने टीका लिखी है।[1]

काव्यलक्षण :

अज्ञातकर्तृक 'काव्यलक्षण' नामक २५०० श्लोक परिमाण एक कृति का उल्लेख जैन ग्रंथावली, पृ० ३१६ पर है।

कर्णालंकारमञ्जरी :

त्रिमल्ल नामक विद्वान् ने 'कर्णालंकारमञ्जरी' नामक अलंकार ग्रंथ की रचना की है, ऐसा उल्लेख जैन ग्रंथावली पृ० ३१५ में है।

प्रक्रान्तालंकार-वृत्ति :

जिनहर्ष के शिष्य ने 'प्रक्रान्तालंकार वृत्ति' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भंडार में विद्यमान है। इसका उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० २५७ में है।

अलंकार-चूर्णि :

'अलंकार चूर्णि' नामक ग्रंथ किसी अज्ञातनामा रचनाकार की रचना है, जिसका उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० १७ में है।

अलंकारचिंतामणि :

दिगंबर विद्वान् अजितसेन ने 'अलंकारचिंतामणि'[2] नामक ग्रंथ की रचना १८ वीं शताब्दी में की है। उसमें पांच परिच्छेद हैं और विषय वर्णन इस प्रकार है

१ कविशिक्षा, २ चित्र (शब्द)-अलंकार, ३ यमकादिवर्णन, ४ अर्थालंकार और ५ रस आदि का वर्णन।

अलंकारचिंतामणि-वृत्ति :

'अलंकारचिंतामणि' पर किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है, यह उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० १७ में है।

---

१ इसकी ३ पत्रों की प्रति भांडारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट में है।

२ यह ग्रंथ सोलापुर से प्रकाशित हो गया है।

वक्रोक्तिपंचाशिका :

रत्नाकर ने 'वक्रोक्तिपञ्चाशिका' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसका उल्लेख जैन ग्रन्थावली, पृ० ३१२ में है। इसमें वक्रोक्ति के पचास उदाहरण है या वक्रोक्ति अलङ्कारविषयक पचास पद्य हैं, यह जानने में नहीं आया।

रूपकमञ्जरी :

गोपाल के पुत्र रूपचन्द्र ने १०० श्लोक परिमाण एक कृति की रचना वि० सं० १६४४ में की है। इसका उल्लेख जैन ग्रन्थावली, पृ० ३१२ में है। जिनरत्नकोश में इसका निर्देश नहीं है, परन्तु यह तथ्य उसमें पृ० ३३२ पर 'रूपमञ्जरीनाममाला' के लिये निर्दिष्ट है। ग्रंथ का नाम देखते हुए उसमें रूपक अलङ्कार के विषय में निरूपण होगा, यह अनुमान होता है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ अलङ्कार-विषयक माना जा सकता है।

रूपकमाला :

'रूपकमाला' नाम की तीन कृतियों के उल्लेख मिलते हैं :

१ उपाध्याय पुण्यनन्दन ने 'रूपकमाला' की रचना की है और उस पर समयसुन्दरगणि ने वि० सं० १६६३ में 'वृत्ति' की रचना की है।

२ पार्श्वचन्द्रसूरि ने वि० सं० १५८६ में 'रूपकमाला' नामक कृति की रचना की है।

३ किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'रूपकमाला' की रचना की है।

ये तीनों कृतियाँ अलङ्कारविषयक हैं या अन्यविषयक, यह शोधनीय है।

काव्यादर्श-वृत्ति :

महाकवि दंडी ने करीब वि० सं० ७०० में 'काव्यादर्श' ग्रंथ की रचना की है। उसमें तीन परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य की व्याख्या, प्रकार तथा वैदर्भी और गौडी—ये दो रीतियां, दस गुण, अनुप्रास और कवि बनने के लिये त्रिविध योग्यता आदि की चर्चा है। दूसरे परिच्छेद में ३५ अलङ्कारों का निरूपण है। तीसरे में यमक का विस्तृत निरूपण, भाँति-भाँति के चित्रबंध, सोलह प्रकार की प्रहेलिका और दस दोषों के विषय में विवरण है।

इस 'काव्यादर्श' पर त्रिभुवनचन्द्र अपरनाम वादी सिंहसूरि ने[1] टीका की

---

१ ये वादी सिंहसूरि शायद वि० सं० १३२४ में 'प्रश्नशतक' की रचना करनेवाले कासद्रह गच्छ के नरचन्द्रसूरि के गुरु हैं। देखिए—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१३

रचना की है। इसकी वि० सं० १७५८ की हस्तलिखित प्रति बंगला लिपि में है।

काव्यालंकार-वृत्ति :

महाकवि रुद्रट ने करीब वि० सं० ९५० में 'काव्यालंकार' की १६ अध्यायों में रचना की है। कवि भामह और वामन ने भी अपने अलंकार-ग्रंथों का नाम 'काव्यालंकार' रखा है। रुद्रट ने अलंकारों के वर्गीकरण के लिए सैद्धांतिक व्यवस्था की है। अलंकारों का वर्णन ही इस ग्रंथ की विशेषता है। ग्रंथ में दिये हुए उदाहरण इनके अपने हैं। नौ रसों के अतिरिक्त दसवें 'प्रेयस्' नामक रस का निर्देश किया गया है। तीसरे अध्याय में यमक के विषय में ५८ पद्य हैं। पाँचवें अध्याय में चित्रबंधों का विवरण है।

इस 'काव्यालंकार' पर नमिसाधु ने वि० सं० ११२५ में वृत्ति, जिसे 'टिप्पन' कहते हैं, की रचना की है। ये नमिसाधु थारापद्रगच्छीय शालिभद्र के शिष्य थे। इन्होंने अपने पूर्व के कवियों और आलंकारिकों तथा उनके ग्रंथों का नामनिर्देश किया है।

नमिसाधु ने अपभ्रंश के १ उपनागर, २. आभीर और ३ ग्राम्य—इन तीन भेदों से संबंधित मान्यताओं के विषय में उल्लेख किया है जिनका रुद्रट ने निरास करते हुए अपभ्रंश के अनेक प्रकार बताये हैं। देश-प्रदेशभेद से अपभ्रंश भाषा भी तत्तत् प्रकार की होती है। उनके लक्षण उन-उन देशों के लोगों से जाने जा सकते हैं।

नमिसाधु ने 'आवश्यकचैत्यवंदन वृत्ति' की रचना वि० सं० ११२२ में की है।

काव्यालंकार-निबन्धनवृत्ति :

दिगम्बर विद्वान् आशाधर ने रुद्रट के 'काव्यालंकार' पर 'निबंधन' नामक वृत्ति[1] की रचना वि० सं० १२९६ के आस-पास में की है।

काव्यप्रकाश-संकेतवृत्ति :

महाकवि मम्मट ने करीब वि० सं० ११९० में 'काव्यप्रकाश' नामक काव्यशास्त्र के अतीव उपयोगी ग्रंथ की रचना की है। इसमें १० उल्लास हैं और १४३ कारिकाओं में सारे काव्यशास्त्र की लाक्षणिक बातों का समावेश किया गया है। इस ग्रंथ पर स्वयं मम्मट ने वृत्ति रची है। उसमें उन्होंने अन्य ग्रंथ-

---

१ रौद्रटस्य व्यधात् काव्यालंकारस्य निबन्धनम् ॥—सागारधर्मामृत, प्रशस्ति.

कारों के ६२० पद्य उदाहरणरूप में दिये हैं। अपने पूर्व के ग्रंथकार भामह, वामन, अभिनवगुप्त, उद्भट वगैरह के अभिप्रायों का उल्लेख कर अपना भिन्न मत भी प्रदर्शित किया है। मम्मट के बाद में होनेवाले आलंकारिकों ने 'काव्यप्रकाश' का यथेच्छ उपयोग किया है और उस पर अनेक टीकाएँ बनाई हैं, यही उसकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

इस 'काव्यप्रकाश' पर राजगच्छीय आचार्य सागरचंद्र के शिष्य माणिक्यचंद्रसूरि ने संकेत नाम की टीका की रचना की है जो उपलब्ध टीकाओं में काफी प्राचीन है। इन्होंने वि० सं० 'रस-वक्त्र-ग्रहाधीश' का उल्लेख किया है, जिसका अर्थ कोई १२१६, कोई १२४६, और कोई १२६६ करते हैं। आचार्य माणिक्यचंद्रसूरि मंत्री वस्तुपाल के समकालीन थे इसलिये वि० सं० १२६६ उपयुक्त जँचता है।

आचार्य माणिक्यचंद्र ने अपने पूर्वकालीन ग्रंथकारों की कृतियों का भी पर्याप्त उपयोग किया है। आचार्य हेमचंद्रसूरि के 'काव्यानुशासन' की स्वोपज्ञ 'अलंकारचूडामणि' और 'विवेक' टीकाओं में भी उपयोगी सामग्री उद्धृत की है।

काव्यप्रकाश-टीका :

तपागच्छीय मुनि हर्षकुल ने 'काव्यप्रकाश' पर एक टीका रची है। ये विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में हुए थे।

सारदीपिका-वृत्ति :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य विनयसमुद्रगणि के शिष्य गुणरत्नगणि ने 'काव्यप्रकाश' पर १०००० श्लोक-प्रमाण 'सारदीपिका'[1] नामक टीका की रचना[2] अपने शिष्य रत्नविशाल के लिये की थी।

काव्यप्रकाश वृत्ति :

आचार्य जयानन्दसूरि ने 'काव्यप्रकाश' पर एक वृत्ति लिखी है जिसका श्लोक प्रमाण ४४०० है।

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति पूना के भांडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में है।

२. विलोक्य विविधा टीका अर्थान्य च गुरोर्मुखात्।
काव्यप्रकाशटीकेयं रच्यते सारदीपिका॥

काव्यप्रकाश-वृत्ति :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने 'काव्यप्रकाश' पर एक वृत्ति १७ वीं सदी में बनाई थी, जिसका थोड़ा सा अंश अभी तक मिला है।

काव्यप्रकाश-खण्डन (काव्यप्रकाश-विवृति) :

महोपाध्याय सिद्धिचन्द्रगणि ने मम्मटरचित 'काव्यप्रकाश' की टीका लिखी है, जिसका नाम उन्होंने ग्रन्थ के प्रारंभ के पद्य ३ में 'काव्यप्रकाश विवृति' बताया है[1] परंतु पद्य ५ में 'खण्डनताण्डवं कुर्मे' और 'तत्राद्यावनुवादपूर्वकं काव्यप्रकाशखण्डनमारभ्यते' ऐसे उल्लेख होने से इस टीका का नाम 'काव्य-प्रकाशखण्डन' ही मालूम पड़ता है। रचना-समय वि० सं० १७१४ के करीब है।

इस टीका में दो स्थलों पर 'अस्मत्कृतबृहट्टीकातोऽवसेय' और 'गुरुनाम्ना बृहट्टीकातः' ऐसे उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि इन्होंने इस खण्डनात्मक टीका के अलावा विस्तृत व्याख्या की भी रचना की थी, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

टीकाकार ने यह रचना आलोचनात्मक दृष्टि से बनाई है। आलोचना भी काव्यप्रकाशगत सब विचारों पर नहीं की गई है परंतु जिन विषयों में टीका-कार का कुछ मतभेद है उन विचारों का इसमें खण्डन करने का प्रयास किया गया है।

काव्य की व्याख्या, काव्य के भेद, रस और अन्य साधारण विषयों के जिन उल्लेखों को टीकाकार ने ठीक नहीं माना उन विषयों में अपने मन्तव्य को व्यक्त करने के लिये उन्होंने प्रस्तुत टीका का निर्माण किया है।[2]

सिद्धिचंद्रगणि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१ कादम्बरी-(उत्तरार्ध) टीका, २ शोभनस्तुति-टीका, ३ वृद्धप्रस्तावोक्ति-रत्नाकर, ४ भानुचन्द्रचरित, ५ भक्तामरस्तोत्र-वृत्ति, ६ तर्कभाषा-टीका, ७ सप्तपदार्थी-टीका, ८ जिनशतक-टीका, ९ वासवदत्ता वृत्ति अथवा व्याख्या-टीका, १० अनेकार्थोपसर्ग-वृत्ति, ११ धातुमञ्जरी, १२ आख्यातवाद-टीका, १३. प्राकृतसुभाषितसंग्रह, १४ सूक्तिरत्नाकर, १५ मङ्गलवाद, १६ सप्तस्मरण-

---

१ शाहेरकब्बरधराधिपमौलिमौलेश्चेतः सरोरुहविलासषडङ्घ्रितुल्यः ।
विद्वच्चमत्कृतकृते बुधसिद्धिचन्द्रः काव्यप्रकाशविवृतिं कुरुतेऽस्य शिष्यः ॥

२ यह ग्रन्थ 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' में छप गया है।

वृत्ति, १७ लेखलिखनपद्धति, १८ संक्षिप्तकादम्बरीकथानक, १९. काव्य-प्रकाश-टीका।

सरस्वतीकण्ठाभरण वृत्ति (पदप्रकाश) :

अनेक ग्रन्थो के निर्माता मालवा के विद्याप्रिय भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक काव्यशास्त्रसबधी ग्रथ का निर्माण वि० स० ११५० के आसपास मे किया है। यह विशालकाय कृति ६४३ कारिकाओं मे मोटे तौर से सूत्रात्मक है। इसमें काव्यादर्श, ध्वन्यालोक इत्यादि ग्रन्थो के १५०० पद्य उदाहरणरूप मे दिये गये है। इसमे पाच परिच्छेद है।

प्रथम परिच्छेद मे काव्य का प्रयोजन, लक्षण और भेद, पद, वाक्य और वाक्यार्थ के सोलह सोलह दोष तथा शब्द के चौबीस गुण निरूपित है।

द्वितीय परिच्छेद में २४ शब्दालकारों का वर्णन है।

तृतीय परिच्छेद मे २४ अर्थालकारों का वर्णन है।

चतुर्थ परिच्छेद मे शब्द और अर्थ के उपमा आदि अलकारो का निरूपण है।

पञ्चम परिच्छेद में रस, भाव, नायक और नायिका, पाच सधियां, चार वृत्तिया वगैरह निरूपित है।

इस 'सरस्वतीकण्ठाभरण' पर भाण्डागारिक पार्श्वचन्द्र के पुत्र आजड ने 'पदप्रकाश' नामक टीका-ग्रथ' की रचना की है। ये आचार्य भद्रेश्वरसूरि को गुरु मानते थे। इन्होने भद्रेश्वरसूरि को बौद्ध तार्किक दिङ्नाग के समान बताया है। इस टीका-ग्रन्थ में प्राकृत भाषा की विशेषता के उदाहरण है तथा व्याकरण के नियमो का उल्लेख है।

विदग्धमुखमण्डन-अवचूर्णि :

बौद्धधर्मी धर्मदास ने वि० स० १३१० के आसपास मे 'विदग्धमुखमडन नामक अलकारशास्त्रसबधी कृति चार परिच्छेदो मे रची है। इसमे प्रहेलिका और चित्रकाव्यसबधी जानकारी भी दी गई है।

इस ग्रन्थ पर जैनाचार्यो ने अनेक टीकाएँ रची है।

१४ वीं शताब्दी मे विद्यमान खरतरगच्छीय आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'विदग्धमुखमडन पर अवचूर्णि रची है।

---

१. इसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भडार में खडित अवस्था में विद्यमान है।

काव्यप्रकाश-वृत्ति :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने 'काव्यप्रकाश' पर एक वृत्ति १७ वीं सदी में बनाई थी, जिसका थोड़ा सा अंश अभी तक मिला है।

काव्यप्रकाश-खण्डन (काव्यप्रकाश-विवृति) :

महोपाध्याय सिद्धिचन्द्रगणि ने मम्मटरचित 'काव्यप्रकाश' की टीका लिखी है, जिसका नाम उन्होंने ग्रन्थ के प्रारंभ के पद्य ३ में 'काव्यप्रकाश विवृति' बताया है[1] परंतु पद्य ५ में 'खण्डनताण्डवं कुर्मः' और 'तत्रादावनुवादपूर्वकं काव्यप्रकाशखण्डनमारभ्यते' ऐसे उल्लेख होने से इस टीका का नाम 'काव्यप्रकाशखण्डन' ही मालूम पड़ता है। रचना-समय वि० सं० १७१४ के करीब है।

इस टीका में दो स्थलों पर 'अस्मत्कृतबृहट्टीकातोऽवसेयं' और 'गुरुनाम्ना बृहट्टीकातः' ऐसे उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि इन्होंने इस खण्डनात्मक टीका के अलावा विस्तृत व्याख्या की भी रचना की थी, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

टीकाकार ने यह रचना आलोचनात्मक दृष्टि से बनाई है। आलोचना भी काव्यप्रकाशगत सब विचारों पर नहीं की गई है परंतु जिन विषयों में टीकाकार का कुछ मतभेद है उन विचारों का इसमें खण्डन करने का प्रयास किया गया है।

काव्य की व्याख्या, काव्य के भेद, रस और अन्य साधारण विषयों के जिन उल्लेखों को टीकाकार ने ठीक नहीं माना उन विषयों में अपने मन्तव्य को व्यक्त करने के लिये उन्होंने प्रस्तुत टीका का निर्माण किया है।[2]

सिद्धिचन्द्रगणि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

१ कादम्बरी-(उत्तरार्ध) टीका, २ शोभनस्तुति-टीका, ३ वृद्धप्रस्तावोक्तिरत्नाकर, ४ भानुचन्द्रचरित, ५ भक्तामरस्तोत्र-वृत्ति, ६ तर्कभाषा-टीका, ७ सप्तपदार्थी टीका, ८ जिनशतक-टीका, ९ वासवदत्ता वृत्ति अथवा व्याख्या-टीका, १० अनेकार्थोपसर्ग-वृत्ति, ११ धातुमञ्जरी, १२ आख्यातवाद-टीका, १३. प्राकृतसुभाषितसंग्रह, १४ सूक्तिरत्नाकर, १५ मङ्गलवाद, १६ सप्तस्मरण-

---

१ शाहेरकब्बरधराधिपमौलिमौलेश्चेतःसरोरुहविलासषडङ्घ्रितुल्यः ।
विद्वच्चमत्कृतकृते बुधसिद्धिचन्द्रः काव्यप्रकाशविवृतिं कुरुतेऽस्य शिष्यः ॥

२ यह ग्रन्थ 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' में छप गया है।

वृत्ति, १७ लेखलिखनपद्धति, १८ सक्षिप्तकादम्बरीकथानक, १९ काव्य-प्रकाश-टीका।

सरस्वतीकण्ठाभरण वृत्ति (पदप्रकाश) :

अनेक ग्रन्थों के निर्माता मालवा के विद्याप्रिय भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक काव्यशास्त्रसबधी ग्रथ का निर्माण वि० स० ११५० के आसपास मे किया है। यह विशालकाय कृति ६४३ कारिकाओ मे मोटे तौर से सग्रहात्मक है। इसमे काव्यादर्श, ध्वन्यालोक इत्यादि ग्रन्थो के १५०० पद्य उदाहरणरूप मे दिये गये हैं। इसमे पाच परिच्छेद है।

प्रथम परिच्छेद मे काव्य का प्रयोजन, लक्षण और भेद, पद, वाक्य और वाक्यार्थ के सोलह सोलह दोप तथा शब्द के चौबीस गुण निरूपित हैं।

द्वितीय परिच्छेद मे २४ शब्दालकारो का वर्णन है।

तृतीय परिच्छेद में २४ अर्थालकारो का वर्णन है।

चतुर्थ परिच्छेद मे शब्द और अर्थ के उपमा आदि अलकारों का निरूपण है।

पञ्चम परिच्छेद मे रस, भाव, नायक और नायिका, पाच सधिया, चार वृत्तिया वगैरह निरूपित हैं।

इस 'सरस्वतीकण्ठाभरण' पर भाण्डागारिक पार्श्वचन्द्र के पुत्र आजड ने 'पदप्रकाश' नामक टीका-ग्रथ[1] की रचना की है। ये आचार्य भद्रेश्वरसूरि को गुरु मानते थे। इन्होंने भद्रेश्वरसूरि को बौद्ध तार्किक दिङ्नाग के समान बताया है। इस टीका-ग्रन्थ में प्राकृत भाषा की विशेषता के उदाहरण हैं तथा व्याकरण के नियमो का उल्लेख है।

विदग्धमुखमण्डन-अवचूर्णि :

बौद्धधर्मी धर्मदास ने वि० स० १३१० के आसपास मे 'विदग्धमुखमडन' नामक अलकारशास्त्रसबधी कृति चार परिच्छेदों मे रची है। इसमे प्रहेलिका और चित्रकाव्यसबधी जानकारी भी दी गई है।

इस ग्रन्थ पर जैनाचार्यो ने अनेक टीकाएँ रची हैं।

१४ वीं शताब्दी मे विद्यमान खरतरगच्छीय आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'विदग्धमुखमडन' पर अवचूर्णि रची है।

---

१ इसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भडार में खडित अब विद्यमान है।

विदग्धमुखमण्डन-बालावबोध :

आचार्य जिनचद्रसूरि (वि स १४८७–१५३०) के शिष्य उपाध्याय मेरुसुन्दर ने 'विदग्धमुखमण्डन' पर जूनी गुजराती मे 'बालावबोध' की १४५४ श्लोक प्रमाण रचना की है। इन्होने षष्टिशतक, वाग्भटालकार, योगशास्त्र इत्यादि ग्रथो पर भी बालावबोध रचे हैं।

अलंकारावचूर्णि :

काव्यशास्त्रविषयक किसी ग्रन्थ पर 'अलकारावचूर्णि' नामक टीका की १२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती है। यह ३५० श्लोको की पाच परिच्छेदात्मक किसी कृति पर १५०० श्लोक परिमाण वृत्ति—अवचूरि है। इसमे मूल कृति के प्रतीक ही दिये गये हैं। मूल कृति कौन सी है, इसका निर्णय नहीं हुआ है। इस अवचूरि के कर्ता कौन हैं, यह भी अज्ञात है। अवचूरि मे एक जगह (१२ वें पत्र मे) 'जिन' का उल्लेख है। इससे तथा 'अवचूरि' नाम से भी यह टीका किसी जैन की कृति होगी, ऐसा अनुमान होता है।

चौथा प्रकरण

छन्द

[illegible]

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ (१५.१)

'अमरकोश' (तृतीय काण्ड) में 'अभिप्रायवशच्छन्द [illegible]' (३.२०)—'छन्द' का अर्थ 'मन की बात' या 'अभिप्राय' किया गया है। उसी में अन्यत्र (३.८८) 'छन्द' शब्द का 'वश' अर्थ बताया गया है। उसी में 'छन्दः पद्येऽभिलाषे च' (३.२३२)—छन्द का अर्थ 'पद्य' और 'अभिलाष' भी किया गया है।

इससे 'छन्द' शब्द का प्रयोग पद्य के अर्थ में भी अति प्राचीन मालूम पड़ता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दस्—इन छः वेदांगों में छन्द शास्त्र को गिनाया गया है।

'छन्द' शब्द का पर्यायवाची 'वृत्त' शब्द है परन्तु यह शब्द छन्द की तरह व्यापक नहीं है।

'छन्दःशास्त्र' का अर्थ है अक्षर या मात्राओं के नियम से उद्भूत विविध वृत्तों की शास्त्रीय विचारणा। सामान्यतया हमारे देश में सर्वप्रथम पद्यात्मक कृति की रचना हुई इसलिये प्राचीनतम 'ऋग्वेद' आदि के सूक्त छन्द में ही रचित हैं। वैसे जैनों के आगमग्रंथ भी अगत छन्द मे रचित हैं। जैनाचार्यों ने छन्द शास्त्र के अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उन ग्रन्थों के विषय मे यहाँ हम विचार करेंगे।

रत्नमञ्जूषा :

संस्कृत में रचित 'रत्नमञ्जूषा'[1] नामक छन्द ग्रन्थ के कर्ता का नाम अज्ञात है। इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में टीकाकार ने 'इति रत्नमञ्जूषायां छन्दो-

1 यह ग्रन्थ 'सभाष्य-रत्नमञ्जूषा' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९४९ में प्रो० वेलणकर द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

विचित्या भाष्यत ' ऐसा निर्देश किया है अतएव इसका नाम 'छन्दोविचिति' भी है, यह मालूम होता है।

सूत्रबद्ध इस ग्रथ मे छोटे-छोटे आठ अध्याय है और कुल मिलाकर २३० सूत्र है। यह ग्रथ मुख्यत. वर्णवृत्त-विषयक है। इसमें वैदिक छन्दों का निरूपण नहीं किया गया है। इसमें दिये गये कई छन्दों के नाम आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' के सिवाय दूसरे ग्रथो मे उपलब्ध नहीं होते। इस ग्रन्थ के उदाहरणों मे जैनत्व का असर देखने मे आता है और इसके टीकाकार जैन है अत. मूलकार के भी जैन होने की सम्भावना की जारही है।

प्रथम अध्याय मे विविध सज्ञाओ का निरूपण है। 'छन्द.शास्त्र' मे पिंगल ने गणों के लिये म् , य् , र् , स् , त् , ज् , भ् , न्—ये आठ चिह्न बनाये है, जबकि इस ग्रन्थ मे उनके बजाय क्रमश. क् , च् , त् , प् , श् , ष् , स् , ह् —ये आठ व्यञ्जन और आ, ए, औ, ई, अ, उ, ऋ, इ—ये आठ स्वर—इस तरह दो प्रकार की सज्ञाओं की योजना की गई है। फिर, दो दीर्घ वर्णों के लिए य् , एक ह्रस्व और एक दीर्घ के लिये र् , एक दीर्घ और एक ह्रस्व के लिये ल् , दो ह्रस्व वर्णों के लिये व् , एक दीर्घ वर्ण के लिये म् और एक ह्रस्व वर्ण के लिये न् सज्ञाओ का प्रयोग किया गया है। इसमे १, २, ३, ४ अकों के लिये द, दा, दि, दी, इत्यादि का, कहीं-कहीं ण् के प्रक्षेप के साथ, प्रयोग किया है, जैसे द—दण् = १, दा—दाण् = २।

दूसरे अध्याय मे आर्या, गीति, आर्यागीति, गल्तिक और उपचित्रक वर्ग के अर्धसमवृत्तों के लक्षण दिये गये है।

तीसरे अध्याय मे वैतालीय, मात्रावृत्तो के मात्रासमक वर्ग, गीत्यार्या, विशिखा, कुलिक, नृत्यगति और नटचरण के लक्षण बताये है। आचार्य हेमचन्द्र के सिवाय नृत्यगति और नटचरण का निर्देश किसी छन्द-शास्त्री ने नहीं किया है।

चतुर्थ अध्याय मे विषमवृत्त के १ उद्गता, २ दामावारा याने पदचतुरूर्ध्व और ३ अनुष्टुभ्वक्त्र का विचार किया है।

पिंगल आदि छन्द-शास्त्री तीन प्रकार के भेदों का अनुष्टुभ्वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय ही निर्देश करते है, जबकि प्रस्तुत ग्रन्थकार विषमवृत्तों का प्रारम्भ करते ही उसमे अनुष्टुभ्वक्त्र का अन्तर्भाव करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्र मे पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात है।

पञ्चम-षष्ठ सप्तम अध्यायों मे वर्णवृत्तो का निरूपण है। इनका छन्द अक्षर-

प्रशस्ति में कहा गया है कि बुद्धिसागरसूरि ने उत्तम व्याकरण और 'छन्दःशास्त्र' की रचना की।

इन्होंने वि० स० १०८० मे 'पञ्चग्रन्थी' नामक सस्कृत-व्याकरण की रचना की। यह ग्रथ जैसलमेर के ग्रथभडार में है, परतु उनके रचे हुए 'छन्दःशास्त्र' का अभी तक पता नहीं लगा। इसलिये इसके बारे में विशेष कहा नहीं जा सकता।

सवत् ११४० मे वर्धमानसूरि-रचित 'मनोरमाकहा' की प्रशस्ति से मालूम होता है कि जिनेश्वरसूरि और उनके गुरुभाई बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण, छन्द, काव्य, निघण्टु, नाटक, कथा, प्रबन्ध इत्यादिविषयक ग्रथों की रचना की है, परन्तु उनके रचे हुए काव्य, नाटक, प्रबन्ध आदि के विषय मे अभी तक कुछ जानने मे नहीं आया है।

छन्दोनुशासन :

'छन्दोनुशासन'[1] ग्रथ के रचयिता जयकीर्ति कन्नड प्रदेशनिवासी दिगबर जैनाचार्य थे। इन्होंने अपने ग्रथ में सन् ९५० मे होनेवाले कवि असग का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः ये सन् १००० के आसपास मे हुए, ऐसा निर्णय किया जा सकता है।

सस्कृतभाषा मे निबद्ध जयकीर्ति का 'छन्दोनुशासन' पिङ्गल और जयदेव की परपरा के अनुसार आठ अध्यायों मे विभक्त है। इस रचना मे ग्रन्थकार ने जनाश्रय, जयदेव, पिंगल, पादपूज्य (पूज्यपाद), माडव्य और सैतव की छदोविषयक कृतियों का उपयोग किया है। जयकीर्ति के समय मे वैदिक छदो का प्रभाव प्राय समाप्त हो चुका था। इसलिये तथा एक जैन होने के नाते भी उन्होंने अपने ग्रथ मे वैदिक छदों की चर्चा नहीं की।

यह समस्त ग्रथ पद्यबद्ध है। ग्रथकार ने सामान्य विवेचन के लिये अनुष्टुप्, आर्या और स्कन्धक (आर्यागीति)—इन तीन छदों का आधार लिया है, किन्तु छदों के लक्षण पूर्णत. या अशतः उन्हीं छदों में दिये गये हैं जिनके वे लक्षण हैं। अलग से उदाहरण नहीं दिये गये हैं। इस प्रकार इस ग्रथ मे लक्षण-उदाहरणमय छदों का विवेचन किया गया है।

---

१ यह 'जयदामन' नामक सग्रह-ग्रन्थ में छपा है।

प्रशस्ति में कहा गया है कि बुद्धिसागरसूरि ने उत्तम व्याकरण और 'छन्द:शास्त्र' की रचना की।

इन्होंने वि० स० १०८० मे 'पञ्चग्रन्थी' नामक सस्कृत-व्याकरण की रचना की। यह ग्रथ जैसलमेर के ग्रथभडार में है, परतु उनके रचे हुए 'छन्द शास्त्र' का अभी तक पता नहीं लगा। इसलिये इसके बारे मे विशेष कहा नहीं जा सकता।

सवत् ११४० मे वर्धमानसूरि-रचित 'मनोरमाकहा' की प्रशस्ति मे मालूम होता है कि जिनेश्वरसूरि और उनके गुरुभाई बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण, छन्द, काव्य, निघण्टु, नाटक, कथा, प्रबन्ध इत्यादिविषयक ग्रथो की रचना की है, परन्तु उनके रचे हुए काव्य, नाटक, प्रबन्ध आदि के विषय मे अभी तक कुछ जानने मे नहीं आया है।

छन्दोनुशासन :

'छन्दोनुशासन'' ग्रथ के रचयिता जयकीर्ति कन्नड प्रदेशनिवासी दिगबर जैनाचार्य थे। इन्होंने अपने ग्रथ मे सन् ९५० मे होनेवाले कवि असग का स्पष्ट उल्लेख किया है। अत. ये सन् १००० के आसपास मे हुए, ऐसा निर्णय किया जा सकता है।

सस्कृतभाषा मे निबद्ध जयकीर्ति का 'छन्दोनुशासन' पिङ्गल और जयदेव की परपरा के अनुसार आठ अध्यायो में विभक्त है। इस रचना मे ग्रन्थकार ने जनाश्रय, जयदेव, पिंगल, पादपूज्य (पूज्यपाद), माडव्य और सैतव की छदोविषयक कृतियों का उपयोग किया है। जयकीर्ति के समय में वैदिक छदो का प्रभाव प्राय समाप्त हो चुका था। इसलिये तथा एक जैन होने के नाते भी उन्होंने अपने ग्रथ मे वैदिक छदों की चर्चा नहीं की।

यह समस्त ग्रथ पद्यबद्ध है। ग्रथकार ने सामान्य विवेचन के लिये अनुष्टुप्, आर्या और स्कन्धक (आर्यागीति)—इन तीन छदों का आधार लिया है, किन्तु छदो के लक्षण पूर्णत या अशत उन्हीं छदों में दिये गये है जिनके वे लक्षण हैं। अलग मे उदाहरण नहीं दिये गये है। इस प्रकार इस ग्रथ मे लक्षण-उदाहरणमय छदों का विवेचन किया गया है।

---

१ यह 'जयदामन्' नामक सग्रह-ग्रन्थ में छपा है।

[illegible] 'छन्दसार' नाम दिया गया है। [illegible] किया गया है।

[illegible]

[illegible] है जो [illegible] नहीं है। हाँ, [illegible] किया है, फिर भी [illegible] है।

छन्दःशेखर :

'छन्दःशेखर' के कर्ता का नाम है राजशेखर। ये ठक्कुर दुद्दक और नागदेवी के पुत्र थे और ठक्कुर यश के पुत्र लाहट के पौत्र थे।

कहा जाता है कि यह 'छन्दःशेखर' ग्रन्थ भोजदेव को प्रिय था।

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति वि० सं० ११७९ की मिलती है।

हेमचन्द्राचार्य ने इस ग्रन्थ का अपने 'छन्दोऽनुशासन' में उपयोग किया है।

कहा जाता है कि जयशेखरसूरि नामक विद्वान् ने भी 'छन्दःशेखर' नामक छन्दोग्रंथ की रचना की थी लेकिन वह प्राप्य नहीं है।

छन्दोनुशासन :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'शब्दानुशासन' और 'काव्यानुशासन' की रचना करने के बाद 'छन्दोऽनुशासन' की रचना की है।[1]

यह 'छन्दोऽनुशासन' आठ अध्यायों में विभक्त है और इसमें कुल मिलाकर ७६४ सूत्र हैं।

इसकी स्वोपज्ञ वृत्ति में सूचित किया गया है कि इसमें वैदिक छन्दों की चर्चा नहीं की गई है।

---

१ शब्दानुशासनविरचनानन्तरं तत्फलभूतं काव्यमनुशिष्य तदङ्गभूतं 'छन्दोऽनुशासनं' चारिप्समानः शास्त्रकारः इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारपूर्वकमुपक्रमते।

प्रथम अध्याय में छन्द-विषयक परिभाषा याने वर्णगण, मात्रागण, वृत्त, समवृत्त, विषमवृत्त, अर्धसमवृत्त, पाद और यति का निरूपण है।

दूसरे अध्याय मे समवृत्त छन्दों के प्रकार, गणो की योजना और अन्त मे दण्डक के प्रकार बताये गये हैं। इसमें ४११ छन्दों के लक्षण दिये है।

तीसरे अध्याय मे अर्धसम, विषम, वैतालीय, मात्रासमक आदि ७२ छन्दो के लक्षण दिये हैं।

चौथे अध्याय मे प्राकृत छन्दों के आर्या, गल्तिक, खजक और शीर्षक नाम से चार विभाग किये गए हैं। इसमें प्राकृत के सभी मात्रिक छन्दों की विवेचना है।

पॉचवें अध्याय में अपभ्रंश के उत्साह, रासक, रड्डा, रासावलय, धवलमगल आदि छन्दों के लक्षण दिये है।

छठे अध्याय में ध्रुवा, ध्रुवक याने घत्ता का लक्षण है और षट्पदी तथा चतुष्पदी के विविध प्रकारों के बारे मे चर्चा है।

सातवें अध्याय मे अपभ्रश साहित्य में प्रयुक्त द्विपदी की विवेचना है।

आठवें अध्याय में प्रस्तार आदि विषयक चर्चा है।

इस विषयानुक्रम से स्पष्ट होता है कि यह ग्रथ सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के विविध छन्दों पर सर्वाङ्गपूर्ण प्रकाश डालता है। विशेषता की दृष्टि से देखें तो वैतालीय और मात्रासमक के कुछ नये भेद, जिनका निर्देश पिंगल, जयदेव, विरहाक, जयकीर्ति आदि पूर्ववर्ती आचार्यों ने नहीं किया था, हेमचन्द्र-सूरि ने प्रस्तुत किये, जैसे—दक्षिणातिका, पश्चिमातिका, उपहासिनी, नटचरण, नृत्तगति। गल्तिक, खजक और शीर्षक के क्रमश. जो भेद बताये गये है वे भी प्राय. नवीन हैं।

कुल सात-आठ सौ छन्दों पर विचार किया है। मात्रिक छन्दो के लक्षण दर्शानेवाले हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' का महत्त्व नवीन मात्रिक छन्दों के उल्लेख की दृष्टि से बहुत अधिक है। यह कह सकते हैं कि छन्द के विषय में ऐसी सुगम और सागोपाग अन्य कृति सुलभ नहीं है।[१]

---

१ यह ग्रन्थ स्वोपज्ञवृत्ति के साथ सिंघी जैन ग्रथमाला, बम्बई से प्रो० वेलणकर द्वारा सपादित होकर नई आवृत्ति के रूप में प्रकाशित हुआ है।

उपाध्याय यशोविजयगणि ने इस 'छन्दोऽनुशासन' मूल पर या उसकी स्वोपज्ञ वृत्ति पर वृत्ति की रचना की है, ऐसा माना जाता है। यह वृत्ति उपलब्ध नहीं है।

वर्धमानसूरि ने भी इस 'छन्दोऽनुशासन' पर वृत्ति रची है, ऐसा एक उल्लेख मिलता है। यह वृत्ति भी अनुपलब्ध है।

आचार्य विजयलावण्यसूरि ने भी इस 'छन्दोऽनुशासन' पर एक वृत्ति की रचना की है जो लावण्यसूरि जैन ग्रन्थमाला, बोटाद से प्रकाशित हुई है।

छन्दोरत्नावली :

संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना करनेवाले 'वेणीकृपाण' विरुदधारी आचार्य अमरचन्द्रसूरि वायडगच्छीय आचार्य जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। वे गुर्जरनरेश विशलदेव (वि० सं० १२४३ से १२६१) की राजसभा के सम्मान्य विद्वद्रत्न थे।

इन्हीं अमरचन्द्रसूरि ने संस्कृत में ७०० श्लोक प्रमाण 'छन्दोरत्नावली' ग्रंथ की रचना पिंगल आदि पूर्वाचार्यों के छन्दग्रंथों के आधार पर की है। इसमें नौ अध्याय हैं जिनमें संज्ञा, समवृत्त, अर्धसमवृत्त, विषमवृत्त, मात्रावृत्त, प्रस्तार आदि, प्राकृतछन्द, उत्साह आदि, षट्पदी, चतुष्पदी, द्विपदी आदि के लक्षण उदाहरणपूर्वक बताये गये है। इसमें कई प्राकृत भाषा के भी उदाहरण हैं। इस ग्रंथ का उल्लेख खुद ग्रंथकार ने अपनी 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में किया है।

यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है।

छन्दोनुशासन :

महाकवि वाग्भट ने अपने 'काव्यानुशासन' की तरह 'छन्दोऽनुशासन' की भी रचना[1] १४ वीं शताब्दी में की है। वे मेवाड़ देश में प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के लघुबन्धु थे।

संस्कृत में निबद्ध इस ग्रन्थ में पांच अध्याय हैं। प्रथम संज्ञासम्बन्धी, दूसरा समवृत्त, तीसरा अर्धसमवृत्त, चतुर्थ मात्रासमक और पञ्चम मात्राछन्दसम्बन्धी है। इसमें छन्दविषयक अति उपयोगी चर्चा है।

---

१ श्रीमन्नेमिकुमारसूनुरखिलप्रज्ञालचूडामणि-
श्छन्दःशास्त्रमिदं चकार सुधियामानन्दकृत् वाग्भटः ॥

है कि उनका जन्म मारवाड़ मे हुआ होगा। उनके गृहस्थ जीवन के सबध मे कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। 'पिङ्गलशिरोमणि' ग्रन्थ की रचना का समय ग्रन्थ की प्रशस्ति में वि० स० १५७५ बताया गया है।

'पिङ्गलशिरोमणि' मे छन्दों के सिवाय कोश और अलकारो का भी वर्णन है। आठ अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ मे अधोलिखित विषय वर्गीकृत है

१. वर्णावर्णछन्दसज्ञाकथन, २–३ छन्दोनिरूपण, ४ मात्राप्रकरण, ५ वर्णप्रस्तार—उद्दिष्ट-नष्ट-निरूपताका-मर्कटी आदि षोडशलक्षण, ६ अलङ्कार-वर्णन, ७ डिङ्गलनाममाला और ८ गीतप्रकरण।

इस ग्रन्थ से मालूम पड़ता है कि कवि कुशललाभ का डिंगलभाषा पर पूर्ण अधिकार था।

कवि के अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं

१ ढोला-मारूरी चौपाई (स० १६१७), २ माधवानलकामकन्दला चोपाई (स० १६१७), ३ तेजपालरास (स० १६२४), ४ अगडदत्त-चौपाई (स० १६२५), ५ जिनपालित-जिनरक्षितसधि–गाथा ८९ (स० १६२१), ६. स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवन, ७. गौडीछन्द, ८ नवकारछन्द, ९ भवानी-छन्द, १० पूज्यवाहणगीत आदि।

आर्यासंख्या–उद्दिष्ट–नष्टवर्तनविधि :

उपाध्याय समयसुन्दर ने छन्द-विषयक 'आर्यासख्या-उद्दिष्ट-नष्टवर्तनविधि' नामक ग्रन्थ की रचना की है।[१] इसमें आर्या छन्द की सख्या और उद्दिष्ट-नष्ट विषयों की चर्चा है। इसका प्रारभ इस प्रकार है .

जगणविहीना विषमे चत्वारः पञ्चयुजि चतुर्मात्राः।
द्वौ षष्ठाविति चगणास्तद्घातात् प्रथमदलसंख्या ॥

१७ वीं शताब्दी में विद्यमान उपाध्याय समयसुन्दर ने सस्कृत और जूनी गुजराती मे अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

---

१८ वीं शताब्दी में विद्यमान विहारी मुनि ने अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपि की है।[1] इनके विषय में और जानकारी नहीं मिलती। प्रस्तारविमलेन्दु की प्रति के अंत में इस प्रकार उल्लेख है . विहारिमुनिना चक्रे। इति प्रस्तारविमलेन्दु समाप्त.। स० १९७४ मिति अश्विन् वदि १४ चतुर्दशी लिपीकृत देवेन्द्र-ऋषिणा वैरोवालमध्ये केपरऋषिनिमत्तार्थम् ॥

छन्दोद्वात्रिंशिका :

शीलशेखरगणि ने संस्कृत में ३२ पद्यों में छन्दोद्वात्रिंशिका नामक एक छोटी सी परंतु उपयोगी रचना की है।[2] इसमें महत्त्व के छन्दों के लक्षण बताये गये हैं। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है विद्युन्माला गौ गौ प्रमाणी स्याज्जरौ लगौ। अन्त में इस प्रकार उल्लेख है छन्दोद्वात्रिंशिका समाप्ता। कृति पण्डितपुरन्दराणां शीलशेखरगणिविबुधपुङ्गवानामिति ॥

शीलशेखरगणि कब हुए और उनकी दूसरी रचनाएँ कौन-सी थीं, यह अभी ज्ञात नहीं है।

जयदेवछन्दस् :

छन्दःशास्त्र के 'जयदेवछन्दस' नामक ग्रंथ के कर्ता जयदेव नामक विद्वान् थे। उन्होंने अपने नाम से ही इस ग्रन्थ का नाम 'जयदेवछन्दस्' रखा है। ग्रंथ के मंगलाचरण में अपने इष्टदेव वर्धमान को नमस्कार करने से प्रतीत होता है कि वे जैन थे। इतना ही नहीं, वे श्वेतांबर जैनाचार्य थे, ऐसा हलायुध[3] और केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकार' के टीकाकार सुल्हण[4] (वि० सं० १२४६) के जयदेव को 'श्वेतपट' विशेषण से उल्लिखित करने से जान पड़ता है।

जयदेव कब हुए, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, फिर भी

---

१ ऐसी बहुत-सी प्रतियाँ अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्या-मंदिर के संग्रह में हैं। १५ पत्रों की प्रस्तारविमलेन्दु की एक-प्रति वि० सं० १९७४ में लिखी हुई मिली है।

२ इस ग्रन्थ की एक पत्र की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के हस्तलिखित संग्रह में है। प्रति १७ वीं शताब्दी में लिखी गई मालूम होती है।

३ 'अन्यदतो हि वितान' श्वेतपटेन यदुक्तम्।

४. 'अन्यदतो हि वितान' शुद्धश्वेतपटजयदेवेन यदुक्तम्।

वृत्तजातिसमुच्चय :

'वृत्तजातिसमुच्चय' नामक छन्दोग्रन्थ को कई विद्वान् 'कविसिट', 'कृत-सिद्ध' और 'छन्दोविच्चिति' नाम से भी पहिचानते हैं। पद्यमय प्राकृत भाषा मे निबद्ध इस कृति[1] के कर्ता का नाम है विरहाक या विरहलाछन।

कर्ता ने सद्भावलाछन, गन्धहस्ती, अवलेपचिह्न और पिंगल नामक विद्वानो को नमस्कार किया है। विरहाक कब हुए, यह निश्चित नहीं है। ये जैन थे या नहीं, यह भी ज्ञात नहीं है।

'काव्यादर्श' मे 'छन्दोविच्चिति' का उल्लेख है, परन्तु वह प्रस्तुत ग्रन्थ है या इससे भिन्न, यह कहना मुश्किल है। सिद्धहेम-व्याकरण (८ ३. १३४) में दिया हुआ 'इअराइ' से शुरू होनेवाला पद्य इस ग्रन्थ (१ १३) में पूर्वार्धरूप में दिया हुआ है। सिद्धहेम-व्याकरण (८ २ ४०) की वृत्ति में दिया हुआ 'विद्धकइनिरूविअ' पद्य भी इस ग्रन्थ (२ ८) से लिया गया होगा क्योंकि इसके पूर्वार्ध में यह शब्द-प्रयोग है। इससे इस छदोग्रन्थ की प्रामाणिकता का परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थ मे मात्रावृत्त और वर्णवृत्त की चर्चा है। यह छ. नियमो मे विभक्त है। इनमें से पाचवा नियम, जिसमे सस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त छन्दों के लक्षण दिये गये हैं, सस्कृत भाषा में है, बाकी के पाच नियम प्राकृत मे निबद्ध हैं।

छठे नियम में श्लोक ५२-५३ में एक कोष्ठक दिया गया है, जो इस प्रकार है :[2]

४ अगुल = १ राम
३ राम = १ वितस्ति
२ वितस्ति = १ हाथ
२ हाथ = १ धनुर्धर
२००० धनुर्धर = १ कोश
८ कोश = १ योजन

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति वि० स० ११९२ की मिलती है।
२ यह ग्रंथ Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society में छप गया है।

[illegible] :

[illegible] की रचना की है। [illegible] और [illegible] है।

गाथालक्षण :

'गाहा लक्खण' के प्रथम पद्य में [illegible] और उसके कर्ता का उल्लेख है, पद्य ९४ और ९३ में भी ग्रन्थ का 'गाहा लक्खण' नाम निर्दिष्ट है। इससे नंदि[illegible] 'गाथालक्षण' के निर्माता थे यह स्पष्ट है।

नंदिषड्ढ (नंदिताढ्य) कब हुए, यह उनकी अन्य कृतियों और प्रमाणों के अभाव में कहा नहीं जा सकता। सम्भवतः वे हेमचन्द्राचार्य से पूर्व हुए थे। हो सकता है कि वे विरहांक के समकालीन या उनसे भी पूर्ववर्ती हों।

नंदिषड्ढ ने मंगलाचरण में नेमिनाथ को वंदन किया है। पद्य ९५ में मुनिपति वीर की, ६८, ६९ में शांतिनाथ की, ७०, ७१ में पार्श्वनाथ की, ५७ में ब्राह्मीलिपि की, ६७ में जैनधर्म की, २१, २२, २५ में जिनवाणी की, २३ में जिनशासन की व ३७ में जिनेश्वर की स्तुति की है। पद्य ६२ में मेरुशिखर पर ३२ इन्द्रों ने वीर का जन्माभिषेक किया, यह निर्देश है। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बर जैन थे।

यह ग्रंथ मुख्यतया गाथाछंद में सनद्ध है, ऐसा इसके नाम से ही प्रकट है। प्राकृत के इस प्राचीनतम गाथाछन्द का जैन तथा बौद्ध आगम-ग्रन्थों में व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है। सम्भवतः इसी कारण नन्दिताढ्य ने गाथा-छन्द को एक लक्षण-ग्रन्थ का विषय बनाया।

'गाथा-लक्षण' में ९६ पद्य है, जो अधिकांशतः गाथा-निबद्ध हैं। इनमें से ४७ पद्यों में गाथा के विविध भेदों के लक्षण हैं तथा ४९ पद्य उदाहरणों के हैं। पद्य ६ से १६ तक मुख्य गाथाछन्द का विवेचन है। नन्दिताढ्य ने 'शर' शब्द को चतुर्मात्रा के अर्थ में लिया है, जबकि विरहांक ने 'वृत्तजातिसमुच्चय' में इसे पञ्चकल का द्योतक माना है। यह एक विचित्र और असामान्य बात प्रतीत होती है।

पद्य १७ से २० में गाथा के मुख्य भेद पथ्या, विपुला और चपला का वर्णन तथा पद्य २१ से २५ तक इनके उदाहरण हैं। पद्य २६ से ३० में गीति, उद्गीति, उपगीति और संकीर्णगाथा उदाहृत हैं। पद्य ३१ में नन्दिताढ्य ने

अवहट्ठ (अपभ्रंश) का तिरस्कार करते हुए अपने भाषासम्बन्धी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। पद्य ३२ से ३७ तक गाथा के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों का उल्लेख है। ब्राह्मण मे गाथा के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनो मे गुरुवर्णों का विधान है। क्षत्रिय मे पूर्वार्ध में सभी गुरुवर्ण और उत्तरार्ध मे सभी लघुवर्ण निर्दिष्ट हैं। वैश्य में इससे उल्टा होता है और शूद्र मे दोनों पादो में सभी लघुवर्ण आते है।

पद्य ३८–३९ मे पूर्वोक्त गाथा-भेदो को दुहराया गया है। पद्य ४० से ४४ तक गाथा में प्रयुक्त लघु-गुरुवर्णों की सख्या के अनुसार गाथा के २६ भेदों का कथन है।

पद्य ४५–४६ में लघु-गुरु जानने की रीति, पद्य ४७ में कुल मात्रासख्या, पद्य ४८ से ५१ मे प्रस्तारसख्या, पद्य ५२ में अन्य छन्दों की प्रस्तारसख्या, पद्य ५३ से ६२ तक गाथासम्बन्धी अन्य गणित का विचार है। पद्य ६३ से ६५ में गाथा के ६ भेदो के लक्षण तथा पद्य ६६ से ६९ मे उनके उदाहरण दिये गये हैं। पद्य ७२ से ७५ तक गाथाविचार है।

यह ग्रन्थ यहाँ (७५ पद्य तक) पूर्ण हो जाना चाहिये था। पद्य ३१ मे कर्ता के अवहट्ठ के प्रति तिरस्कार प्रकट करने पर भी इस ग्रन्थ में पद्य ७६ से ९६ तक अपभ्रंश-छन्दसम्बन्धी विचार दिये गये हैं, इसलिये ये पद्य परवर्ती क्षेपक मालूम पड़ते हैं। प्रो० वेलणकर ने भी यही मत प्रकट किया है।

पद्य ७६–९६ में अपभ्रंश के कुछ छन्दों के लक्षण और उदाहरण इस प्रकार बताये गये हैं: पद्य ७६–७७ में पद्धति, ७८–७९ में मदनावतार या चन्द्रानन, ८०–८१ में द्विपदी, ८२–८३ में वस्तुक या सार्धछन्दस्, ८४ से ९४ में दूहा, उसके भेद, उदाहरण और रूपान्तर और ९५–९६ में श्लोक।

गाथा-लक्षण के सभी पद्य नदिताढ्य के रचे हुए हों ऐसा मालूम नहीं होता। इसका चतुर्थ पद्य 'नाट्यशास्त्र' (अ० २७) में कुछ पाठभेदपूर्वक मिलता है। १५ वा पद्य 'सूयगड' की चूर्णि (पत्र २०४) में कुछ पाठभेदपूर्वक उपलब्ध होता है।

इस 'गाथालक्षण' के टीकाकार मुनि रत्नचन्द्र ने सूचित किया है कि ५७ वा पद्य 'रोहिणी-चरित्र' से, ५९ वा और ६० वा पद्य 'पुष्पदन्तचरित्र' से और ६१ वा पद्य 'गाथासहस्रपयालंकार' से लिया गया है।[1]

---

१. यह ग्रन्थ भाडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मदिर त्रैमासिक, पु० १४, पृ० १-३८ में प्रो० वेलणकर ने सपादित कर प्रकाशित किया है।

गाथालक्षण-वृत्ति :

'गाथालक्षण' पर [illegible] रत्नचन्द्र मुनि ने वृत्ति की रचना की है। [illegible] इस प्रकार [illegible] है : [illegible] वृत्ति श्री [illegible]

माण्डव्यपुरगच्छीयदेवानन्दमुनेर्गिरा ।
टीकेयं रत्नचन्द्रेण नन्दिताढ्यस्य निर्मिता ॥

१०८ पद्यों [illegible] देवानन्दाचार्य, जो माण्डव्यपुरगच्छ के थे, उनकी आज्ञा से उन्हीं के शिष्य रत्नचन्द्र ने नन्दिताढ्य के इस गाथा लक्षण की वृत्ति रची है।

इस वृत्ति में गाथाओं [illegible] प्रमुख [illegible] भिन्न भिन्न ग्रंथों से उद्धृत किये गये हैं ऐसा [illegible] लगता है। टीका की रचना [illegible] है।

कविदर्पण :

प्राकृत भाषा में ग्रथित इस महत्त्वपूर्ण छन्द कृति के कर्ता का नाम अज्ञात है। वे जैन विद्वान् थे, [illegible] जैन ग्रंथकारों के नाम और जैन परिभाषा आदि देखते हुए अनुमान होता है। ग्रंथकार आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' से परिचित हैं।

'कविदर्पण' में सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, समुद्रसूरि, भीमदेव, तिलक सूरि, शाकम्भरीराज, यशोघोषसूरि और सूरप्रभसूरि के नाम निर्दिष्ट हैं। ये सभी व्यक्ति १२-१३ वीं शती में विद्यमान थे। इस ग्रंथ में जिनचंद्रसूरि, हेमचन्द्र सूरि, सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और (रत्नावली के कर्ता) हर्षदेव की कृतियों से अवतरण दिये गये हैं।

छः उद्देशात्मक इस ग्रंथ में प्राकृत के २१ सम, १५ अर्धसम और १३ संयुक्त छंद बताये गये हैं। ग्रंथ में ६९ उदाहरण हैं जो स्वयं ग्रन्थकार ने ही रचे हों ऐसा मालूम होता है। इसमें सभी प्राकृत छंदों की चर्चा नहीं है। अपने समय में प्रचलित महत्त्वपूर्ण छंद चुनने में आये हैं। छंदों के लक्षणनिर्देश और वर्गीकरण द्वारा कविदर्पणकार की मौलिक दृष्टि का यथेष्ट परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ में छंदों के लक्षण और उदाहरण अलग-अलग दिये गये हैं।[1]

---

[1] यह ग्रन्थ वृत्तिसहित प्रो० वेलणकर ने संपादित कर पूना के भाडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मंदिर के त्रैमासिक (पु० १६, पृ० ४४-८९, पु० १७, पृ० ३७-६० और १७७-१८४) में प्रकाशित किया है।

कविदर्पण-वृत्ति :

'कविदर्पण' पर किसी विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है, जिसका नाम भी अज्ञात है। वृत्ति मे 'छन्दःकन्दली' नामक प्राकृत छन्दोग्रन्थ के लक्षण दिये गये हैं। वृत्ति में जो ५७ उदाहरण है वे अन्यकर्तृक हैं। इसमें सूर, पिंगल और त्रिलोचनदास—इन विद्वानों की सस्कृत और स्वयभू, पादलिप्तसूरि और मनोरथ—इन विद्वानो की प्राकृत कृतियो से अवतरण दिये गये है। रत्नसूरि, सिद्धराज जयसिंह, धर्मसूरि और कुमारपाल के नामों का उल्लेख है। इन नामो को देखते हुए वृत्तिकार भी जैन प्रतीत होते है।

छन्दःकोश :

'छन्द कोश' के रचयिता रत्नशेखरसूरि हैं, जो १५ वीं शताब्दी मे हुए। ये बृहद्गच्छीय वज्रसेनसूरि (बाद मे रूपातरित नागपुरीय तपागच्छ के हेमतिलकसूरि) के शिष्य थे।

प्राकृत भाषा में रचित इस 'छन्दःकोश'[1] मे कुल ७४ पद्य हैं। पद्य-सख्या ५ से ५० तक (४६ पद्य) अपभ्रश भाषा मे रचित हैं। प्राकृत छदों मे से कई प्रसिद्ध छदों के लक्षण लक्ष्य-लक्षणयुक्त और गण-मात्रादिपूर्वक दिये गये हैं। इसमें अल्हु (अर्जुन) और गुल्हु (गोसल) नामक लक्षणकारों से उद्धरण दिये हैं।

छन्दःकोश-वृत्ति :

इस 'छन्द'कोश' ग्रथ पर आचार्य रत्नशेखरसूरि के सतानीय भट्टारक राजरत्नसूरि और उनके शिष्य चन्द्रकीर्तिसूरि ने १७ वीं शताब्दी मे वृत्ति की रचना की है।

छन्दःकोश-बालावबोध :

'छन्द कोश' पर आचार्य मानकीर्ति के शिष्य अमरकीर्तिसूरि ने गुजराती भाषा में 'बालावबोध' की रचना की है।[2]

---

१ इसका प्रकाशन डा० शुब्रिंग ने (Z D M G, Vol 75, pp 97 ff) सन् १९२२ मे किया था। फिर तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रो० एच० डी० वेलणकर ने इसे सपादित कर बबई विश्वविद्यालय पत्रिका में सन् १९३३ मे प्रकाशित किया था।

२ इसकी एक हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर मे है। प्रति १८ वीं शताब्दी में लिखी गई मालूम पडती है।

[illegible]

[illegible]
[illegible]

छन्दःकन्दली :

[illegible]

यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

छन्दस्तत्त्व :

अञ्चलगच्छीय मुनि धर्मनन्दनगणि ने 'छन्दस्तत्त्व' नामक छन्दविषयक ग्रन्थ की रचना की है।[1]

इन ग्रंथो के अतिरिक्त शार्ङ्गधरगणिविरचित छन्दःशास्त्र, अज्ञातकर्तृक छन्दोऽलङ्कार जिस पर किसी अज्ञातनामा आचार्य ने टिप्पण लिखा है, मुनि अजितसेनरचित छन्दःशास्त्र, वृत्तवाद और छन्दःप्रकाश—ये तीन ग्रंथ, आशाधरकृत वृत्तप्रकाश, चन्द्रकीर्तिकृत छन्दःकोश (प्राकृत) और गाथारत्नाकर, छन्दोरूपक, सगीतसदर्पिगल इत्यादि नाम मिलते है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो छन्दःशास्त्र मे जैनाचार्यों का योगदान कोई कम नहीं है। इतना ही नहीं, इन आचार्यों ने जैनेतर लेखकों के छन्दशास्त्र के ग्रन्थों पर टीकाएं भी लिखी है।

जैनेतर ग्रन्थो पर जैन विद्वानो के टीकाग्रन्थ :

श्रुतबोध—कई विद्वान् वररुचि को 'श्रुतबोध' के कर्ता मानते है और कई कालिदास को। यह शीघ्र ही कठस्थ हो सके ऐसी सरल और उपयोगी ४४ पद्यों की छोटी सी कृति अपनी पत्नी को सबोधित करके लिखी गई है। छन्दों के लक्षण उन्हीं छन्दों मे दिये गये है जिनके वे लक्षण है।

इस ग्रथ से पता चलता है कि कवियों ने प्रस्तारविधि से छन्दो की वृद्धि न करके लयसाम्य के आधार पर गुरु लघु वर्णों के परिवर्तन द्वारा ही नवीन छंदों की रचना की होगी।

---

१ इसकी हस्तलिखित प्रति छाणी के भडार में है।

'श्रुतबोध' मे आठ गणो एव गुरु लघु वर्णों के लक्षण बताकर आर्या आदि छदों से प्रारभ कर यति का निर्देश करते हुए समवृत्तों के लक्षण बताये गये हैं।

इस कृति पर जैन लेखकों ने निम्नोक्त टीकाओ की रचना की है :

१ नागपुरी तपागच्छ के चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने विक्रम की १७ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है। टीका[1] के अन्त मे वृत्तिकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

श्रीमन्नागपुरीयपूर्वकतपागच्छाम्बुजाहस्कराः
सूरीन्द्राः [चन्द्र]कीर्तिगुरवो विश्वत्रयीविश्रुताः।
तत्पादाम्बुरुहप्रसादपदतः श्रीहर्षकीर्त्याह्वयो-
पाध्यायः श्रुतबोधवृत्तिमकरोद् बालावबोधाय वै ॥

२ नयविमलसूरि ने वि० १७ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है।

३. वाचक मेघचन्द्र के शिष्य ने वृत्ति रची है।

४. मुनि कातिविजय ने वृत्ति बनाई है।

५. माणिक्यमल्ल ने वृत्ति का निर्माण किया है।

वृत्तरत्नाकर—शैव शास्त्रों के विद्वान् पव्वेक के पुत्र केदार भट्ट[2] ने सस्कृत पद्यो में 'वृत्तरत्नाकर' की रचना सन् १००० के आस-पास में की है। इसमें कर्ता ने छद विषयक उपयोगी सामग्री दी है। यह कृति १ सज्ञा, २. मात्रावृत्त, ३ समवृत्त, ४. अर्धसमवृत्त, ५ विषमवृत्त और ६. प्रस्तार—इन छः अध्यायों में विभक्त है।

इस पर जैन लेखकों ने निम्नलिखित टीकाएँ लिखी है :

१ आसड नामक कवि ने 'वृत्तरत्नाकर' पर 'उपाध्यायनिरपेक्षा' नामक वृत्ति की रचना की है। आसड की नवरसभरी काव्यवाणी को सुनकर राजसभ्यों ने इन्हें 'सभाशृगार' की पदवी से अलकृत किया था। इन्होंने 'मेघदूत' काव्य पर सुन्दर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। प्राकृत भाषा में 'विवेकमञ्जरी' और 'उपदेशकन्दली' नामक दो प्रकरणग्रन्थ भी रचे थे। ये वि० स० १२४८ में विद्यमान थे।

२ वादी देवसूरि के सतानीय जयमगलसूरि के शिष्य सोमचन्द्रगणि ने

---

१ इस टीका की एक हस्तलिखित ७ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामंदिर में है।

२ वेदार्थशैवशास्त्रज्ञ. पव्वेकोऽभूद् द्विजोत्तमः।
तस्य पुत्रोऽस्ति केदार शिवपादार्चने रत ॥

पाँचवाँ प्रकरण

नाट्य

दुःखी, शोकार्त, श्रांत एवं तपस्वी व्यक्तियों को विश्रांति देने के लिये नाट्य की सृष्टि की गई है। सुख-दुःख से युक्त लोक का स्वभाव ही आंगिक, वाचिक इत्यादि अभिनयों से युक्त होने पर नाट्य कहलाता है :

> योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दुःख समन्वितः ।
> सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

नाट्यदर्पण :

कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि के दो शिष्यों कविकटारमल्ल विरुदधारक रामचन्द्रसूरि और उनके गुरुभाई गुणचन्द्रगणि ने मिलकर 'नाट्यदर्पण' की रचना वि० सं० १२०० के आसपास में की।

'नाट्यदर्पण' मे चार विवेक है जिनमें सब मिलाकर २०७ पद्य है।

प्रथम विवेक 'नाटकनिर्णय' में नाटकसंबंधी सब बातों का निरूपण है। इसमें १ नाटक, २ प्रकरण, ३. नाटिका, ४ प्रकरणी, ५ व्यायोग, ६ समवकार, ७ भाण, ८ प्रहसन, ९ डिम, १० अंक, ११. ईहामृग और १२. वीथि—ये बारह प्रकार के रूपक बताये गये है। पांच अवस्थाओं और पाँच संधियो का भी उल्लेख है।

द्वितीय विवेक 'प्रकरणाद्येकादशनिर्णय' में प्रकरण से लेकर वीथि तक के ११ रूपकों का वर्णन है।

तृतीय विवेक 'वृत्ति-रस-भावाभिनयविचार' में चार वृत्तियों, नव रसों, नव स्थायी भावों, तेंतीस व्यभिचारी भावों, रस आदि आठ अनुभावों और चार अभिनयों का निरूपण है।

चतुर्थ विवेक 'सर्वरूपकसाधारणलक्षणनिर्णय' में सभी रूपकों के लक्षण बताये गये है।

आचार्य रामचन्द्रसूरि समस्त [illegible] प्रसिद्ध थे। [illegible] गुण [illegible] के बड़े [illegible] थे। [illegible] नाटक आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है। गुरु हेमचन्द्रसूरि ने [illegible] नाटक आदि विषयों पर नहीं लिखा, वो उन विषयों पर आचार्य रामचन्द्रसूरि ने अपनी लेखनी चलाई है। वे प्रबन्ध-शतकर्ता भी माने गये हैं। इसका अर्थ 'सौ प्रबन्धों के कर्ता' नहीं अपितु 'प्रबन्धशत नामक ग्रन्थ के कर्ता' है। यह अर्थ बृहट्टिप्पणिका में सूचित किया गया है। प्रबन्धशत ग्रन्थ उपलब्ध नहीं मिला है। इस समर्थ कवि की असामयिक मृत्यु सं० १२३० में [illegible] अजयपाल के निमित्त हुई, ऐसी सूचना प्रबन्धों में मिलती है।

इनके गुरुभाई गुणचन्द्रगणि भी समर्थ विद्वान थे। उन्होंने सवृत्तिक द्रव्यालंकार आचार्य रामचन्द्रसूरि के साथ में रचा है।

आचार्य रामचन्द्रसूरि ने निम्नलिखित ग्रन्थों की भी रचना की है

१ कौमुदीमित्राणंद (प्रकरण), २ नलविलास (नाटक), ३ निर्भयभीम (व्यायोग), ४ मल्लिकामकरन्द (प्रकरण), ५. यादवाभ्युदय (नाटक), ६ रघुविलास (नाटक), ७ राघवाभ्युदय (नाटक), ८ रोहिणीमृगांक (प्रकरण), ९ वनमाला (नाटिका), १०. सत्यहरिश्चन्द्र (नाटक), ११ सुधाकलश (कोश), १२ आदिदेवस्तवन, १३. कुमार-विहारशतक, १४. जिनस्तोत्र, १५ नेमिस्तव, १६. मुनिसुव्रतस्तव, १७ यदुविलास, १८ सिद्धहेमचद्र शब्दानुशासन-लघुन्यास, १९ सोलह साधारणजिनस्तव, २० प्रसादद्वात्रिंशिका, २१ युगादिद्वात्रिंशिका, २२ व्यतिरेकद्वात्रिंशिका, २३ प्रबन्धशत।

नाट्यदर्पण–विवृति :

आचार्य रामचन्द्रसूरि और गुणचन्द्रगणि ने अपने 'नाट्यदर्पण' पर स्वोपज्ञ विवृति की रचना की है। इसमें रूपकों के उदाहरण ५५ ग्रन्थों से दिये गये है। स्वरचित कृतियों से भी उदाहरण लिये है। इसमें १३ उपरूपकों के स्वरूप का आलेखन किया गया है।

धनञ्जय के 'दशरूपक' ग्रन्थ को आदर्श के रूप में रखकर यह विवृति लिखी गयी है। विवृतिकार ने कहीं कहीं धनञ्जय के मत से अपना भिन्न मत प्रदर्शित किया है। भरत के नाट्यशास्त्र मे पूर्वापर विरोध है, ऐसा भी उल्लेख किया है। अपने गुरु आचार्य हेमचन्द्रसूरि के 'काव्यानुशासन' से भी कहीं-

कहीं भिन्न मत का निरूपण किया है। इस दृष्टि से यह कृति विशेष तौर से अध्ययन करने योग्य है।[1]

प्रबन्धशत :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्यरत्न आचार्य रामचन्द्रसूरि ने 'नाट्यदर्पण' के अतिरिक्त नाट्यशास्त्रविषयक 'प्रबन्धशत' नामक ग्रंथ की भी रचना की थी, जो अनुपलब्ध है।

बहुत से विद्वान् 'प्रबन्धशत' का अर्थ 'सौ प्रबन्ध' करते हैं किन्तु प्राचीन ग्रन्थसूची में 'रामचन्द्रकृत प्रबन्धशतं द्वादशरूपकनाटकादिस्वरूपज्ञापकम्' ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि 'प्रबन्धशत' नाम की इनकी कोई नाट्यविषयक रचना थी।

---

१ 'नाट्यदर्पण' स्वोपज्ञ विवृति के साथ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज से दो भागों में छप चुका है। इस ग्रन्थ का के. एच. त्रिवेदीकृत आलोचनात्मक अध्ययन लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

छठा प्रकरण

संगीत

'सम्' और 'गीत'—इन दो शब्दों के मिलने से 'सगीत' पद बनता है। मुख से गाना गीत है। 'सम्' का अर्थ है अच्छा। वाद्य और नृत्य दोनों के मिलने से गीत अच्छा बनता है। कहा भी है :

गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।

सगीतशास्त्र का उपलब्ध आदि ग्रथ भरत का 'नाट्यशास्त्र' है, जिसमें सगीत-विभाग (अध्याय २८ से ३६ तक) है। उसमें गीत और वाद्यों का पूरा विवरण है किंतु रागो के नाम और उनका विवरण नहीं बताया गया है।

भरत के शिष्य दत्तिल, कोहल और विशाखिल—इन तीनों ने ग्रन्थों की रचना की थी। प्रथम का दत्तिलम्, दूसरे का कोहलीयम् और तीसरे का विशाखिलम् ग्रन्थ था। विशाखिलम् प्राप्य नहीं है।

मध्यकाल में हिंदुस्तानी और कर्णाटकी पद्धतिया चलीं। उसके बाद सगीत-शास्त्र के ग्रथ लिखे गये।

सन् १२०० में सब पद्धतियों का मथन करके शार्ङ्गदेव ने 'सगीत-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा। उस पर छ टीका-ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमें से चार टीका-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

अर्धमागधी (प्राकृत) में रचित 'अनुयोगद्वार' सूत्र में सगीतविषयक सामग्री पद्य में मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि प्राकृत में सगीत का कोई ग्रन्थ रहा होगा।

उपर्युक्त जैनेतर ग्रन्थों के आधार पर जैनाचार्यों ने भी अपनी विशेषता दर्शाते हुए कुछ ग्रन्थों की रचना की है।

सगीतसमयसार :

दिगबर जैन मुनि अभयचन्द्र के शिष्य महादेवार्य और उनके शिष्य पार्श्वचन्द्र ने 'सगीतसमयसार'[1] नामक ग्रन्थ की रचना लगभग वि० स० १३८०

---

१. यह ग्रन्थ 'त्रिवेन्द्रम् सस्कृत ग्रथमाला' में छप गया है।

में की है। इस ग्रन्थ मे ९ अधिकरण है जिनमे नाद, ध्वनि, स्थायी, राग, वाद्य, अभिनय, ताल, प्रस्तार और आध्ययोग—इस प्रकार अनेक विषयो पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रताप, दिगबर और शकर नामक ग्रथकारो का उल्लेख है। भोज, सोमेश्वर और परमर्दी—इन तीन राजाओ के नाम भी उल्लिखित है।[1]

संगीतोपनिषत्सारोद्धार :

आचार्य राजशेखरसूरि के शिष्य सुधाकलश ने वि० स० १४०६ में 'सगीतोपनिषत्सारोद्धार' की रचना की है।[2] यह ग्रथ स्वय सुधाकलश द्वारा स० १३८० में रचित 'सगीतोपनिषत्' का साररूप है। इस ग्रथ में छ. अध्याय और ६१० श्लोक है। प्रथम अध्याय में गीतप्रकाशन, दूसरे मे प्रस्तारादि-सोपाश्रय-तालप्रकाशन, तीसरे मे गुण-स्वर रागादिप्रकाशन, चौथे मे चतुर्विध वाद्यप्रकाशन, पाचवें मे नृत्याग-उपाग-प्रत्यगप्रकाशन, छठे मे नृत्यपद्धति-प्रकाशन है।

यह कृति सगीतमकरद और सगीतपारिजात से भी विशिष्टतर और अधिक महत्त्व की है।

इस ग्रथ में नरचन्द्रसूरि का सगीतज्ञ के रूप मे उल्लेख है। प्रशस्ति मे अपनी 'सगीतोपनिषत् रचना के वि स १३८० में होने का उल्लेख है।

मलधारी अमरदेवसूरि की परपरा मे अमरचन्द्रसूरि हो गये है। वे सगीतशास्त्र में विशारद थे, ऐसा उल्लेख सुधाकलश मुनि ने किया है।

सगीतोपनिषत् :

आचार्य राजशेखरसूरि के शिष्य सुधाकलश ने 'सगीतोपनिषत्' ग्रथ की रचना वि स. १३८० में की, ऐसा उल्लेख ग्रन्थकार ने स्वय स० १४०६ में रचित अपने 'सगीतोपनिषत्सारोद्धार' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति मे किया है। यह ग्रथ बहुत बड़ा था जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

सुधाकलश ने 'एकाक्षरनाममाला' की भी रचना की है।

---

१ विशेष परिचय के लिये देखिए—'जैन सिद्धात भास्कर' भाग ९, अक २ और भाग १०, अक १०.

२ यह ग्रथ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बडौदा से प्रकाशित हो गया है।

सातवां प्रकरण

कला

चित्रवर्णसंग्रह :

सोमराजारचित 'रत्नपरीक्षा' ग्रन्थ के अन्त में 'चित्रवर्णसंग्रह' के ४२ श्लोकों का प्रकरण अत्यन्त उपयोगी है।

इसमें भित्तिचित्र बनाने के लिये भित्ति कैसी होनी चाहिये, रंग कैसे बनाना चाहिये, कलम-पींछी कैसी होनी चाहिये, इत्यादि बातों का ब्यौरेवार वर्णन है।

प्राचीन भारत में सित्तनवासल, अजन्ता, बाघ इत्यादि गुफाओं और राजा-महाराजाओं तथा श्रेष्ठियों के प्रासादों में चित्रों का जो आलेखन किया जाता था उसकी विधि इस छोटे-से ग्रंथ में बताई गई है।

यह प्रकरण प्रकाशित नहीं हुआ है।

कलाकलाप :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य कवि अमरचन्द्रसूरि की कृतियों के बारे में 'प्रबन्धकोश' में उल्लेख है, जिसमें 'कलाकलाप' नामक कृति का भी निर्देश है। इस ग्रन्थ का शास्त्ररूप में उल्लेख है, परन्तु इसकी कोई प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

इसमें ७२ या ६४ कलाओं का निरूपण हो, ऐसी सम्भावना है।

मषीविचार :

'मषीविचार' नामक एक ग्रंथ जैसलमेर-भाण्डागार में है, जिसमें ताड़पत्र और कागज पर लिखने की स्याही बनाने की प्रक्रिया बतायी गई है। इसका जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६२ में उल्लेख है।

आठवां प्रकरण

गणित

गणित विद्या बहुत प्राचीन है। इसके कई प्रकार हैं : अंकगणित, बीज-गणित, [illegible], त्रिकोणमिति, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) और [illegible]। इनके अतिरिक्त [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि भी गणित शास्त्र के अन्तर्गत हैं।

महावीराचार्य ने गणितशास्त्र की विशेषता और आवश्यकता बताते हुए कहा है कि लौकिक, वैदिक तथा सामायिक जो भी व्यापार है उन सब में गणित संख्यान का उपयोग रहा है। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, गान्धर्वशास्त्र, नाट्यशास्त्र, पाक-शास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या और छन्द, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष आदि में तथा कलाओं के समस्त गुणों में गणित अत्यन्त उपयोगी शास्त्र है। सूर्य आदि ग्रहों की गति ज्ञात करने में, प्रश्न अर्थात् दिक्, देश और काल का ज्ञान करने में, चन्द्रमा के परिलेख में—सर्वत्र गणित ही अंगीकृत है।

द्वीपों, समुद्रों और पर्वतों की सख्या, व्यास और परिधि, लोक, अन्तर्लोक ज्योतिर्लोक, स्वर्ग और नरक में स्थित श्रेणीबद्ध भवनों, सभाभवनों और गुम्बदाकार मदिरों के परिमाण तथा अन्य विविध परिमाण गणित की सहायता से ही जाने जा सकते हैं।

जैन शास्त्रों में चार अनुयोग गिनाए गए हैं, उनमें गणितानुयोग भी एक है। कर्मसिद्धात के भेद-प्रभेद, काल और क्षेत्र के परिमाण आदि समझने में गणित के ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है।

गणित जैसे सूक्ष्म शास्त्र के विषय में अन्य शास्त्रों की अपेक्षा कम पुस्तकें प्राप्त होती हैं, उनमें भी जैन विद्वानों के ग्रन्थ बहुत कम सख्या में मिलते हैं।

गणितसारसंग्रह :

'गणितसारसग्रह' के रचयिता महावीराचार्य दिगम्बर जैन विद्वान् थे। इन्होंने ग्रन्थ के आरभ में कहा है कि जगत् के पूज्य तीर्थंकरों के शिष्य-प्रशिष्यों

के प्रसिद्ध गुणरूप समुद्रों में से रत्नसमान, पाषाणों में से कंचनसमान, और शुक्तियों में से मुक्ताफलसमान सार निकाल कर मैंने इस 'गणितसारसंग्रह' की यथामति रचना की है। यह ग्रन्थ लघु होने पर भी अनल्पार्थक है।

इसमें आठ व्यवहारों का निरूपण इस प्रकार है : १ परिकर्म, २. कलासवर्ण, ३ प्रकीर्णक, ४. त्रैराशिक, ५ मिश्रक, ६ क्षेत्रगणित, ७ खात और ८ छाया।

प्रथम अध्याय में गणित की विभिन्न इकाइयों व क्रियाओं के नाम, संख्याएँ, ऋणसंख्या और ग्रन्थ की महिमा तथा विषय निरूपित हैं।

महावीराचार्य ने त्रिभुज और चतुर्भुजसंबंधी गणित का विश्लेषण विशिष्ट रीति से किया है। यह विशेषता अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती।[1]

त्रिकोणमिति तथा रेखागणित के मौलिक और व्यावहारिक प्रश्नों से मालूम होता है कि महावीराचार्य गणित में ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के समान हैं। तथापि महावीराचार्य उनसे अधिक पूर्ण और आगे हैं। विस्तार में भी भास्कराचार्य की लीलावती से यह ग्रन्थ बड़ा है।

महावीराचार्य ने अंकसंबंधी जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—इन आठ परिकर्मों का उल्लेख किया है। इन्होंने शून्य और काल्पनिक संख्याओं पर भी विचार किया है। भिन्नों के भाग के विषय में महावीराचार्य की विधि विशेष उल्लेखनीय है।

लघुतम समापवर्तक के विषय में अनुसंधान करनेवालों में महावीराचार्य प्रथम गणितज्ञ हैं जिन्होंने लाघवार्थ—निरुद्ध लघुतम समापवर्त्य की कल्पना की। इन्होंने 'निरुद्ध' की परिभाषा करते हुए कहा कि छेदों के महत्तम समापवर्त्तक और उसका भाग देने पर प्राप्त लब्धियों का गुणनफल 'निरुद्ध' कहलाता है। भिन्नों का समच्छेद करने के लिये नियम इस प्रकार है—निरुद्ध को हर से भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो उससे हर और अंश दोनों को गुणा करने से सब भिन्नों का हर एक-सा हो जायगा।

महावीराचार्य ने समीकरण को व्यावहारिक प्रश्नों द्वारा समझाया है। इन प्रश्नों को दो भागों में विभाजित किया है एक तो वे प्रश्न जिनमें अज्ञात

---

१ दत्त, डा० विभूतिभूषण—मैथेमेटिकल सोसायटी बुलेटिन नं० २० में 'ऑन महावीर्स सोल्युशन ऑफ ट्रायंगल्स एण्ड क्वाड्रीलेटरल' शीर्षक लेख।

राशि के वर्गमूल का कथन होता है और दूसरे वे जिनमें अज्ञात रा
का निर्देश रहता है।

'गणितसारसंग्रह' में चौबीस अंक तक की संख्याओं का निर्देश
है, जिनके नाम इस प्रकार हैं: १ एक, २ दश, ३ शत, ४ सहस्र,
सहस्र, ६ लक्ष, ७ दशलक्ष, ८. कोटि, ९ दशकोटि, १० शतको
अर्बुद, १२ न्यर्बुद, १३ खर्व, १४ महाखर्व, १५. पद्म, १६ महा
क्षोणी, १८ महाक्षोणी, १९ शंख, २०. महाशंख, २१ क्षिति,
क्षिति, २३ क्षोभ, २४ महाक्षोभ।

अंकों के लिये शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—३ के
६ के लिये द्रव्य, ७ के लिये तत्त्व, पन्नग और भय, ८ के लिये कर्म,
और ९ के लिये पदार्थ इत्यादि। महावीराचार्य ब्रह्मगुप्तकृत 'ब्राह्मस्
ग्रंथ से परिचित थे। श्रीधर की 'त्रिशतिका' का भी इन्होंने उप
था ऐसा मालूम होता है। ये राष्ट्रकूट वंश के शासक अमोघवर्ष नृप
८१४ से ८७८) के समकालीन थे। इन्होंने 'गणितसारसंग्रह' की
में उनकी खूब प्रशंसा की है।

इस कृति में जिनेश्वर की पूजा, फलपूजा, दीपपूजा, गंधपूजा
इत्यादिविषयक उदाहरणों और बारह प्रकार के तप तथा बारह अं
शांगी का उल्लेख होने से महावीराचार्य निःसन्देह जैनाचार्य थे ऐ
होता है।[1]

गणितसारसंग्रह-टीका :

दक्षिण भारत में महावीराचार्यरचित 'गणितसार संग्रह' सर्व
रहा है। इस ग्रंथ पर वरदराज और अन्य किसी विद्वान् ने संस्कृत
लिखी हैं। ११ वीं शताब्दी में पावुलूरिमल्ल ने इसका तेलुगु भाषा
किया है। वल्लभ नामक विद्वान् ने कन्नड़ में तथा अन्य किसी विद्व
में व्याख्या की है।

षट्त्रिंशिका :

महावीराचार्य ने 'षट्त्रिंशिका' ग्रंथ की भी रचना की है। इ
बीजगणित की चर्चा की है।

---

१ यह ग्रंथ मद्रास सरकार की अनुमति से प्रो० रंगाचार्य ने अंग्रेजी के साथ संपादित कर सन् १९१२ में प्रकाशित किया है।

इस ग्रथ की दो हस्तलिखित प्रतियो के, जिनमें से एक ४५ पत्रों की और दूसरी १८ पत्रों की है, 'राजस्थान के जैन शास्त्र-भडारों की ग्रथसूची' में जयपुर के ठोलियों के मदिर के भडार में होने का उल्लेख है।

गणितसारकौमुदी :

जैन गृहस्थ विद्वान् ठक्कर फेरु ने 'गणितसारकौमुदी' नामक ग्रथ की रचना पद्य में प्राकृत भाषा मे की है। इसमें उन्होने अपने अन्य ग्रथों की तरह पूर्ववर्ता साहित्यकारों के नामों का उल्लेख नहीं किया है।

ठक्कर फेरु ने अपनी इस रचना मे भास्कराचार्य की 'लीलावती' का पर्याप्त सहारा लिया है। दोनों ग्रथो में साम्य भी वहुत अशों मे देखा जाता है। जैसे—परिभाषा, श्रेढीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, मिश्रव्यवहार, खातव्यवहार, चितिव्यवहार, राशिव्यवहार, छायाव्यवहार—यह विषयविभाग जैसा 'लीलावती' में है वैसा ही इसमें भी है। स्पष्ट है कि ठक्कर फेरु ने अपने 'गणितसारकौमुदी' ग्रन्थ की रचना में 'लीलावती' को ही आदर्श रखा है। कहीं-कहीं तो 'लीलावती' के पद्यों को ही अनूदित कर दिया है।

जिन विषयों का उल्लेख 'लीलावती' में नहीं है ऐसे देशाधिकार, वस्त्राधिकार, तात्कालिक भूमिकर, धान्योत्पत्ति आदि इतिहास और विज्ञान की दृष्टि से अति मूल्यवान् प्रकरण इसमें हैं। इनसे ठक्कर फेरु की मौलिक विचारधारा का परिचय भी प्राप्त होता है। ये प्रकरण छोटे होते हुए भी अति महत्त्व के हैं। इन विषयों पर उस समय के किसी अन्य विद्वान् ने प्रकाश नहीं डाला। अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन वादशाहों के समय की सास्कृतिक और सामाजिक स्थिति का ज्ञान इन्हीं के सूक्ष्मतम अध्ययन पर निर्भर है।

इस ग्रथ के क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण में नामों को स्पष्ट करने के लिये यत्र दिये गये हैं। अन्य विषयों को भी सुगम बनाने के लिये अनेक यत्रो का आलेखन किया गया है। ठक्कर फेरु के यत्र कहीं-कहीं 'लीलावती' के यत्रो से मेल नहीं खाते।

ठक्कर फेरु ने अपनी ग्रथ-रचना में महावीराचार्य के 'गणितसारसग्रह' का भी उपयोग किया है।

'गणितसारकौमुदी' में लोकभाषा के शब्दों का भी बहुतायत में प्रयोग किया गया है, जो भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

इसमे यन्त्र-प्रकरण में अकसूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

ठक्कर फेरु ठक्कर चन्द्र के पुत्र थे। ये देहली मे टकशाला के अध्यक्ष पद पर नियुक्त थे। इन्होने यह ग्रन्थ वि० स० १३७२ से १३८० के बीच मे रचा होगा। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

ठक्कर फेरु ने अन्य कई ग्रन्थों की रचना की है जो इस प्रकार है :

१ वास्तुसार, २ ज्योतिस्सार, ३ रत्नपरीक्षा, ४ द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र), ५ भूगर्भप्रकाश, ६. धातूत्पत्ति, ७. युगप्रधान चौपाई।

पाटीगणित :

'पाटीगणित' के कर्ता पल्लीवाल अनन्तपाल जैन गृहस्थ थे। इन्होंने 'नेमिचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है। अनन्तपाल के भाई धनपाल ने वि० स० १२६१ में 'तिलकमञ्जरीकथासार' रचा था।

इस 'पाटीगणित' मे अकगणितविषयक चर्चा की होगी, ऐसा अनुमान है।

गणितसग्रह :

'गणितसग्रह' नामक ग्रन्थ के रचयिता यल्लाचार्य थे। ये जैन थे। यल्लाचार्य प्राचीन लेखक हैं, परन्तु ये कब हुए यह कहना मुश्किल है।

सिद्ध-भू-पद्धति

'सिद्ध-भू-पद्धति' किसने कब रचा, यह निश्चित नहीं है। इसके टीकाकार वीरसेन ९ वीं शताब्दी मे विद्यमान थे। इससे सिद्ध-भू पद्धति उनसे पहले रची गई थी यह निश्चित है।

'उत्तरपुराण' की प्रशस्ति मे गुणभद्र ने अपने दादागुरु वीरसेनाचार्य के विषय में उल्लेख किया है कि 'सिद्ध-भू-पद्धति' का प्रत्येक पद विषम था। इस पर वीरसेनाचार्य के टीका-निर्माण करने से यह मुनियों को समझने में सुगम हो गया।

इसमें क्षेत्रगणित का विषय होगा, ऐसा अनुमान है।

सिद्ध-भू-पद्धति-टीका :

'सिद्ध-भू-पद्धति टीका' के कर्ता वीरसेनाचार्य है। ये आर्यनन्दि के शिष्य, जिनसेनाचार्य प्रथम के गुरु तथा 'उत्तरपुराण' के रचयिता गुणभद्राचार्य के प्रगुरु थे। इनका जन्म शक स० ६६० (वि० स० ७९५) और स्वर्गवास शक स० ७४५ (वि० स० ८८०) मे हुआ।

लगभग वि० स० १३३० मे टीका की रचना की है।[1] इसमें इन्होंने 'लीलावती' और 'त्रिशतिका' का उपयोग किया है।

सिंहतिलकसूरि के उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार है .

१ मंत्रराजरहस्य (सूरिमन्त्रसबधी), २ वर्धमानविद्याकल्प, ३. भुवनदीपकवृत्ति (ज्योतिष्), ४. परमेष्ठिविद्यायत्रस्तोत्र, ५ लघुनमस्कारचक्र, ६ ऋषिमण्डलयत्रस्तोत्र।

---

1 यह टीका प्रो० हीरालाल र० कापडिया द्वारा सम्पादित होकर गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से सन् १९३७ मे प्रकाशित हुई है।

नवां प्रकरण

ज्योतिष

ज्योतिष-विषयक जैन आगम ग्रन्थो में निम्नलिखित अगबाह्य सूत्रो का समावेश होता है :

१. सूर्यप्रज्ञप्ति,[1] २ चन्द्रप्रज्ञप्ति,[2] ३. ज्योतिष्करण्डक,[3] ४. गणिविद्या।[4]

ज्योतिस्सार :

ठक्कर फेरु ने 'ज्योतिस्सार' नामक ग्रथ[5] की प्राकृत में रचना की है। उन्होंने इस ग्रथ में लिखा है कि हरिभद्र, नरचद्र, पद्मप्रभसूरि, जउण, वराह, लल्ल, पराशर, गर्ग आदि ग्रथकारों के ग्रथों का अवलोकन करके इसकी रचना (वि. स १३७२-७५ के आसपास) की है।

चार द्वारों में विभक्त इस ग्रथ में कुल मिलाकर २३८ गाथाएँ हैं। दिनशुद्धि नामक द्वार मे ४२ गाथाएँ हैं, जिनमें वार, तिथि और नक्षत्रों मे सिद्धियोग का प्रतिपादन है। व्यवहारद्वार में ६० गाथाएँ हैं, जिनमें ग्रहों की राशि, स्थिति, उदय, अस्त और वक्र दिन की सख्या का वर्णन है। गणितद्वार में ३८ गाथाएँ हैं और लग्नद्वार में ९८ गाथाएँ हैं। इनके अन्य ग्रथों के बारे मे अन्यत्र लिखा गया है।

---

१ सूर्यप्रज्ञप्ति के परिचय के लिए देखिए—इसी इतिहास का भाग २, पृ० १०५-११०.

२. चन्द्रप्रज्ञप्ति के परिचय के लिए देखिए—वही, पृ ११०

३. ज्योतिष्करण्डक के परिचय के लिए देखिए—भाग ३, पृ. ४२३-४२७. इस प्रकीर्णक के प्रणेता सभवत. पादलिप्ताचार्य हैं।

४ गणिविद्या के परिचय के लिए देखिए—भाग २, पृ ३५९
इन सब ग्रथों की व्याख्याओं के लिए इसी इतिहास का तृतीय भाग देखना चाहिए।

५. यह 'रत्नपरीक्षादिसप्तग्रन्थसग्रह' में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित है।

विवाहपडल (विवाहपटल) :

'विवाहपडल' के कर्ता अज्ञात हैं। यह प्राकृत में रचित एक ज्योतिष-विषयक ग्रंथ है, जो विवाह के समय काम में आता है। इसका उल्लेख 'निशीथविशेष-चूर्णि' में मिलता है।

लग्गसुद्धि (लग्नशुद्धि) :

'लग्गसुद्धि' नामक ग्रंथ के कर्ता याकिनी-महत्तरासूनु हरिभद्रसूरि माने जाते हैं। परन्तु यह संदिग्ध मालूम होता है। यह 'लग्नकुण्डलिका' नाम से प्रसिद्ध है। प्राकृत की कुल १३३ गाथाओं में गोचरशुद्धि, प्रतिद्वारदशक, मास वार-तिथि-नक्षत्र-योगशुद्धि, सुगणदिन, रजछन्नद्वार, संक्रांति, कर्कयोग, वार नक्षत्र-अशुभयोग, सुगणार्धद्वार, होरा, नवांश, द्वादशांश, षड्वर्गशुद्धि, उदयास्तशुद्धि इत्यादि विषयों पर चर्चा की गई है।[1]

दिणसुद्धि (दिनशुद्धि) :

पन्द्रहवीं शती में विद्यमान रत्नशेखरसूरि ने 'दिनशुद्धि' नामक ग्रंथ की प्राकृत में रचना की है। इसमें १४४ गाथाएँ हैं, जिनमें रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि का वर्णन करते हुए तिथि, लग्न, प्रहर, दिशा और नक्षत्र की शुद्धि बताई गई है।[2]

कालसंहिता :

'कालसंहिता' नामक कृति आचार्य कालक ने रची थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। वराहमिहिरकृत 'बृहज्जातक' (१६. १) की उत्पलकृत टीका में बंकालकाचार्यकृत 'बंकालकसंहिता' से दो प्राकृत पद्य उद्धृत किये गये हैं। 'बंकालकसंहिता' नाम अशुद्ध प्रतीत होता है। यह 'कालकसंहिता' होनी चाहिए, ऐसा अनुमान होता है। यह ग्रंथ अनुपलब्ध है।

कालकसूरि ने किसी निमित्तग्रंथ का निर्माण किया था, यह निम्न उल्लेख से ज्ञात होता है :

---

१ यह ग्रन्थ उपाध्याय क्षमाविजयजी द्वारा संपादित होकर शाह मूलचन्द बुलाखीदास की ओर से सन् १९३८ में बम्बई से प्रकाशित हुआ है।

२ यह ग्रंथ उपाध्याय क्षमाविजयजी द्वारा संपादित होकर शाह मूलचन्द बुलाखीदास, बम्बई की ओर से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ है।

पढमणुओगे कासी जिणचक्किदसारचरियपुव्वभवे ।
कालगसूरी वहुयं लोगाणुओगे निमित्तं च ॥

गणहरहोरा (गणधरहोरा) :

'गणहरहोरा' नामक यह कृति किसी अज्ञात नामा विद्वान् ने रची है। इसमें २९ गाथाएँ है। मगलाचरण में 'नमिऊण इंदभूइ' उल्लेख होने से यह किसी जैनाचार्य की रचना प्रतीत होती है। इसमें ज्योतिष-विषयक होरासबधी विचार है। इसकी ३ पत्रों की एक प्रति पाटन के जैन भडार मे है।

प्रश्नपद्धति :

'प्रश्नपद्धति' नामक ज्योतिषविषयक ग्रथ की हरिश्चन्द्रगणि ने सस्कृत मे रचना की है। कर्ता ने निर्देश किया है कि गीतार्थचूडामणि आचार्य अभयदेवसूरि के मुख से प्रश्नों का अवधारण कर उन्हीं की कृपा से इस ग्रथ की रचना की है। यह ग्रन्थ कर्ता ने अपने ही हाथ से पाटन के अन्नपाटक में चातुर्मास की अवस्थिति के समय लिखा है।

जोइसदार (ज्योतिर्द्वार) :

'जोइसदार' नामक प्राकृत भाषा की २ पत्रों की कृति पाटन के जैन भडार मे है। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। इसमें राशि और नक्षत्रों से शुभाशुभ फलों का वर्णन किया गया है।

जोइसचक्कवियार (ज्योतिष्चक्रविचार) :

जैन ग्रन्थावली (पृ० ३४७) में 'जोइसचक्कवियार' नामक प्राकृत भाषा की कृति का उल्लेख है। इस ग्रन्थ का परिमाण १५५ ग्रन्थाग्र है। इसके कर्ता का नाम विनयकुशल मुनि निर्दिष्ट है।

भुवनदीपक :

'भुवनदीपक' का दूसरा नाम 'ग्रहभावप्रकाश' है।[1] इसके कर्ता आचार्य पद्मप्रभसूरि[2] हैं। ये नागपुरीय तपागच्छ के सस्थापक है। इन्होंने वि० स० १२२१ में 'भुवनदीपक' की रचना की।

---

१ ग्रहभावप्रकाशाख्य शास्त्रमेतत् प्रकाशितम् ।
जगद्भावप्रकाशाय श्रीपद्मप्रभसूरिभि ॥

२. आचार्य पद्मप्रभसूरि ने 'मुनिसुव्रतचरित' की रचना की है, जिसकी वि० स० १३०४ में लिखी गई प्रति जैसलमेर भडार मे विद्यमान है।

यह ग्रंथ छोटा होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें ३६ द्वार (प्रकरण) हैं: १. ग्रहों के अधिप, २. ग्रहों की उच्च नीच स्थिति, ३ परस्परमित्रता, ४. राहुविचार, ५ केतुविचार, ६. ग्रहचक्रों का स्वरूप, ७ बारह भाव, ८ अभीष्ट कालनिर्णय, ९. लग्नविचार, १०. विनष्ट ग्रह, ११. चार प्रकार के राजयोग, १२. लाभविचार, १३ लाभफल, १४. गर्भ की क्षेमकुशलता, १५. स्त्रीगर्भ-प्रसूति, १६. दो सतानों का योग, १७. गर्भ के महीने, १८. भार्या, १९. विषकन्या, २०. भावों के ग्रह, २१. विवाहविचारणा, २२. विवाद, २३. मिश्रपद-निर्णय, २४. पृच्छा-निर्णय, २५. प्रवासी का गमनागमन, २६. मृत्युयोग, २७. दुर्गभग, २८. चौर्य-स्थान, २९ अर्घज्ञान, ३०. मरण, ३१. लाभोदय, ३२. लग्न का मासफल, ३३. द्रेक्काणफल, ३४. दोषज्ञान, ३५ राजाओं की दिनचर्या, ३६ इस गर्भ में क्या होगा? इस प्रकार कुल १७० श्लोकों में ज्योतिषविषयक अनेक विषयों पर विचार किया गया है।

१. भुवनदीपक-वृत्ति :

'भुवनदीपक' पर आचार्य सिंहतिलकसूरि ने वि० स० १३२६ में १७०० श्लोक-प्रमाण वृत्ति की रचना की है। सिंहतिलकसूरि ज्योतिष् शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होंने श्रीपति के 'गणिततिलक' पर भी एक महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है।

सिंहतिलकसूरि विबुधचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने वर्धमानविद्याकल्प, मत्रराजरहस्य आदि ग्रथों की रचना की है।

२. भुवनदीपक-वृत्ति :

मुनि हेमतिलक ने 'भुवनदीपक' पर एक वृत्ति रची है। समय अज्ञात है।

३. भुवनदीपक-वृत्ति :

दैवज्ञ शिरोमणि ने 'भुवनदीपक' पर एक विवरणात्मक वृत्ति की रचना की है। समय ज्ञात नहीं है। ये टीकाकार जैनेतर है।

४. भुवनदीपक-वृत्ति :

किसी अज्ञात नामा जैन मुनि ने 'भुवनदीपक' पर एक वृत्ति रची है। समय भी अज्ञात है।

ऋषिपुत्र की कृति :

गर्गाचार्य के पुत्र और शिष्य ने निमित्तशास्त्रसबधी किसी ग्रथ का निर्माण किया है। ग्रथ प्राप्य नहीं है। कई विद्वानों के मत से उनका समय देवल के

बाद और वराहमिहिर के पहले कहीं है। भट्टोत्पली टीका मे ऋषिपुत्र के सबध में उल्लेख है। इससे वे शक स० ८८८ (वि० स० १०२३) के पूर्व हुए यह निर्विवाद है।

आरम्भसिद्धि :

नागेन्द्रगच्छीय आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि ने 'आरम्भ-सिद्धि' (पचविमर्श) ग्रथ की रचना (वि० स० १२८०) सस्कृत में ४१३ पद्यों में की है।[1]

इस ग्रथ में पाच विमर्श हैं और ११ द्वारों में इस प्रकार विषय है: १. तिथि, २ वार, ३. नक्षत्र, ४. सिद्धि आदि योग, ५ राशि, ६ गोचर, ७. (विद्यारभ आदि) कार्य, ८. गमन—यात्रा, ९ (गृह आदि का) वास्तु, १०. विलग्न और ११. मिश्र।

इसमें प्रत्येक कार्य के शुभ अशुभ मुहूर्त्तों का वर्णन है। मुहूर्त्त के लिये 'मुहूर्त्तचिंतामणि' ग्रथ के समान ही यह ग्रथ उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। ग्रथ का अध्ययन करने पर कर्ता की गणित-विषयक योग्यता का भी पता लगता है।

इस ग्रथ के कर्ता आचार्य उदयप्रभसूरि मल्लिषेणसूरि और जिनभद्रसूरि के गुरु थे। उदयप्रभसूरि ने धर्माभ्युदयमहाकाव्य, नेमिनाथचरित्र, सुकृत-कीर्तिकल्लोलिनीकाव्य एव वि० स० १२९९ में 'उवएसमाला' पर 'कर्णिका' नाम से टीकाग्रथ की रचना की है। 'छासीइ' और 'कम्मत्थय' पर टिप्पण आदि ग्रथ रचे हैं। गिरनार के वि० स० १२८८ के शिलालेखो में से एक शिलालेख की रचना इन्होंने की है।

आरम्भसिद्धि-वृत्ति :

आचार्य रत्नशेखरसूरि के शिष्य हेमहसगणि ने वि० स० १५१४ मे 'आरम्भ-सिद्धि' पर 'सुधीशृङ्गार' नाम से वार्तिक रचा है। टीकाकार ने मुहूर्त्त सबधी साहित्य का सुन्दर सकलन किया है। टीका मे बीच-बीच मे ग्रहगणित-विषयक प्राकृत गाथाएँ उद्धृत की है जिससे मालूम पड़ता है कि प्राकृत में ग्रहगणित का कोई ग्रथ था। उसके नाम का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

---

१ यह हेमहसकृत वृत्तिसहित जैन शासन प्रेस, भावनगर से प्रकाशित है।

मण्डलप्रकरण :

आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य मुनि विनयकुशल ने प्राकृत भाषा में ९९ गाथाओं में 'मण्डलप्रकरण' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६५२ में की है।

ग्रन्थकार ने स्वयं निर्देश किया है कि आचार्य मुनिचन्द्रसूरि ने 'मण्डल कुलक' रचा है, उसको आधारभूत मानकर 'जीवाजीवाभिगम' की कई गाथाएँ लेकर इस प्रकरण की रचना की गई है। यह कोई नवीन रचना नहीं है।

ज्योतिष के खगोल-विषयक विचार इसमे प्रदर्शित किये गए हैं। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं है।

मण्डलप्रकरण-टीका :

'मण्डलप्रकरण' पर मूल प्राकृत ग्रन्थ के रचयिता विनयकुशल ने ही स्वोपज्ञ टीका करीब वि सं १६५२ में लिखी है, जो १२३१ ग्रन्थाग्र-प्रमाण है। यह टीका छपी नहीं है।[1]

भद्रबाहुसंहिता :

आज जो संस्कृत में 'भद्रबाहुसंहिता' नाम का ग्रन्थ मिलता है वह तो आचार्य भद्रबाहु द्वारा प्राकृत मे रचित ग्रन्थ के उद्धार के रूप में है, ऐसा विद्वानों का मन्तव्य है। वस्तुत. भद्रबाहुरचित ग्रन्थ प्राकृत मे था जिसका उद्धरण उपाध्याय मेघविजयजी द्वारा रचित 'वर्ष-प्रबोध' ग्रंथ (पृ० ४२६-२७) मे मिलता है। यह ग्रंथ प्राप्त न होने से इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस नाम का जो ग्रन्थ संस्कृत में रचा हुआ प्रकाश में आया है[2] उसमें २७ प्रकरण इस प्रकार हैं १ ग्रथागसञ्चय, २-३ उल्कालक्षण, ४ परिवेष-वर्णन, ५ विद्युल्लक्षण, ६ अभ्रलक्षण, ७ सध्यालक्षण, ८ मेघकाड, ९ वात-लक्षण, १० सकलमारसमुच्चयवर्णन, ११ गन्धर्वनगर, १२. गर्भवातलक्षण, १३ राजयात्राध्याय, १४ सकलशुभाशुभव्याख्यानविधानकथन, १५ भगवत्त्रिलोकपतिदैत्यगुरु, १६ शनैश्चरचार, १७ बृहस्पतिचार, १८ बुधचार, १९ अंगारकचार, २०-२१ राहुचार, २२ आदित्यचार, २३ चन्द्रचार, २४ ग्रहयुद्ध, २५ सग्रहयोगार्धकाण्ड, २६ स्वप्नाध्याय, २७ वस्त्रव्यवहारनिमित्तक, परिशिष्टाध्याय—वस्त्रविच्छेदनाध्याय।

---

१ इसकी प्रति ला० द० भा० संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में है।

२ हिन्दीभाषानुवादसहित—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५९

कई विद्वान् इस ग्रथ को भद्रबाहु का नहीं अपितु उनके नाम से अन्य द्वारा रचित मानते है। मुनि श्री जिनविजयजी इसे बारहवीं तेरहवीं शताब्दी की रचना मानते है, जबकि प० श्री कल्याणविजयजी इस ग्रथ को पद्रहवीं शताब्दी के बाद का मानते है। इस मान्यता का कारण बताते हुए वे कहते है कि इसकी भाषा बिल्कुल सरल और हल्की कोटि की सस्कृत है। रचना म अनेक प्रकार की विषय सबधी तथा छन्दोविषयक अशुद्धिया है। इसका निर्माता प्रथम श्रेणी का विद्वान् नहीं था। 'सोरठ' जैसे शब्द प्रयोगों से भी इसका लेखक पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती का ज्ञात होता है। इसके सपादक प० नेमिचन्द्रजी इसे अनुमानत अष्टम शताब्दी की कृति बताते है। उनका यह अनुमान निराधार है।

प० जुगलकिशोरजी मुख्तार ने इसे सत्रहवीं शती के एक भट्टारक के समय की कृति बताया है, जो ठीक मालूम होता है।[1]

ज्योतिस्सार :

आचार्य नरचन्द्रसूरि ने 'ज्योतिस्सार' (नारचन्द्र-ज्योतिष्) नामक ग्रथ की रचना वि० स० १२८० मे २५७ पद्यों मे की है। ये मलधारी गच्छ के आचार्य देवप्रभसूरि के शिष्य थे।

इस ग्रन्थ में कर्ता ने निम्नोक्त ४८ विषयों पर प्रकाश डाला है . १ तिथि, २ वार, ३ नक्षत्र, ४ योग, ५ राशि, ६ चन्द्र, ७ तारकाबल, ८ भद्रा, ९ कुलिक, १० उपकुलिक, ११ कण्टक, १२ अर्धप्रहर, १३ कालवेला, १४ स्थविर, १५-१६ शुभ-अशुभ, १७-१९ रव्युपकुमार, २० राजादियोग, २१ गण्डान्त, २२ पञ्चक, २३ चन्द्रावस्था, २४ त्रिपुष्कर, २५ यमल, २६ करण, २७ प्रस्थानक्रम, २८ दिशा, २९ नक्षत्रशूल, ३०. कील, ३१ योगिनी, ३२ राहु, ३३ हस, ३४ रवि, ३५. पाश, ३६ काल, ३७ वत्स, ३८ शुक्रगति, ३९ गमन, ४० स्थाननाम, ४१. विद्या, ४२ क्षौर, ४३ अम्बर, ४४ पात्र, ४५ नष्ट, ४६ रोगविगम, ४७ पैत्रिक, ४८ गेहारम्भ।[2]

नरचन्द्रसूरि ने चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र, प्राकृतदीपिका, अनर्घराघव-टिप्पण, न्यायकन्दली-टिप्पण और वस्तुपाल प्रशस्तिरूप (वि० स० १२८८ का गिरनार के जिनालय का) शिलालेख आदि रचे हैं। इन्होंने अपने गुरु आचार्य देवप्रभसूरि-रचित

---

१ देखिए—'निबन्धनिचय' पृ० २९७.

२ यह कृति प० क्षमाविजयजी द्वारा सपादित होकर सन् १९३८ में प्रकाशित हुई है।

पाण्डवचरित्र और आचार्य उदयप्रभसूरि-रचित 'धर्माभ्युदयकाव्य' का संशोधन किया था।

आचार्य नरचन्द्रसूरि के आदेश से मुनि गुणवल्लभ ने वि० सं० १२७१ में 'व्याकरणचतुष्कावचूरि' की रचना की।

ज्योतिस्सार-टिप्पण :

आचार्य नरचद्रसूरि-रचित 'ज्योतिस्सार' ग्रन्थ पर सागरचन्द्र मुनि ने १३३५ श्लोक-प्रमाण टिप्पण की रचना की है। खास कर 'ज्योतिस्सार' में दिये हुए यत्रों का उद्धार और उस पर विवेचन किया है। मगलाचरण में कहा गया है :

सरस्वती नमस्कृत्य यन्त्रकोद्धारटिप्पणम् ।
करिष्ये नारचन्द्रस्य मुग्धानां बोधहेतवे ॥

यह टिप्पण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

जन्मसमुद्र :

'जन्मसमुद्र' ग्रथ के कर्ता नरचन्द्र उपाध्याय हैं, जो कासहृद्गच्छ के उद्द्योतनसूरि के शिष्य सिंहसूरि के शिष्य थे। उन्होंने वि स १३२३ में इस ग्रथ की रचना की। आचार्य देवानन्दसूरि को अपने विद्यागुरु के रूप में स्वीकार करते हुए निम्न शब्दों में कृतज्ञताभाव प्रदर्शित किया है :

देवानन्दमुनीश्वरपदपङ्कजसेवकषट्चरणः ।
ज्योतिःशास्त्रमकार्षीद् नरचन्द्राख्यो मुनिप्रवरः ॥

यह ज्योतिष-विषयक उपयोगी लाक्षणिक ग्रन्थ है जो निम्नोक्त आठ कल्लोलों मे विभक्त है : १ गर्भसंभवादिलक्षण (पद्य ३१), २ जन्मप्रत्ययलक्षण (पद्य २९), ३ रिष्टयोग-तद्भगलक्षण (पद्य १०), ४ निर्वाणलक्षण (पद्य २०), ५ द्रव्योपार्जनराजयोगलक्षण (पद्य २६), ६ बाल्स्वरूपलक्षण (पद्य २०), ७ स्त्रीजातकस्वरूपलक्षण (पद्य १८), ८ नाभसादियोगदीक्षावस्थायुर्योगलक्षण (पद्य २३)।

इसमें लग्न और चन्द्रमा से समस्त फलों का विचार किया गया है। जातक का यह अत्यंत उपयोगी ग्रथ है।[1]

---

१ यह कृति अभी छपी नहीं है। इसकी ७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति ला० द० भा० सं० विद्यामंदिर, अहमदाबाद में है। यह प्रति १६ वी शताब्दी में लिखी गई है।

वेडाजातकवृत्ति :

'जन्मसमुद्र' पर नरचन्द्र उपाध्याय ने 'वेडाजातक' नामक स्वोपज्ञ-वृत्ति की रचना वि. स. १३२४ की माघ-शुक्ला अष्टमी (रविवार) के दिन की है। यह वृत्ति १०५० श्लोक-प्रमाण है। यह ग्रन्थ अभी छपा नहीं है।

नरचन्द्र उपाध्याय ने प्रश्नशतक, ज्ञानचतुर्विंशिका, लग्नविचार, ज्योतिष्-प्रकाश, ज्ञानदीपिका आदि ज्योतिष विषयक अनेक ग्रन्थ रचे हैं।

प्रश्नशतक :

कासहृद्गच्छीय नरचन्द्र उपाध्याय ने 'प्रश्नशतक' नामक ज्योतिष-विषयक ग्रथ वि० स० १३२४ में रचा है। इसमें करीब सौ प्रश्नों का समाधान किया है। यह ग्रथ छपा नहीं है।

प्रश्नशतक-अवचूरि :

नरचन्द्र उपाध्याय ने अपने 'प्रश्नशतक' ग्रन्थ पर वि स १३२४ मे स्वोपज्ञ अवचूरि की रचना की है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

ज्ञानचतुर्विंशिका :

कासहृद्गच्छीय उपाध्याय नरचन्द्र ने 'ज्ञानचतुर्विंशिका' नामक ग्रथ की २४ पद्यों में रचना करीब वि० स० १३२५ मे की है। इसमें लग्नानयन, होरा-द्यानयन, प्रश्नाक्षराल्लग्नानयन, सर्वलग्नग्रहबल, प्रश्नयोग, पतितादिज्ञान, पुत्र-पुत्रीज्ञान, दोषज्ञान, जयपृच्छा, रोगपृच्छा आदि विषयों का वर्णन है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।[१]

ज्ञानचतुर्विंशिका-अवचूरि :

'ज्ञानचतुर्विंशिका' पर उपाध्याय नरचन्द्र ने करीब वि० स० १३२५ में स्वोपज्ञ अवचूरि की रचना की है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

ज्ञानदीपिका :

कासहृद्गच्छीय उपाध्याय नरचन्द्र ने 'ज्ञानदीपिका' नामक ग्रन्थ की रचना करीब वि० स० १३२५ में की है।

---

१ इसकी १ पत्र की प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद में है। यह वि० स० १७०८ मे लिखी गई है।

महिमोदय मुनि ने 'ज्योतिष्-रत्नाकर' आदि ग्रन्थों की रचना भी की है जिनका परिचय आगे दिया गया है।

मानसागरीपद्धति :

'मानसागरी' नाम से अनुमान होता है कि इसके कर्ता मानसागर मुनि होंगे। इस नाम के अनेक मुनि हो चुके हैं इसलिये कौन-से मानसागर ने यह कृति बनाई इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

यह ग्रन्थ पद्यात्मक है। इसमें फलादेश-विषयक वर्णन है। प्रारंभ में आदिनाथ आदि तीर्थंकरों और नवग्रहों की स्तुति करके जन्मपत्री बनाने की विधि बताई है। आगे संवत्सर के ६० नाम, संवत्सर, युग, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार और जन्मलग्न-राशि आदि के फल, करण, दशा, अंतरदशा तथा उपदशा के वर्षमान, ग्रहों के भाव, योग, अपयोग आदि विषयों की चर्चा है। प्रसंगवश गणनाओं की भिन्न-भिन्न रीतियां बताई हैं। नवग्रह, गजचक्र, यमदंष्ट्राचक्र आदि चक्र और दशाओं के कोष्ठक दिये हैं।[1]

फलाफलविषयक-प्रश्नपत्र :

'फलाफलविषयक-प्रश्नपत्र' नामक छोटी सी कृति उपाध्याय यशोविजय गणि की रचना हो ऐसा प्रतीत होता है। वि० सं० १७३० में इसकी रचना हुई है। इसमें चार चक्र हैं और प्रत्येक चक्र में सात कोष्ठक हैं। बीच के चारों कोष्ठकों में "ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः" लिखा हुआ है। आसपास के छः-छः कोष्ठकों को गिनने से कुल २४ कोष्ठक होते हैं। इनमें ऋषभदेव से लेकर महावीरस्वामी तक के २४ तीर्थंकरों के नाम अंकित हैं। आसपास के २४ कोष्ठकों में २४ बातों को लेकर प्रश्न किये गए हैं :

१ कार्य की सिद्धि, २ मेघवृष्टि, ३ देश का सौख्य, ४ स्थानसुख, ५ ग्रामांतर, ६ व्यवहार, ७ व्यापार, ८ व्याजदान, ९ भय, १० चतुष्पाद, ११ सेवा, १२ सेवक, १३ धारणा, १४ बाधारुंधा, १५ पुररोध, १६. कन्यादान, १७ वर, १८ जयाजय, १९. मन्त्रौषधि, २० राज्यप्राप्ति, २१. अर्थचिन्तन, २२ संतान, २३ आगंतुक और २४ गतवस्तु।

उपर्युक्त २४ तीर्थंकरों में से किसी एक पर फलाफलविषयक छः-छः उत्तर हैं। जैसे ऋषभदेव के नाम पर निम्नोक्त उत्तर है

---

१ यह ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से वि० सं० १९६१ में प्रकाशित हुआ है।

शीघ्र सफला कार्यसिद्धिर्भविष्यति, अस्मिन् व्यवहारे मध्यम फलं दृश्यते, ग्रामान्तरे फल नास्ति, कष्टमस्ति, भव्यं स्थानसौख्य भविष्यति, अल्पा मेघवृष्टि संभाव्यते ।

उपर्युक्त २४ प्रश्नो के १४४ उत्तर सस्कृत मे हैं तथा प्रश्न कैसे निकालना, उसका फलाफल कैसे जानना—ये बातें उस समय की गुजराती भाषा मे दी गई हैं ।

अत मे 'प० श्रीनयविजयगणिशिष्यगणिजसविजयलिखितम्' ऐसा लिखा है ।[1]

उदयदीपिका :

उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० स० १७५२ मे 'उदयदीपिका' नामक ग्रथ की रचना मदनसिंह श्रावक के लिये की थी । इसमे ज्योतिष सबधी प्रश्नो और उनके उत्तरों का वर्णन है । यह ग्रथ अप्रकाशित है ।

प्रश्नसुन्दरी :

उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० स० १७५५ मे 'प्रश्नसुन्दरी' नामक ग्रथ की रचना की है । इसमें प्रश्न निकालने की पद्धति का वर्णन किया गया है । यह ग्रथ अप्रकाशित है ।

वर्षप्रबोध :

उपाध्याय मेघविजयजी ने 'वर्षप्रबोध' अपर नाम 'मेघमहोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की है । ग्रन्थ सस्कृत भाषा में है । कई अवतरण प्राकृत ग्रथों के भी हैं । इस ग्रथ का सबध 'स्थानाग' के साथ बताया गया है । समस्त ग्रन्थ तेरह अधिकारों में विभक्त है जिनमें निम्नाकित विषयों की चर्चा की गई है :

१ उत्पात, २ कर्पूरचक्र, ३ पद्मिनीचक्र, ४ मण्डलप्रकरण, ५ सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के फल तथा प्रतिमास के वायु का विचार, ६ वर्षा बरसाने और बन्द करने के मन्त्र-यन्त्र, ७ साठ सवत्सरों का फल, ८ राशियों पर ग्रहों के उदय और अस्त के वक्री का फल, ९ अयन-मास-पक्ष और दिन का विचार, १० सक्राति-फल, ११. वर्ष के राजा और मन्त्री आदि, १२ वर्षा का गर्भ, १३ विश्वा-आयव्यय-सर्वतोभद्रचक्र और वर्षा बतानेवाले शकुन ।

---

१. यह कृति 'जैन सशोधक' त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है ।

उन्होंने त्र्यम्बावती (खम्भात) में इस ग्रन्थ की रचना की थी।[1] 'ज्वरपराजय' नामक वैद्यक ग्रन्थ की रचना इन्होंने वि० सं० १६६२ में की है। उसी के आस-पास में इस कृति की भी रचना की होगी। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

जातकदीपिकापद्धति :

कर्ता ने इस ग्रन्थ की रचना कई प्राचीन ग्रन्थकारों की कृतियों के आधार पर की है।[3] इसमें वारस्पष्टीकरण, भावादिनयन, भौमादीनांबीजध्रुवकरण, लग्नस्पष्टीकरण, होराकरण, नवमांश, दशमांश, अन्तर्दशा, फलदशा आदि विषय पद्य में हैं। कुल ९४ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के कर्ता का नाम और रचना-समय अज्ञात है।

जन्मप्रदीपशास्त्र :

'जन्मप्रदीपशास्त्र' के कर्ता कौन हैं और ग्रन्थ कब रचा गया यह अज्ञात है। इसमें कुण्डली के १२ भुवनों के लग्नेश के बारे में चर्चा की गई है। ग्रन्थ पद्य में है।[4]

केवलज्ञानहोरा :

दिगम्बर जैनाचार्य चन्द्रसेन ने ३-४ हजार श्लोक-प्रमाण 'केवलज्ञानहोरा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। आचार्य ने ग्रन्थ के आरम्भ में कहा है

---

१ श्रीमद्गुर्जरदेशभूषणमणिर्त्र्यम्बावतीनामके,
श्रीपूर्णे नगरे बभूव सुगुरु श्रीभावरत्नाभिध।
तच्छिष्यो जयरत्न इत्यभिधया य पूर्णिमागच्छवाँ-
स्तेनेय क्रियते जनोपकृतये श्रीज्ञानरत्नावली ॥
इति प्रश्नलग्नोपरि ज्ञानरत्नावली सम्पूर्णा—पिटर्सन अलवर महाराजा लायब्रेरी केटलॉग।

२ अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में वि० सं० १८४७ में लिखी गई इसकी १२ पत्रों की प्रति है।

३ पुराविद्भिर्यदुक्तानि पद्यान्यादाय शोभनम्।
समील्य सोमयोग्यानि लेखयि(खि)ष्यामि शिशो मुदे ॥

४ इसकी ५ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है।

यह ग्रन्थ पॉच अध्यायों मे विभक्त है : १. गणिताध्याय, २. यन्त्रघटनाध्याय, ३ यन्त्ररचनाध्याय, ४. यन्त्रशोधनाध्याय और ५ यन्त्रविचारणाध्याय। इसमें कुल मिलाकर १८२ पद्य हैं।

इस ग्रन्थ की अनेक विशेषताएँ हैं। इसमें नाडीवृत्त के धरातल मे गोलपृष्ठस्थ सभी वृत्तो का परिणमन बताया गया है। क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्या का चापसाधन, क्रान्तिसाधन, द्युज्याखडसाधन, द्युज्याफलानयन, सौम्य यन्त्र के विभिन्न गणित के साधन, अक्षाश से उन्नताश साधन, ग्रन्थ के नक्षत्र, ध्रुव आदि से अभीष्ट वर्षों के ध्रुवादि साधन, नक्षत्रों का दृक्कर्मसाधन, द्वादश राशियो के विभिन्न वृत्तसम्बन्धी गणित के साधन, इष्ट शकु से छायाकरणसाधन, यन्त्रशोधनप्रकार और तदनुसार विभिन्न राशियों और नक्षत्रों के गणित के साधन, द्वादशभावो और नवग्रहो के गणित के स्पष्टीकरण का गणित और विभिन्न यन्त्रो द्वारा सभी ग्रहों के साधन का गणित अतीव सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रन्थ के ज्ञान से बहुत सरलता से पचाग बनाया जा सकता है।

यन्त्रराज-टीका :

'यन्त्रराज'[1] पर आचार्य महेन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य मलयेन्दुसूरि ने टीका लिखी है। इन्होंने मूल ग्रन्थ में निर्दिष्ट यन्त्रों को उदाहरणपूर्वक समझाया है। इसमें ७५ नगरों के अक्षाश दिये गये है। वेधोपयोगी ३२ तारों के सायन भोगशर भी दिये गये हैं। अयनवर्षगति ५४ विकला मानी गई है।

ज्योतिष्रत्नाकर :

मुनि लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय मुनि ने 'ज्योतिष्रत्नाकर' नामक कृति की रचना की है। मुनि महिमोदय वि० स० १७२२ में विद्यमान थे। वे गणित और फलित दोनों प्रकार की ज्योतिर्विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् थे।

यह ग्रथ फलित ज्योतिष का है। इसमें सहिता, मुहूर्त और जातक—इन तीन विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी अत्यन्त उपयोगी है। यह प्रकाशित नहीं हुआ है।

इसमे मुथशिल, मचकूल, शूर्लाव-उस्तरलाव आदि सज्ञाओ के प्रयोग मिलते है, जो मुस्लिम प्रभाव की सूचना देते है। इसमे निम्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है :

स्थानबल, कायबल, दृष्टिबल, दिक्फल, ग्रहावस्था, ग्रहमैत्री, राशिवैचित्र्य, षड्वर्गशुद्धि, लग्नज्ञान, अशकफल, प्रकारान्तर से जन्मदशाफल, राजयोग, ग्रहस्वरूप, द्वादश भावो की तत्त्वचिंता, केन्द्रविचार, वर्षफल, निधानप्रकरण, सेवधिप्रकरण, भोजनप्रकरण, ग्रामप्रकरण, पुत्रप्रकरण, रोगप्रकरण, जायाप्रकरण, सुरतप्रकरण, परचक्रामण, गमनागमन, गज अश्व खड्ग आदि चक्रयुद्धप्रकरण, सधिविग्रह, पुरुपनिर्णय, स्थानदोष, जीवितमृत्युफल, प्रवहणप्रकरण, वृष्टिप्रकरण, अर्धकाड, स्त्रीलाभप्रकरण आदि।[1]

ग्रन्थ के एक पद्य मे कर्ता ने अपना नाम इस प्रकार गुम्फित किया है :

श्रीहेलाशालिना योग्यमप्रभीकृतभास्करम्।
भसूक्ष्मेक्षिकया चक्रेऽरिभि॰ शास्त्रमदूषितम्॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण के आदि के दो वर्णों मे 'श्रीहेमप्रभसूरिभि' नाम अन्तर्निहित है।

जोइसहीर (ज्योतिषहीर) :

'जोइसहीर' नामक प्राकृत भाषा के ग्रथ-कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हुआ है। इसमे २८७ गाथाएँ है। ग्रन्थ के अन्त मे लिखा है कि 'प्रथमप्रकीर्णं समाप्तम्'। इससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ अधूरा है। इसमें शुभाशुभ तिथि, ग्रह की सबलता, शुभ घड़ियाँ, दिनशुद्धि, स्वरज्ञान, दिशाशूल, शुभाशुभ योग, व्रत आदि ग्रहण करने का मुहूर्त, क्षौर कर्म का मुहूर्त और ग्रह-फल आदि का वर्णन है।[2]

ज्योतिस्सार (जोइसहीर) :

'ज्योतिस्सार' (जोइसहीर) नामक ग्रन्थ की रचना खरतरगच्छीय उपाध्याय देवतिलक के शिष्य मुनि हीरकलश ने वि॰ स॰ १६२१ मे प्राकृत मे की है।

---

१ यह ग्रन्थ इण्डियन एस्ट्रोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, लाहौर से हिन्दी-अनुवादसहित प्रकाशित हुआ है। प॰ भगवानदास जैन ने 'जैन सत्य-प्रकाश' वर्ष १२, अंक १० में अनुवाद मे बहुत भूलें होने के सम्बन्ध में 'त्रैलोक्यप्रकाश का हिन्दी अनुवाद' शीर्षक लेख लिखा है।

२ यह ग्रन्थ प॰ भगवानदास जैन द्वारा हिन्दी मे अनूदित होकर नरसिंह प्रेस, कलकत्ता मे प्रकाशित हुआ है।

पंचागपत्रविचार :

'पचागपत्रविचार' नामक ग्रथ की किसी जैन मुनि ने रचना की है। इसमे पचाग का विषय विशद रीति से निर्दिष्ट है। ग्रथ का रचना-समय ज्ञात नहीं है। ग्रन्थ प्रकाशित भी नहीं हुआ है।

वलिरामानन्दसारसंग्रह :

उपाध्याय भुवनकीर्ति के शिष्य प० लाभोदय मुनि ने 'वलिरामानन्दसारसग्रह' नामक ज्योतिष-ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय निश्चित नहीं है। इनके गुरु उपाध्याय भुवनकीर्ति अच्छे कवि थे। इनके वि० स० १६६७ से १७६० तक के कई रास उपलब्ध हैं। इसलिये प० लाभोदय मुनि का समय इसी के आस पास हो सकता है।

इस ग्रन्थ में सामान्य मुहूर्त्त, मुहूर्त्ताधिकार, नाडीचक्र नासिकाविचार, शकुनविचार, स्वप्नाध्याय, अङ्गोपाङ्गस्फुरण, सामुद्रिक सक्षेप, लग्ननिर्णयविधि, नर स्त्री-जन्मपत्रीनिर्णय, योगोत्पत्ति, मासादिविचार, वर्षशुभाशुभ फल आदि विषयों का विवरण है। यह एक सग्रहग्रथ[1] मालूम होता है।

गणसारणी :

'गणसारणी' नामक ज्योतिष-विषयक ग्रन्थ की रचना पार्श्वचन्द्रगच्छीय जगच्चन्द्र के शिष्य लक्ष्मीचन्द्र ने वि० स० १७६० में की है।[2]

इस ग्रथ में तिथिध्रुवाक, अतराकी, तिथिकेन्द्रचक्र, नक्षत्रध्रुवाक, नक्षत्रचक्र, योगकेन्द्रचक्र, तिथिसारणी, तिथिगणखेमा, तिथि-केन्द्रघटी अशफल, नक्षत्रफल-सारणी, नक्षत्रकेन्द्रफल, योगगणकोष्ठक आदि विषय है।

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

---

१ इसकी अपूर्ण प्रति ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है। प्रति-लेखन १९ वीं शती का है।

२ तद्विनेया पाठका श्रीजगच्चन्द्रा सुकीर्तय'।
शिष्येण लक्ष्मीचन्द्रेण कृतेय सारणी शुभा।
सवत् ख-र्वश्वेन्दु (१७६०) मिते वहुले पूर्णिमातिथौ।
कृता परोपकृत्यर्थे शोधनीया च धीधनै ॥

लालचन्द्रीपद्धति :

मुनि कल्याणनिधान के शिष्य लब्धिचन्द्र ने 'लालचन्द्रीपद्धति' नामक ग्रथ वि० स० १७५१ मे रचा है।

इस ग्रन्थ मे जातक के अनेक विषय हैं। कई सारणियाँ दी है। अनेक ग्रन्थो के उद्धरणों और प्रमाणो से यह ग्रथ परिपूर्ण है।[१]

टिप्पनकविधि :

मतिविशाल गणि ने 'टिप्पनकविधि' नामक ग्रथ[२] प्राकृत मे लिखा है। इसका रचना-समय ज्ञात नहीं है।

इस ग्रथ मे पञ्चागतिथिकर्षण, सक्रातिकर्षण, नवग्रहकर्षण, वक्रातीचार, सरऽगतिकर्पण, पञ्चग्रहास्तमितोदितकथन, भद्राकर्पण, अधिकमासकर्षण, तिथि-नक्षत्र-योगवर्धन-घटनकर्पण, दिनमानकर्पण आदि १३ विषयो का विशद वर्णन है।

होरामकरन्द :

आचार्य गुणाकरसूरि ने 'होरामकरन्द' नामक ग्रथ की रचना की है। रचना समय ज्ञात नहीं है परन्तु १५ वीं शताब्दी होगा ऐसा अनुमान है। होरा अर्थात् राशि का द्वितीयाश।

इस ग्रन्थ मे ३१ अध्याय है . १ राशिप्रभेद, २ ग्रहस्वरूपबलनिरूपण, ३ वियोनिजन्म, ४ निषेक, ५ जन्मविधि, ६ रिष्ट, ७ रिष्टभग, ८ सर्वग्रहारिष्टभग, ९ आयुर्दा, १० दशम-अध्याय (?), ११ अन्तर्दशा, १२ अष्टकवर्ग, १३ कर्माजीव, १४ राजयोग, १५ नाभसयोग, १६ वोसिवेस्युभयचरी-योग, १७ चन्द्रयोग, १८ ग्रहप्रव्रज्यायोग, १९ देवनक्षत्रफल, २० चन्द्रराशिफल, २१ सूर्यादिराशिफल, २२ रश्मिचिन्ता, २३ दृष्ट्यादिफल, २४ भावफल, २५ आश्रयाध्याय, २६ कारक, २७ अनिष्ट, २८ स्त्रीजातक, २९ निर्याण, ३० द्रेष्काणस्वरूप, ३१ प्रश्नजातक।

---

१ इसकी १४८ पत्रों की १८ वीं शती में लिखी गई प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर में है।

२ इसकी १ पत्र की वि० स० १६९४ मे लिखी गई प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर के सग्रह मे है।

यह ग्रन्थ छपा नहीं है।'

हायनसुन्दर :

आचार्य पद्मसुन्दरसूरि ने 'हायनसुन्दर' नामक ज्योतिषविषयक ग्रन्थ की रचना की है।[1]

विवाहपटल :

'विवाहपटल' नाम के एक से अधिक ग्रन्थ हैं। अजैन कृतियों में शार्ङ्गधर ने शक सं० १४०० (वि० सं० १५३५) में और पीताम्बर ने शक सं० १४४४ (वि० सं० १५७९) में इनकी रचना की है। जैन कृतियों में 'विवाहपटल' के कर्ता अभयकुशल या उभयकुशल का उल्लेख मिलता है। इसकी जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसमें १३० पद्य हैं, बीच-बीच में प्राकृत गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। इसमें निम्नोक्त विषयों की चर्चा है

> योनि-नाडीगणश्चैव स्वामिमित्रैस्तथैव च।
> जुञ्जा प्रीतिश्च वर्णश्च लीहा सप्तविधा स्मृता ॥

नक्षत्र, नाडीवेधयन्त्र, राशिस्वामी, ग्रहशुद्धि, विवाहनक्षत्र, चन्द्र सूर्य-स्पष्टीकरण, एकार्गल, गोधूलिकाफल आदि विषयों का विवेचन है।

यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।[2]

करणराज :

रुद्रपल्लीगच्छीय जिनसुन्दरसूरि के शिष्य मुनिसुन्दर ने वि० सं० १६५५ में 'करणराज' नामक ग्रन्थ[3] की रचना की है।

यह ग्रन्थ दस अध्यायों, जिनको कर्ता ने 'व्यय' नाम से उल्लिखित किया है, में विभाजित है . १ ग्रहमध्यमसाधन, २ ग्रहस्पष्टीकरण, ३ प्रश्नसाधक, ४ चन्द्रग्रहण-साधन, ५ सूर्यसाधक, ६ त्रुटित होने से विषय ज्ञात नहीं होता, ७ उदयास्त, ८ ग्रहयुद्धनक्षत्रसमागम, ९ पातव्यय, १० निमिशक (?)। अन्त में प्रशस्ति है।

---

१ इसकी ४१ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह में है।

२ इसकी प्रति बीकानेरस्थित अनूप संस्कृत लायब्रेरी के संग्रह में है।

३ इसकी ७ पत्रों की अपूर्ण प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में है।

दीक्षा-प्रतिष्ठाशुद्धि :

उपाध्याय समयसुन्दर ने 'दीक्षा प्रतिष्ठाशुद्धि' नामक ज्योतिषविषयक ग्रन्थ[1] की वि० स० १६८५ मे रचना की है।

यह ग्रन्थ १२ अध्यायों मे विभाजित है १ ग्रहगोचरशुद्धि, २ वर्षशुद्धि, ३ अयनशुद्धि, ४ मासशुद्धि, ५ पक्षशुद्धि, ६ दिनशुद्धि, ७ वारशुद्धि, ८ नक्षत्रशुद्धि, ९. योगशुद्धि, १० करणशुद्धि, ११ लग्नशुद्धि और १२ ग्रहशुद्धि।

कर्ता ने प्रशस्ति मे कहा है कि वि० स० १६८५ मे लूणकरणसर मे प्रशिष्य वाचक जयकीर्ति, जो ज्योतिष-शास्त्र मे विचक्षण थे, की सहायता से इस ग्रन्थ की रचना की। प्रशस्ति इस प्रकार है .

दीक्षा-प्रतिष्ठाया या शुद्धिः सा निगदिता हिताय नृणाम्।
श्रीलूणकरणसरसि स्मरशर-वसु-षड्डुपति (१६८५) वर्षे ॥ १ ॥
ज्योतिष्शास्त्रविचक्षणवाचकजयकीर्तिसहायैः।
समयसुन्दरोपाध्यायसंदर्भितो ग्रन्थः ॥ २ ॥

विवाहरत्न :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनोदयसूरि ने 'विवाहरत्न' नामक ग्रन्थ[2] की रचना की है।

इस ग्रन्थ मे १५० श्लोक हैं, १३ पत्रों की प्रति जैसलमेर में वि० स० १८३३ में लिखी गई है।

ज्योतिप्रकाश :

आचार्य ज्ञानभूषण ने 'ज्योतिप्रकाश' नामक ग्रन्थ[3] की रचना वि० स० १७५५ के बाद कभी की है।

---

१ इसकी एकमात्र प्रति बीकानेर के खरतरगच्छ के आचार्यशाखा के उपाश्रय-स्थित ज्ञानभडार मे है।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति मोतीचन्द खजाची के सग्रह में है।

३. इसकी हस्तलिखित प्रति देहली के धर्मपुरा के मन्दिर में सगृहीत है।

यह ग्रन्थ सात प्रकरणों मे विभक्त है : १. तिथिद्वार, २ वार, ३ तिथि-घटिका, ४ नक्षत्रसाधन, ५ नक्षत्रघटिका, ६ इस प्रकरण का पत्राक ४४ नष्ट होने से स्पष्ट नहीं है, ७ इस प्रकरण के अन्त में 'इति चतुर्दश, पचदश, सप्तदश, रूपैश्चतुर्भिर्द्वारैः सपूर्णोऽयं ज्योतिप्रकाश ।' ऐसा उल्लेख है।

सात प्रकरण पूर्ण होने के पश्चात् ग्रन्थ की समाप्ति का सूचन है परन्तु प्रशस्ति के कुछ पद्य अपूर्ण रह जाते हैं।

ग्रन्थ मे 'चन्द्रप्रज्ञप्ति', 'ज्योतिष्करण्डक' की मलयगिरि-टीका आदि के उल्लेख के साथ एक जगह विनयविजय के 'लोकप्रकाश' का भी उल्लेख है। अत. इसकी रचना वि० स० १७३० के बाद ही सिद्ध होती है।[1]

ज्ञानभूषण का उल्लेख प्रत्येक प्रकाश के अन्त मे पाया जाता है और अकबर का भी उल्लेख कई बार हुआ है।

खेटचूला :

आचार्य ज्ञानभूषण ने 'खेटचूला' नामक ग्रन्थ की रचना की, ऐसा उल्लेख उनके स्वरचित ग्रन्थ 'ज्योतिप्रकाश' मे है।

षष्टिसंवत्सरफल :

दिगबराचार्य दुर्गदेवरचित 'षष्टिसवत्सरफल' नामक सस्कृत ग्रथ की ६ पत्रों की प्रति[2] मे सवत्सरों के फल का निर्देश है।

लघुजातक-टीका :

'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ की शक-स० ४२७ (वि० स० ५६२) में रचना करनेवाले वराहमिहिर ने 'लघुजातक' की रचना की है। यह होराशाखा के 'बृहज्जातक' का सक्षिप्त रूप है। ग्रन्थ में लिखा है :

होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि ।
यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं संप्रवक्ष्यामि ॥

---

१ द्वितीय प्रकाश में वि० स० १७२५, १७३०, १७३५, १७४०, १७४५, १७५०, १७५५ के भी उल्लेख हैं। इसके अनुसार वि० सं० १७५५ के बाद में इसकी रचना सम्भव है।

२ यह प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद मे है।

हरिभट्ट नामक विद्वान् ने 'ताजिकसार' नामक ग्रन्थ की रचना वि० स० १५८० के आसपास में की है। हरिभट्ट को हरिभद्र नाम से भी पहिचाना जाता है। इस ग्रन्थ पर अचलगच्छीय मुनि सुमतिहर्ष ने वि० स० १६७७ मे विष्णुदास राजा के राज्यकाल मे टीका लिखी है।[1]

करणकुतूहल-टीका :

ज्योतिर्गणितज्ञ भास्कराचार्य ने 'करणकुतूहल' की रचना वि० स० १२४० के आसपास में की है। उनका यह ग्रथ करण विषयक है। इसमे मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया गया है। ग्रन्थ मे निम्नोक्त दस अधिकार है: १. मध्यम, २ स्पष्ट, ३ त्रिप्रश्न, ४ चन्द्र-ग्रहण, ५. सूर्य-ग्रहण, ६ उदयास्त, ७ शृंगोन्नति, ८ ग्रहयुति, ९ पात और १० ग्रहणसभव। कुल मिलाकर १३९ पद्य है। इस पर सोढल, नार्मदात्मज पद्मनाभ, शङ्कर कवि आदि की टीकाएँ हैं।

इस 'करणकुतूहल' पर अचलगच्छीय हर्षरत्न मुनि के शिष्य सुमतिहर्ष मुनि ने वि० स० १६७८ में हेमाद्रि के राज्य मे 'गणककुमुदकौमुदी' नामक टीका रची है। इसमे उन्होंने लिखा है .

> करणकुतूहलवृत्तावेतस्या सुमतिहर्षरचितायाम्।
> गणककुमुदकौमुद्यां विवृता स्फुटता हि खेटानाम्॥

इस टीका का ग्रन्थाग्र १८५० श्लोक है।[2]

ज्योतिर्विदाभरण-टीका ·

'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ज्योतिषशास्त्र का ग्रथ 'रघुवश' आदि काव्यों के कर्ता कवि कालिदास की रचना है, ऐसा ग्रन्थ में लिखा है परन्तु यह कथन ठीक नहीं है। इसमें ऐन्द्रयोग का तृतीय अश व्यतीत होने पर सूर्य-चन्द्रमा का क्रातिसाम्य बताया गया है, इससे इसका रचनाकाल शक-स० ११६४ (वि० स० १२९९) निश्चित होता है। अत' रघुवशादि काव्यों के निर्माता कालिदास इस ग्रन्थ के कर्ता नहीं हो सकते। ये कोई दूसरे ही कालिदास होने चाहिये। एक विद्वान् ने तो यह 'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रथ १६ वीं शताब्दी का होने का निर्णय किया है। यह ग्रथ मुहूर्तविषयक है।

---

१ यह टीका-ग्रथ मूल के साथ वेंकटेश्वर प्रेस, बबई से प्रकाशित हुआ है।

२ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के सग्रह मे इसकी २९ पत्रों की प्रति है।

ग्रहलाघव-टीका :

गणेश नामक विद्वान् ने 'ग्रहलाघव' की रचना की है। वे बहुत बडे ज्योतिषी थे। उनके पिता का नाम था केशव और माता का नाम था लक्ष्मी। वे समुद्रतटवर्ती नांदगाव के निवासी थे। सोलहवीं शती के उत्तरार्ध मे वे विद्यमान थे।

ग्रहलाघव की विशेषता यह है कि इसमें ज्याचाप का संबंध बिलकुल नहीं रखा गया है तथापि स्पष्ट सूर्य लाने मे करणग्रंथों से भी यह बहुत सूक्ष्म है। यह ग्रंथ निम्नलिखित १४ अधिकारों मे विभक्त है : १. मध्यमाधिकार, २ स्पष्टाधिकार, ३ पञ्चताराधिकार, ४ त्रिप्रश्न, ५. चन्द्रग्रहण, ६. सूर्यग्रहण, ७ मासग्रहण, ८ स्थूलग्रहसाधन, ९ उदयास्त, १० छाया, ११ नक्षत्र-छाया, १२ शृंगोन्नति, १३ ग्रहयुति और १४. महापात। सब मिलाकर इसमे १८७ श्लोक है।

इस 'ग्रहलाघव' ग्रन्थ पर चारित्रसागर के शिष्य कल्याणसागर के शिष्य यशस्वतसागर (जसवतसागर) ने वि० स० १७६० में टीका रची है।

इस 'ग्रहलाघव' पर राजसोम मुनि ने टिप्पण लिखा है।

मुनि यशस्वत्सागर ने जैनसप्तपदार्थी (स० १७५७), प्रमाणवादार्थ (स० १७५९), भावसप्ततिका (स० १७४०), यशोराजपद्धति (स० १७६२), वादार्थनिरूपण, स्याद्वादमुक्तावली, स्तवनरत्न आदि ग्रथ रचे हैं।

चन्द्रार्की-टीका :

मोढ दिनकर ने 'चन्द्रार्की' नामक ग्रथ की रचना की है। इस ग्रंथ मे ३३ श्लोक है, सूर्य और चन्द्रमा का स्पष्टीकरण है। ग्रथ में आरभ वर्ष शक स० १५०० है।

इस 'चन्द्रार्की' ग्रन्थ पर तपागच्छीय मुनि कृपाविजयजी ने टीका रची है।

षटपञ्चाशिका-टीका :

दसवाँ प्रकरण

शकुन

शकुनरहस्य :

वि० सं० १२७० में 'विवेकविलास' की रचना करनेवाले वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि ने 'शकुनरहस्य' नामक शकुनशास्त्रविषयक ग्रंथ की रचना की है। आचार्य जिनदत्तसूरि 'कविशिक्षा' नामक ग्रंथ की रचना करनेवाले आचार्य अमरचन्द्रसूरि के गुरु थे।

शकुनरहस्य नौ प्रस्तावों में विभक्त पद्यात्मक कृति है। इसमें संतान के जन्म, लग्न और शयनसंबंधी शकुन, प्रभात में जाग्रत होने के समय के शकुन, दतून और स्नान करने के शकुन, परदेश जाने के समय के शकुन और नगर में प्रवेश करने के शकुन, वर्षासंबंधी परीक्षा, वस्तु के मूल्य में वृद्धि और कमी, मकान बनाने के लिये जमीन की परीक्षा, जमीन खोदते हुए निकली हुई वस्तुओं का फल, स्त्री को गर्भ नहीं रहने का कारण, संतानों की अपमृत्युविषयक चर्चा, मोती, हीरा आदि रत्नों के प्रकार और तदनुसार उनके शुभाशुभ फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।[1]

शकुनशास्त्र :

'शकुनशास्त्र', जिसका दूसरा नाम 'शकुनसारोद्धार' है, की वि० सं० १३३८ में आचार्य माणिक्यसूरि ने रचना की है।[2] इस ग्रंथ में १. दिक्स्थान, २. ग्राम्यनिमित्त, ३. तित्तिरि, ४. दुर्गा, ५. लट्वा-होलिका-क्षुत, ६. वृक, ७. गात्रेय

---

१. पं० हीरालाल हंसराज ने सानुवाद 'शकुनरहस्य' का 'शकुनशास्त्र' नाम से सन् १८९९ में जामनगर से प्रकाशन किया है।

२. सारं गरीयः शकुनार्णवेभ्यः पीयूषमेतद् रचयाचकार।
माणिक्यसूरिः स्वगुरुप्रसादाद् यत्पानतः स्याद् विबुधप्रमोदः ॥ ४१ ॥
वसु-वह्नि-वह्नि-चन्द्रेऽब्दे श्वकयुजि पूर्णिमातिथौ रचितः।
शकुनानामुद्धारोऽभ्यासवशादस्तु चिद्रूपः ॥ ४२ ॥

८. हरिण, ९ भषण, १० मिश्र और ११ सग्रह—इस प्रकार ११ विषयों का वर्णन है। कर्ता ने अनेक शाकुनविषयक ग्रथो के आधार पर इस ग्रथ की रचना की है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

शकुनरत्नावलि–कथाकोश :

आचार्य अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने 'शकुनरत्नावलि' नामक ग्रथ की रचना की है।

शकुनावलि :

'शकुनावलि' नाम के कई ग्रथ है।

एक 'शकुनावलि' के कर्ता गौतम महर्षि थे, ऐसा उल्लेख मिलता है।

दूसरी 'शकुनावलि' के कर्ता आचार्य हेमचन्द्रसूरि माने जाते है।

तीसरी 'शकुनावलि' किसी अज्ञात विद्वान् ने रची है।

तीनों के कर्ताविषयक उल्लेख सदिग्ध हैं। ये प्रकाशित भी नहीं हैं।

सउणदार (शकुनद्वार) :

'सउणदार' नामक ग्रथ[1] प्राकृत भाषा मे है। यह अपूर्ण है। इसमें कर्ता का नाम नहीं दिया गया है।

शकुनविचार :

'शकुनविचार' नामक कृति[2] ३ पत्रो मे है। इसकी भाषा अपभ्रश है। इसमें किसी पशु के दाहिनी या बायीं ओर होकर गुजरने के शुभाशुभ फल के विषय मे विचार किया गया है। यह अज्ञातकर्तृक रचना है।

---

१ यह पाटन के भडार मे है।

२ इसकी प्रति पाटन के जैन भडार मे है।

ग्यारहवां प्रकरण

निमित्त

जयपाहुड :

'जयपाहुड'[1] निमित्तशास्त्र का ग्रंथ है। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। इसे जिनभाषित कहा गया है। यह ईसा की १० वीं शताब्दी के पूर्व की रचना है। प्राकृत मे रचा हुआ यह ग्रंथ अतीत, अनागत आदि से सम्बन्धित नष्ट, मुष्टि, चिंता, विकल्प आदि अतिशयो का बोध कराता है। इससे लाभ—अलाभ का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें ३७८ गाथाएँ हैं जिनमे सकट—विकटप्रकरण, उत्तराधरप्रकरण, अभिघात, जीवसमास, मनुष्यप्रकरण, पक्षिप्रकरण, चतुष्पद, धातुप्रकृति, धातुयोनि, मूलभेद, मुष्टिविभागप्रकरण-वर्ण, गध-रस-स्पर्शप्रकरण, नष्टिकाचक्र, चिंताभेदप्रकरण, तथा लेखगडिकाधिकार मे सख्याप्रमाण, कालप्रकरण, लाभगडिका, नक्षत्रगडिका, स्ववर्गसयोगकरण, परवर्गसयोगकरण, सिंहावलोकितकरण, गजविलुलित, गुणाकारप्रकरण, अस्त्र-विभागप्रकरण आदि से सम्बन्धित विवेचन है।

निमित्तशास्त्र :

इस 'निमित्तशास्त्र' नामक ग्रन्थ[2] के कर्ता है ऋषिपुत्र। ये गर्ग नामक आचार्य के पुत्र थे। गर्ग स्वय ज्योतिष के प्रकाड पडित थे। पिता ने पुत्र को ज्योतिष का ज्ञान विरासत मे दिया। इसके सिवाय ग्रथकर्ता के सबध मे और कुछ पता नहीं लगता। ये कब हुए, यह भी ज्ञात नहीं है।

इस ग्रन्थ मे १८७ गाथाएँ है जिनमे निमित्त के भेद, आकाश-प्रकरण, चद्र-प्रकरण, उत्पात-प्रकरण, वर्षा-उत्पात, देव-उत्पातयोग, राज उत्पातयोग,

---

१ यह ग्रन्थ चूडामणिसार-सटीक के साथ सिंघी जैन ग्रथमाला, बबई से प्रकाशित हुआ है।

२ यह प० लालाराम शास्त्री द्वारा हिंदी मे अनूदित होकर वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, शोलापुर से सन १९४१ मे प्रकाशित हुआ है।

'धवला-टीका' मे उल्लेख है कि 'योनिप्राभृत' मे मन्त्र-तन्त्र की शक्ति का वर्णन है और उसके द्वारा पुद्गलानुभाग जाना जा सकता है। आगमिक व्याख्याओं के उल्लेखानुसार आचार्य सिद्धसेन ने 'जोणिपाहुड' के आधार से अश्व बनाये थे। इसके बल से महिषों को अचेतन किया जा सकता था और धन पैदा किया जा सकता था। 'विशेषावश्यक-भाष्य' (गाथा १७७५) की मलधारी हेमचन्द्र-सूरिकृत टीका में अनेक विजातीय द्रव्यो के सयोग से सर्प, सिंह आदि प्राणी और मणि, सुवर्ण आदि अचेतन पदार्थ पैदा करने का उल्लेख मिलता है। कुवलयमालाकार के कथनानुसार 'जोणिपाहुड' में कही गई बात कभी असत्य नहीं होती। जिनेश्वरसूरि ने अपने 'कथाकोशप्रकरण' के सुन्दरीदत्तकथानक मे इस शास्त्र का उल्लेख किया है।[1] 'प्रभावकचरित' (५, ११५-१२७) मे इस ग्रन्थ के बल से मछली और सिंह बनाने का निर्देश है। कुलमण्डनसूरि द्वारा वि० सं० १४७३ में रचित 'विचारामृतसग्रह' (पृ० ९) मे 'योनिप्राभृत' को पूर्वश्रुत से चला आता हुआ स्वीकार किया गया है।[2] 'योनिप्राभृत' मे इस प्रकार उल्लेख है :

अग्गेणिपुव्वनिग्गयपाहुडसत्थस्स मज्झयारम्मि ।
किंचि उद्देसदेसं धरसेणो वज्जियं भणइ ॥
गिरिउज्जितठिएण पच्छिमदेसे सुरट्ठगिरिनयरे ।
वुड्ढंतं उद्धरियं दूसमकालप्पयावम्मि ॥

—प्रथम खण्ड

अट्ठावीससहस्सा गाहाणं जत्थ वन्निया सत्थे ।
अग्गेणिपुव्वमज्झे संखेवं वित्थरे मुत्तुं ॥

—चतुर्थ खण्ड

इस कथन से ज्ञात होता है कि अग्रायणीय पूर्व का कुछ अंश लेकर धरसेनाचार्य ने इस ग्रंथ का उद्धार किया। इसमें पहले अट्ठाईस हजार गाथाएँ थीं, उन्हींको संक्षिप्त करके 'योनिप्राभृत' में रखा है।[3]

---

१ जिणभासियपुव्वगए जोणीपाहुडसुए समुद्दिट्ठं ।
एयपि सयरज्जे कायव्वं धीरपुरिसेहिं ॥

२ देखिये—हीरालाल र० कापडिया आगमोनुं दिग्दर्शन, पृ० २३४–२३७

३ इस अप्रकाशित ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पूना में मौजूद है।

चाहिए और मात्राओं को चौगुना करना चाहिए तथा इनका जो योगफल आए उसमे सात का भाग देना चाहिए। यदि शेष कुछ रहे तो रोगी अच्छा होगा।'

पण्हावागरण (प्रश्नव्याकरण) :

'पण्हावागरण' नामक दसवे अग आगम से भिन्न इस नाम का एक ग्रथ निमित्तविषयक है, जो प्राकृतभाषा में गाथाबद्ध है। इसमे ४५० गाथाएँ है। इसकी ताड़-पत्रीय प्रति पाटन के ग्रथभडार मे है। उसके अत मे 'लीलावती' नामक टीका भी (प्राकृत मे) है।

इस ग्रन्थ मे निमित्त के सब अगो का निरूपण नहीं है। केवल जातकविषयक प्रश्नविद्या का वर्णन किया गया है। प्रश्नकर्ता के प्रश्न के अक्षरो मे ही फलादेश बता दिया जाता है। इसमे समस्त पदार्थों को जीव, धातु और मूल— इन तीन भेदों में विभाजित किया गया है तथा प्रश्नों द्वारा निर्णय करने के लिये अवर्ग, कवर्ग आदि नामो से पाच वर्गों मे नौ-नौ अक्षरों के समूहों मे बॉटा गया है। इससे यह विद्या वर्गकेवली के नाम से कही जाती है। चूडामणिशास्त्र मे भी यही पद्धति है।

इस ग्रथ पर तीन अन्य टीकाओं के होने का उल्लेख मिलता है : १. चूड़ामणि, २ दर्शनज्योति जो लींबडी-भडार मे है और ३. एक टीका जैसलमेर-भडार में विद्यमान है।

यह ग्रथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

साणरुय (श्वानरुत) :

'साणरुय' नामक ग्रथ[2] के कर्ता का नाम अज्ञात है परतु मगलाचरण मे 'नमिऊण जिणेसर महावीर' उल्लेख होने से किसी जैनाचार्य की रचना होने का निश्चय होता है। इसमें दो प्रकरण है गमनागमन-प्रकरण (२० गाथाओं मे) और जीवित मरणप्रकरण (१० गाथाओं मे)। इस ग्रथ मे कुत्ते की भिन्न-भिन्न आवाजो के आधार से गमन-आगमन, जीवित-मरण इत्यादि बातो का निरूपण किया गया है।

---

१ यह ग्रंथ डा० ए० एम० गोपाणी द्वारा सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रथ-माला, बबई से सन १९४० मे प्रकाशित हुआ है।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति पाटन के भडार में है।

स्थान की ओर जाती हैं, यह देखकर भविष्य मे होनेवाली शुभाशुभ घटनाओ का वर्णन किया गया है।

प्रणष्टलाभादि :

'प्रणष्टलाभादि' नामक प्राकृत भाषा मे रची हुई ५ पत्रो की प्रति पाटन के जैन ग्रथ-भडार में है। मगलाचरण मे 'सिद्धे, जिणे' आदि शब्दों का प्रयोग होने से इस कृति के जैनाचार्यरचित होने का निर्णय होता है। इसमें गतवस्तु-लाभ, बध-मुक्ति और रोगविषयक चर्चा है। जीवन और मरणसबधी विचार भी किया गया है।

नाडीवियार (नाडीविचार) :

किसी अज्ञात विद्वान् द्वारा प्राकृत भाषा मे रची हुई 'नाडीविचार' नामक कृति पाटन के जैन भडार मे है। इसमे किस कार्य मे दायीं या बायीं नाडी शुभ किंवा अशुभ है, इसका विचार किया गया है।

मेघमाला :

अज्ञात ग्रथकार द्वारा प्राकृत भाषा में रची हुई ३२ गाथाओ की 'मेघ-माला' नाम की कृति पाटन के जैन ग्रथ-भडार मे है। इसमे नक्षत्रों के आधार पर वर्षा के चिह्नों और उनके आधार पर शुभ-अशुभ फलो की चर्चा है।

छींकविचार :

'छींकविचार' नामक कृति प्राकृत भाषा मे है। लेखक का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इसमें छींक के शुभ-अशुभ फलों के बारे मे वर्णन है। इसकी प्रति पाटन के भडार में है।

प्रियकरनृपकथा (पृ० ६–७) मे किसी प्राकृत ग्रथ का अवतरण देते हुए प्रत्येक दिशा और विदिशा मे छींक का फल बताया गया है।

सिद्धपाहुड (सिद्धप्राभृत) :

जिस ग्रथ में अञ्जन, पादलेप, गुटिका आदि का वर्णन था वह 'सिद्धपाहुड' ग्रथ आज अप्राप्य है।

पादलिप्तसूरि और नागार्जुन पादलेप करके आकाशमार्ग से विचरण करते थे। आर्य सुस्थितसूरि के दो क्षुल्लक शिष्य आखों में अजन लगाकर अदृश्य होकर दुष्काल में चद्रगुप्त राजा के साथ में बैठकर भोजन करते थे। 'समरा-

की विधियों का वर्णन किया है। इसमें बलयामक आदि नाना यामकों का उल्लेख तथा उपयोग किया गया है। विषय का मर्म ८४ चक्रों के निदर्शन द्वारा सुस्पष्ट कर दिया गया है।

तांत्रिकों में प्रचलित मारण, मोहन, उच्चाटन आदि षट्कर्मों तथा मंत्रों का भी इसमें उल्लेख किया गया है।

नरपतिजयचर्या-टीका :

हरिवंश नामक किसी जैनेतर विद्वान् ने 'नरपतिजयचर्या' पर संस्कृत में टीका रची है। कहीं-कहीं हिंदी भाषा और हिंदी पद्यों के अवतरण भी दिये हैं। यह टीका आधुनिक है। शायद ४०–५० वर्ष पहले लिखी गई होगी।

हस्तकांड :

'हस्तकांड' नामक ग्रंथ की रचना आचार्य चन्द्रसूरि के शिष्य पार्श्वचन्द्र ने १०० पद्यों में की है। प्रारंभ में वर्धमान जिनेश्वर को नमस्कार करके उत्तर और अधर-संबंधी परिभाषा बताई है। इसके बाद लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवित-मरण, भूभंग (जमीन और छत्र का पतन), मनोगत विचार, वर्णों का धर्म, संन्यासी वगैरह का धर्म, दिशा, दिवस आदि का काल-निर्णय, अर्घकांड, गर्भस्थ संतान का निर्णय, गमनागमन, वृष्टि और शल्योद्धार आदि विषयों की चर्चा है। यह ग्रंथ अनेक ग्रंथों के आधार से रचा गया है।[2]

मेघमाला :

हेमप्रभसूरि ने 'मेघमाला' नामक ग्रंथ वि० सं० १३०५ के आस-पास में रचा है। इसमें दगगर्भ का बलविशोधक, जलमान, वातस्वरूप, विद्युत् आदि विषयों पर विवेचन है। कुल मिलाकर १९९ पद्य हैं।

ग्रंथ के अंत में कर्ता ने लिखा है :

देवेन्द्रसूरिशिष्यैस्तु श्रीहेमप्रभसूरिभिः।
मेघमालाभिधं चक्रे त्रिभुवनस्य दीपकम् ॥

यह ग्रंथ छपा नहीं है।

---

१ यह ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२ श्रीचन्द्राचार्यशिष्येण पार्श्वचन्द्रेण धीमता।
उद्धृत्यानेकशास्त्राणि हस्तकाण्डं विनिर्मितम् ॥१००॥

बारहवां प्रकरण

स्वप्न

सुविणदार (स्वप्नद्वार) :

प्राकृत भाषा की ६ पत्रों की 'सुविणदार' नाम की कृति पाटन के जैन भंडार में है। इसमें कर्ता का नाम नहीं है परंतु अंत में 'पंचनमोक्कारमंत-सरणाओ' ऐसा उल्लेख होने से इसके जैनाचार्य की कृति होने का निर्णय होता है। इसमें स्वप्नों के शुभाशुभ फलों का विचार किया गया है।

स्वप्नशास्त्र :

'स्वप्नशास्त्र' के कर्ता जैन गृहस्थ विद्वान् मंत्री दुर्लभराज के पुत्र थे। दुर्लभराज और उनका पुत्र दोनों गुर्जरेश्वर कुमारपाल के मंत्री थे।[1]

यह ग्रन्थ दो अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में १५२ श्लोक शुभ स्वप्नों के विषय में हैं और दूसरे अधिकार में १५९ श्लोक अशुभ स्वप्नों के बारे में हैं। कुल मिलाकर ३११ श्लोकों में स्वप्नविषयक चर्चा की गई है।

सुमिणसत्तरिया (स्वप्नसप्ततिका) :

किसी अज्ञात विद्वान् ने 'सुमिणसत्तरिया' नामक कृति प्राकृत भाषा में ७० गाथाओं में रची है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

सुमिणसत्तरिया-वृत्ति :

'सुमिणसत्तरिया' पर खरतरगच्छीय सर्वदेवसूरि ने वि० सं० १२८७ में जैसलमेर में वृत्ति की रचना की है और उसमें स्वप्न-विषयक विशद विवेचन किया है। यह टीका ग्रंथ भी अप्रकाशित है।

सुमिणवियार (स्वप्नविचार) :

'सुमिणवियार' नामक ग्रन्थ जिनपालगणि ने प्राकृत में ८७५ गाथाओं में रचा है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१ श्रीमान् दुर्लभराजस्तदपत्यं बुद्धिधामसुकविरभूत्।
यं कुमारपालो महत्तमं क्षितिपतिः कृतवान् ॥

तेरहवां प्रकरण

चूडामणि

अर्हच्चूडामणिसार :

'अर्हच्चूडामणिसार' का दूसरा नाम है 'चूडामणिसार' या 'ज्ञानदीपक'।[1] इसमें कुल मिलाकर ७४ गाथाएँ हैं। इसके कर्ता भद्रबाहुस्वामी के होने का निर्देश किया गया है।

इस पर संस्कृत में एक छोटी-सी टीका भी है।

चूडामणि :

'चूडामणि' नामक ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। गुणचन्द्रगणि ने 'कहारयणकोस' में चूडामणिशास्त्र का उल्लेख किया है। इसके आधार पर तीनों कालों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था।

'सुपासनाहचरिय' में चंपकमाला के अधिकार में इस ग्रंथ की महिमा बतायी गई है। चंपकमाला 'चूडामणिशास्त्र' की विदुषी थी। उसका पति कौन होगा और उसे कितनी संतानें होंगी, यह सब वह जानती थी।[2]

इस ग्रन्थ के आधार पर भद्रलक्षण ने 'चूडामणिसार' नामक ग्रंथ की रचना की है और पार्श्वचन्द्र मुनि ने भी इसी ग्रन्थ के आधार पर अपने 'हस्तकाण्ड' की रचना की है।

कहा जाता है कि द्रविड देश में दुर्विनीत नामक राजा ने पांचवीं सदी में ९६००० श्लोक-प्रमाण 'चूडामणि' नामक ग्रंथ गद्य में रचा था।

---

1. यह ग्रंथ सिंघी सिरीज में प्रकाशित 'जयपाहुड' के परिशिष्ट के रूप में छपा है।
2. देखिए—लक्ष्मणगणिविरचित सुपासनाहचरिय, प्रस्ताव २, सम्यक्त्वप्रशंसा-कथानक।

अक्षरचूडामणिशास्त्र :

'अक्षरचूडामणिशास्त्र' नामक ग्रन्थ का निर्माण किसने किया, यह ज्ञात नहीं है परंतु यह ग्रन्थ किसी जैनाचार्य का रचा हुआ है, यह ग्रन्थ के अंतरंग-निरीक्षण से स्पष्ट होता है। यह श्वेताम्बराचार्यकृत है या दिगम्बराचार्यकृत, यह कहा नहीं जा सकता। इस ग्रन्थ में ३० पत्र हैं। भाषा संस्कृत है और कहीं-कहीं पर प्राकृत पद्य भी दिये गये हैं। ग्रंथ पूरा पद्य में होने पर भी कहीं-कहीं कर्ता ने गद्य में भी लिखा है। ग्रन्थ का प्रारंभ इस प्रकार है :

नमामि पूर्णचिद्रूपं नित्योदितमनावृतम् ।
सर्वाकारा च भाषिण्याः सत्कालिङ्गितमीश्वरम् ॥
ज्ञानदीपकमालायाः वृत्तिं कृत्वा सदक्षरैः ।
स्वरस्नेहेन संयोज्यं ज्वालयेदुत्तराधरैः ॥

इसमें द्वारगाथा इस प्रकार है .

अथातः संप्रवक्ष्यामि उत्तराधरमुत्तमम् ।
येन विज्ञातमात्रेण त्रैलोक्यं दृश्यते स्फुटम् ॥

इस ग्रन्थ में उत्तराधरप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, सुख दुःखप्रकरण, जीवितमरणप्रकरण, जयचक्र, जयाजयप्रकरण, दिनसंख्याप्रकरण, दिनवक्तव्यताप्रकरण, चिन्ताप्रकरण (मनुष्ययोनिप्रकरण, चतुष्पदयोनिप्रकरण, जीवयोनिप्रकरण, धाम्यधातुप्रकरण, धातुयोनिप्रकरण), नामबन्धप्रकरण, अकडमविवरण, स्थापना, सर्वतोभद्रचक्रविवरण, कचटादिवर्णाक्षरलक्षण, अहिवलये द्रव्यशल्याधिकार, इटाचक्र, पञ्चचक्रव्याख्या, वर्गचक्र, अर्घकाण्ड, जल्योग, नवोत्तर, जीव-धातु-मूलाक्षर, आलिंगितादिक्रम आदि विषयों का विवेचन है। ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

विजयद्वार नामक है जिसमें जय-पराजयसंबंधी कथन है। बाईसवें अध्याय में उत्तम फलों की सूची दी गई है। पच्चीसवें अध्याय में गोत्रों का विस्तृत उल्लेख है। छब्बीसवें अध्याय में नामों का वर्णन है। सत्ताईसवें अध्याय में राजा, मन्त्री, नायक, भाण्डागारिक, आसनस्थ, महानसिक, गजाध्यक्ष आदि राजकीय अधिकारियों के पदों की सूची है। अट्ठाईसवें अध्याय में उद्योगी लोगों की महत्त्वपूर्ण सूची है। उनतीसवां अध्याय नगरविजय नाम का है, इसमें प्राचीन भारतीय नगरों के संबंध में बहुत सी बातों का वर्णन है। तीसवें अध्याय में आभूषणों का वर्णन है। बत्तीसवें अध्याय में धान्य के नाम हैं। तेंतीसवें अध्याय में वाहनों के नाम दिये गये हैं। छत्तीसवें अध्याय में दोहद-संबंधी विचार है। सैंतीसवें अध्याय में १२ प्रकार के लक्षणों का प्रतिपादन किया गया है। चालीसवें अध्याय में भोजनविषयक वर्णन है। इकतालीसवें अध्याय में मूर्तियां, उनके प्रकार, आभूषण और अनेक प्रकार की क्रीडाओं का वर्णन है। तेंतालीसवें अध्याय में यात्रासंबंधी वर्णन है। छियालीसवें अध्याय में गृहप्रवेश-सम्बन्धी शुभ-अशुभफलों का वर्णन है। सैंतालीसवें अध्याय में राजाओं की सैन्ययात्रा संबंधी शुभाशुभफलों का वर्णन है। चौवनवें अध्याय में सार और असार वस्तुओं का विचार है। पचपनवें अध्याय में जमीन में गडी हुई धनराशि की खोज करने के संबंध में विचार है। अट्ठावनवें अध्याय में जैनधर्म में निर्दिष्ट जीव और अजीव का विस्तार से वर्णन किया गया है। साठवें अध्याय में पूर्वभव जानने की तरकीब सुझाई गई है।'

करलक्खण (करलक्षण) :

'करलक्खण प्राकृत भाषा में रचा हुआ सामुद्रिक शास्त्रविषयक अज्ञातकर्तृक ग्रन्थ है। आद्य पद्य में भगवान् महावीर को नमस्कार किया गया है। इसमें ६१ गाथाएँ हैं। इस कृति का दूसरा नाम 'सामुद्रिकशास्त्र' है।

इस ग्रन्थ में हस्तरेखाओं का महत्त्व बताते हुए पुरुषों के लक्षण, पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बायां हाथ देखकर भविष्य-कथन आदि विषयों का वर्णन किया गया है। विद्या, कुल, धन, रूप और आयु-सूचक पांच रेखाएँ होती हैं। हस्त रेखाओं से भाई बहन, संतानों की संख्या का भी पता चलता है। कुछ रेखाएँ धन और व्रत-सूचक भी होती हैं। ६०वीं गाथा में वाचनाचार्य, उपा-

---

१ यह ग्रंथ मुनि श्री पुण्यविजयजी द्वारा संपादित होकर प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी से सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ है।

ध्याय और सूरिपद प्राप्त होने का 'यव' कहाँ होता है, यह बताया गया है। अत मे मनुष्य की परीक्षा करके 'व्रत' देने की बात का स्पष्ट उल्लेख है।[१]

कर्ता ने अपने नाम का या रचना-समय का कोई उल्लेख नहीं किया है।

सामुद्रिक :

'सामुद्रिक' नाम की प्रस्तुत कृति सस्कृत भाषा मे है। पाटन के भडार में विद्यमान इस कृति के ८ पत्रों मे पुरुष-लक्षण ३८ श्लोकों मे और स्त्री लक्षण भी ३८ पद्यों मे हैं। कर्ता का नामोल्लेख नहीं है परन्तु मगलाचरण में 'आदिदेव प्रणम्यादौ' उल्लिखित होने से यह जैनाचार्य की रचना मालूम होती है। इसमे पुरुष और स्त्री की हस्तरेखा और शारीरिक गठन के आधार पर शुभाशुभ फलों का निर्देश किया गया है।

सामुद्रिकतिलक :

'सामुद्रिकतिलक' के कर्ता जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज हैं। ये गुर्जरनृपति भीमदेव के अमात्य थे। इन्होंने १. गजप्रबध, २ गजपरीक्षा, ३ तुरगप्रबध, ४ पुरुष-स्त्रीलक्षण और ५ शकुनशास्त्र की रचना की थी, ऐसी मान्यता है। पुरुष-स्त्रीलक्षण को पूरी रचना नहीं हो सकी होगी इसलिये उनके पुत्र जगदेव ने उसका शेष भाग पूरा किया होगा, ऐसा अनुमान है।

इस ग्रन्थ में पुरुषों और स्त्रियों के लक्षण ८०० आर्याओं में दिये गये हैं। यह ग्रन्थ पाच अधिकारों में विभक्त है जो क्रमश. २९८, ९९, ४६, १८८ और १४९ पद्यों में हैं।

प्रारम्भ में तीर्थंकर ऋषभदेव और ब्राह्मी की स्तुति करने के अनन्तर सामुद्रिकशास्त्र की उत्पत्ति बताते हुए क्रमश. कई ग्रन्थकारों के नामों का निर्देश किया गया है।

प्रथम अधिकार में २९८ श्लोकों में पादतल से लेकर सिर के बाल तक का वर्णन और उनके फलों का निरूपण है।

---

१ यह ग्रथ सस्कृत छाया, हिंदी अनुवाद, क्वचित् स्पष्टीकरण और पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिकापूर्वक प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी ने सपादित कर भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९५४ मे दूसरा सस्करण प्रकाशित किया है। प्रथम सस्करण सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था।

द्वितीय अधिकार मे ९९ श्लोको मे क्षेत्रों की सहति, सार आदि आठ प्रकार और पुरुष के ३२ लक्षण निरूपित है।

तृतीय अधिकार मे ४६ श्लोको मे आवर्त, गति, छाया, स्वर आदि विषयों की चर्चा है।

चतुर्थ अधिकार मे १४९ श्लोको मे स्त्रियों के व्यञ्जन, स्त्रियो की देव वगैरह बारह प्रकृतियाँ, पद्मिनी आदि के लक्षण इत्यादि विषय है।

अन्त में १० पद्यों की प्रशस्ति है जो कवि जगदेव ने रची है। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

सामुद्रिकशास्त्र :

अज्ञातकर्तृक 'सामुद्रिकशास्त्र' नामक कृति मे तीन अध्याय है जिनमे क्रमशः २४, १२७ और १२१ पद्य है। प्रारभ मे आदिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके ३२ लक्षणों तथा नेत्र आदि का वर्णन करते हुए हस्तरेखा आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में शरीर के अवयवों का वर्णन है। तीसरे अध्याय म स्त्रियों के लक्षण, कन्या कैसी पसन्द करनी चाहिये एव पद्मिनी आदि प्रकार वर्णित हैं।

१३ वीं शताब्दी मे वायडगच्छीय जिनदत्तसूरिरचित 'विवेकविलास' के कई श्लोकों से इस रचना के पद्य साम्य रखते है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

हस्तसंजीवन (सिद्धज्ञान) :

'हस्तसजीवन' अपर नाम 'सिद्धज्ञान' ग्रन्थ के कर्ता उपाध्याय मेघविजयगणि है। इन्होंने वि० स० १७३५ मे ५२९ पद्यों में सस्कृत मे इस ग्रन्थ की रचना की है। अष्टाग निमित्त को घटाने के उद्देश्य से समस्त ग्रन्थ को १ दर्शन, २ स्पर्शन, ३ रेखाविमर्शन और ४ विशेष—इन चार अधिकारों मे विभक्त किया है। अधिकारों के पद्यों की सख्या क्रमश १७७, ५४,२४१ और ४७ है।

प्रारम्भ मे शखेश्वर पार्श्वनाथ आदि को नमस्कार करके हस्त की प्रशसा हस्तज्ञानदर्शन, स्पर्शन और रेखाविमर्शन—इन तीन प्रकारों म बताई है। हाथ की रेखाओं का ब्रह्मा द्वारा बनाई हुई अक्षय जन्मपत्री के रूप में उल्लेख किया गया है। हाथ में ३ तीर्थ और २४ तीर्थंकर हैं। पाँच अगुलियों के नाम, गुरु को हाथ बताने की विधि और प्रसगवश गुरु के लक्षण आदि बताये गये है।

उसके बाद तिथि, वार व १७ चक्रों की जानकारी और हाथ के वर्ण आदि का वर्णन है।

दूसरे स्पर्शन अधिकार में हाथ में आठ निमित्त किस प्रकार घट सकते हैं, यह बताया गया है जिसमें शकुन, शकुनशलाका, पाशककेवली आदि का विचार किया जाता है। चूडामणि शास्त्र का भी यहाँ उल्लेख है।

तीसरे अधिकार में भिन्न भिन्न रेखाओं का वर्णन है। आयुष्य, संतान, स्त्री, भाग्योदय, जीवन की मुख्य घटनाओं और सांसारिक सुखों के बारे में गवेषणापूर्वक ज्ञान कराया गया है।

चतुर्थ अधिकार में विश्वा—लंबाई, नाखून, आवर्तन के लक्षण, स्त्रियों की रेखाएँ, पुरुष के बायें हाथ का वर्णन आदि बातें हैं।'[1]

हस्तसंजीवन-टीका :

'हस्तसंजीवन' पर उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७३५ में 'सामुद्रिक-लहरी' नाम से ३८०० श्लोक-प्रमाण स्वोपज्ञ टीका की रचना की है। कर्ता ने यह ग्रन्थ जीवराम कवि के आग्रह से रचा है।

इस टीकाग्रन्थ में सामुद्रिक-भूषण, शैव सामुद्रिक आदि ग्रन्थों का परिचय दिया है। इसमें खास करके ४३ ग्रन्थों की साक्षी है। हस्तबिम्ब, हस्तचिह्नसूत्र, कररेहापयरण, विवेकविलास आदि ग्रन्थों का उपयोग किया है।

अङ्गविद्याशास्त्र :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने 'अंगविद्याशास्त्र' नामक ग्रंथ की रचना की है। ग्रंथ अपूर्ण है। ४४ श्लोक तक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। इसकी टीका भी रची गई है परन्तु यह पता नहीं कि वह ग्रन्थकार की स्वोपज्ञ है या किसी अन्य विद्वान् द्वारा रचित है। ग्रंथ जैनाचार्यरचित मालूम होता है। यह 'अंगविज्जा' के अन्त में सटीक छपा है।

इस ग्रन्थ में अशुभस्थानप्रदर्शन, पुंसंज्ञक अंग, स्त्रीसंज्ञक अंग, भिन्न-भिन्न फलनिर्देश, चौरज्ञान, अपहृत वस्तु का लाभालाभज्ञान, पीडित का मरणज्ञान, भोजनज्ञान, गर्भिणीज्ञान, गर्भग्रहण में कालज्ञान, गर्भिणी को किस नक्षत्र में सन्तान का जन्म होगा—इन सब विषयों पर विवेचन है।

---

१ यह ग्रन्थ सटीक मोहनलालजी ग्रन्थमाला, इंदौर से प्रकाशित हुआ है। मूल ग्रन्थ गुजराती अनुवाद के साथ साराभाई नवाब, अहमदाबाद ने भी प्रकाशित किया है।

पन्द्रहवां प्रकरण

रमल

पासों पर बिन्दु के आकार के कुछ चिह्न बने रहते हैं। पासे फेंकने पर उन चिह्नों की जो स्थिति होती है उसके अनुसार हरएक प्रश्न का उत्तर बताने की एक विद्या है। उसे पाशकविद्या या रमलशास्त्र कहते हैं।

'रमल' शब्द अरबी भाषा का है और इस समय संस्कृत में जो ग्रन्थ इस विषय के प्राप्त होते हैं उनमें अरबी के ही पारिभाषिक शब्द व्यवहृत किये मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यह विद्या अरब के मुसलमानों से आयी है। अरबी ग्रन्थों के आधार पर संस्कृत में कई ग्रन्थ बने हैं, जिनके विषय में यहाँ कुछ जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

रमलशास्त्र :

'रमलशास्त्र' की रचना उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७३५ में की है। उन्होंने अपने 'मेघमहोदय' ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। अपने शिष्य मुनि मेरुविजयजी के लिये उपाध्यायजी ने इस कृति का निर्माण किया था।

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

रमलविद्या :

'रमलविद्या' नामक ग्रन्थ की रचना मुनि भोजसागर ने १८ वीं शताब्दी में की है। इस ग्रन्थ में कर्ता ने निर्देश किया है कि आचार्य कालकसूरि इस विद्या को यवनदेश से भारत में लाये। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

मुनि विजयदेव ने भी 'रमलविद्या' सम्बन्धी एक ग्रन्थ की रचना की थी, ऐसा उल्लेख मिलता है।

पाशककेवली :

'पाशककेवली' नामक ग्रंथ की रचना गर्गाचार्य ने की है। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है :

जैन आसीद् जगद्वन्द्यो गर्गनामा महामुनिः ।
तेन स्वयं निर्णीतं यत् सत्पाशाऽत्र केवली ॥
एतज्ज्ञानं महाज्ञान जैनर्षिभिरुदाहृतम् ।
प्रकाश्य शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मभिः ॥

'मदनकामरत्न' ग्रंथ में भी ऐसा उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ संस्कृत में था या प्राकृत में, यह ज्ञात नहीं है। गर्ग मुनि कब हुए, यह भी अज्ञात है। ये अति प्राचीन समय में हुए होंगे, ऐसा अनुमान है। इन्होंने एक 'संहिता' ग्रन्थ की भी रचना की थी।

पाशाकेवली :

अज्ञातकर्तृक 'पाशाकेवली' ग्रन्थ[1] में संकेत के पारिभाषिक शब्द अदअ, अअय, अयय आदि के अक्षरों के कोष्ठक दिये गये हैं। उन कोष्ठकों के अ प्रकरण, व प्रकरण, य प्रकरण, द प्रकरण—इस प्रकार शीर्षक देकर शुभाशुभ फल संस्कृत भाषा में बताये गये हैं।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में इस प्रकार लिखा है :

संसारपाशछित्त्यर्थं नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ।
आशापाशावने मुक्तः पाशाकेवलिः कथ्यते ॥

ग्रन्थ अप्रकाशित है।

---

[1] इसकी १० पत्रों की प्रति ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

सोलहवां प्रकरण

लक्षण

लक्षणमाला :

आचार्य जिनभद्रसूरि ने 'लक्षणमाला' नामक ग्रथ की रचना की है। भाडारकर की रिपोर्ट में इस ग्रथ का उल्लेख है।

लक्षणसंग्रह :

आचार्य रत्नशेखरसूरि ने 'लक्षणसग्रह' नामक ग्रथ की रचना की है।[1] रत्नशेखरसूरि १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे हुए हैं।

लक्ष्य-लक्षणविचार :

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'लक्ष्य-लक्षणविचार' नामक ग्रथ की रचना की है।[2] हर्षकीर्तिसूरि १७ वीं सदी में विद्यमान थे। इन्होंने कई ग्रथ रचे है।

लक्षण :

किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'लक्षण' नामक ग्रथ की रचना की है।[3]

लक्षण-अवचूरि :

'लक्षण' ग्रथ पर किसी अज्ञातनामा जैन मुनि ने 'अवचूरि' रची है।[4]

लक्षणपङ्क्तिकथा :

दिगबराचार्य श्रुतसागरसूरि ने 'लक्षणपक्तिकथा' नामक ग्रथ की रचना की है।[5]

---

१ इसका उल्लेख जैन ग्रथावली, पृ० ९६ में है।
२ इस ग्रथ का उल्लेख सूरत भडार की सूची में है।
३ यह ग्रथ बडौदा के हसविजयजी ज्ञानमदिर में है।
४ बडौदा के हसविजयजी ज्ञानमदिर में यह ग्रथ है।
५ जिनरत्नकोश में इसका उल्लेख है।

सत्रहवाँ प्रकरण

आय

आयनाणतिलय (आयज्ञानतिलक) :

'आयनाणतिलय' प्रश्न-प्रणाली का ग्रथ है। भट्ट वोसरि ने इस कृति को २५ प्रकरणों मे विभाजित कर कुल ७५० प्राकृत गाथाओं मे रचा है।

भट्ट वोसरि दिगम्बर जैनाचार्य दामनंदि के शिष्य थे। मल्लिषेणसूरि ने, जो सन् १०४३ में विद्यमान थे, 'आयज्ञानतिलक' का उल्लेख किया है। इससे भट्ट वोसरि उनसे पहिले हुए यह निश्चित है।

भाषा की दृष्टि से यह ग्रथ ई० १०वीं शताब्दी म रचित मालूम होता है। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से यह कृति अतीव महत्त्वपूर्ण है। इसमे ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, श्वान, वृष और ध्वाक्ष—इन आठ आयों द्वारा प्रश्नफलों का रहस्यात्मक एव सुदर वर्णन किया है। ग्रथ के अत मे इस प्रकार उल्लेख है . इति दिगम्बराचार्यपण्डितदामनन्दिशिष्यभट्टवोसरिविरचिते . ।

यह ग्रथ अप्रकाशित है।[1]

'आयज्ञानतिलक' पर भट्ट वोसरि ने १२०० श्लोक-प्रमाण स्वोपज्ञ टीका लिखी है, जो इस विषय में उनके विशद ज्ञान का परिचय देती है।

आयसद्भाव :

'आयसद्भाव' नामक सस्कृत ग्रथ की रचना दिगम्बराचार्य जिनसेनसूरि के शिष्य आचार्य मल्लिषेण ने की है। ग्रथकार सस्कृत, प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। वे धारवाड जिले के अतर्गत गदग ताल्लुके के निवासी थे। उनका समय सन् १०४३ (वि० स० ११००) माना जाता है।

कर्ता ने प्रारभ में ही सुग्रीव आदि मुनियों द्वारा 'आयसद्भाव' की रचना करने का उल्लेख इस प्रकार किया है :

---

१ इसकी वि० स० १४४। मे लिखी गई हस्तलिखित प्रति मिलती है।

सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत् संप्रत्यर्थाभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन ॥

इन्होंने भट्ट वोसरि का भी उल्लेख किया है। उन ग्रंथों से सार ग्रहण करके मल्लिषेण ने १९५ श्लोकों मे इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ २० प्रकरणों मे विभक्त है। कर्ता ने इसमें अष्ट-आय—१ ध्वज, २ धूम, ३. सिंह, ४. मण्डल, ५ वृष, ६. खर, ७. गज, ८ वायस—के स्वरूप और फलों का सुंदर विवेचन किया है। आयों की अधिष्ठात्री पुलिन्दिनी देवी का इसमें स्मरण किया गया है।

ग्रंथ के अंत में कर्ता ने कहा है कि इस कृति से भूत, भविष्य और वर्तमान काल का ज्ञान होता है। अन्य व्यक्ति को विद्या नहीं देने के लिये भी अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है :

अन्यस्य न दातव्यं मिथ्यादृष्टेस्तु विशेषतः।
शपथं च कारयित्वा जिनवरदेव्याः पुरः सम्यक् ॥

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

आयसद्भाव-टीका :

'आयसद्भाव' पर १६०० श्लोक-प्रमाण अज्ञातकर्तृक टीका की रचना हुई है। यह टीका भी अप्रकाशित है।

अठारहवाँ प्रकरण

अर्घ

अग्घकंड (अर्घकाण्ड) :

आचार्य दुर्गदेव ने 'अग्घकंड' नामक ग्रंथ का ग्रहचार के आधार पर प्राकृत में निर्माण किया है। इस ग्रन्थ से यह पता लगाया जा सकता है कि कौन सी वस्तु खरीदने से और कौन सी वस्तु बेचने से लाभ हो सकता है।[1]

'अग्घकंड' का उल्लेख 'विशेषनिशीथचूर्णि' में मिलता है। ऐसी कोई प्राचीन कृति होगी जिसके आधार पर दुर्गदेव ने इस कृति का निर्माण किया है।

कई ज्योतिष-ग्रंथों में 'अर्घ' का स्वतन्त्र प्रकरण रहता है किन्तु स्वतन्त्र कृति के रूप में यही एक ग्रंथ प्राप्त हुआ है।

---

1 इम दव्व विक्कीणाहि, इम वा कीणाहि।

उन्नीसवाँ प्रकरण

कोष्ठक

कोष्ठकचिन्तामणि :

आगमगच्छीय आचार्य देवरत्नसूरि के शिष्य आचार्य शीलसिंहसूरि ने प्राकृत में १५० पद्यों में 'कोष्ठकचिन्तामणि' नामक ग्रंथ की रचना की है। संभवत. १३ वीं शताब्दी में इसकी रचना की गई होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

इस ग्रंथ में ९, १६, २० आदि कोष्ठकों में जिन जिन अंकों को रखने का विधान किया है उनको चारों ओर से गिनने पर जोड़ एक समान आता है। इस प्रकार पंदरिया, बीसा, चौतीसा आदि शताधिक यन्त्रों के बारे में विवरण है।

यह ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

कोष्ठकचिन्तामणि-टीका :

शीलसिंहसूरि ने अपने 'कोष्ठकचिंतामणि' ग्रंथ पर संस्कृत में वृत्ति भी रची है।[1]

---

१ मूल ग्रन्थसहित इस टीका की १०१ पत्रों की करीब १६ वीं शताब्दी में लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

बीसवाँ प्रकरण

आयुर्वेद

सिद्धान्तरसायनकल्प :

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यकग्रथ की रचना की है। उसके बीसवें परिच्छेद (श्लो० ८६) मे समतभद्र ने 'सिद्धान्तरसायन-कल्प' की रचना की, ऐसा उल्लेख है। इस अनुपलब्ध ग्रन्थ के जो अवतरण यत्र-तत्र मिलते है वे यदि एकत्रित किये जायँ तो दो-तीन हजार श्लोक प्रमाण हो जायँ। कई विद्वान् मानते है कि यह ग्रथ १८००० श्लोक-प्रमाण था। इसमें आयुर्वेद के आठ अङ्गो—काय, बल, ग्रह, ऊर्ध्वांग, शल्य, दष्ट्रा, जरा और विष—के विषय मे विवेचन था जिसमे जैन पारिभाषिक शब्दो का ही उपयोग किया गया था। इन शब्दो के स्पष्टीकरण के लिये अमृतनदि ने एक कोश-ग्रन्थ की रचना भी की थी जो पूरा प्राप्त नहीं हुआ है।

पुष्पायुर्वेद :

आचार्य समतभद्र ने परागरहित १८००० प्रकार के पुष्पों के बारे में 'पुष्पायुर्वेद' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। वह ग्रन्थ आज नहीं मिलता है।

अष्टागसंग्रह :

समतभद्राचार्य ने 'अष्टाङ्गसग्रह' नामक आयुर्वेद का विस्तृत ग्रथ रचा था, ऐसा 'कल्याणकारक' के कर्ता उग्रादित्य ने उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उस 'अष्टाङ्गसग्रह' का अनुसरण करके मैंने 'कल्याणकारक' ग्रन्थ सक्षेप मे रचा है।[1]

---

१ अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रै,
प्रोक्त सविस्तरमथो विभवैः विशेषात्।
सक्षेपतो निगदित तदिहात्मशक्त्या,
कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम् ॥

निम्नोक्त ग्रन्थों और ग्रथकारों के नामों का उल्लेख कल्याणकारक-कार ने किया है :

१	शालाक्यतत्र	—पूज्यपाद
२.	शल्यतत्र	—पात्रकेसरी
३	विष एव उग्रग्रहशमनविधि	—सिद्धसेन
४	काय-चिकित्सा	—दशरथ
५	बाल-चिकित्सा	—मेघनाद
६	वैद्य, वृष्य तथा दिव्यामृत	—सिंहनाद

निदानमुक्तावली :

वैद्यक-विषयक 'निदानमुक्तावली' नामक ग्रन्थ मे १ कालारिष्ट और २. स्वस्थारिष्ट—ये दो निदान हैं। मगलाचरण मे यह श्लोक है :

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्।
सर्वप्राणिहितं दृष्टं कालारिष्टं च निर्णयम् ॥

ग्रन्थ मे पूज्यपाद का नाम नहीं है परन्तु प्रकरण-समाप्ति-सूचक वाक्य 'पूज्यपादविरचितम्' इस प्रकार है।[1]

मदनकामरत्न :

'मदनकामरत्न' नामक ग्रन्थ को कामशास्त्र का ग्रन्थ भी कह सकते है क्योंकि हस्तलिखित प्रति के ६४ पत्रों मे से केवल १२ पत्र तक ही महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरवल्फणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलकेश्वर, बालसूर्योदय और अन्य ज्वर आदि रोगों के विनाशक रसों का तथा कर्पूरगुण, मृगहारभेद, कस्तूरीभेद, कस्तूरीगुण, कस्तूर्यनुपान, कस्तूरी-परीक्षा आदि का वर्णन है। शेष पत्रों मे कामदेव के पर्यायवाची शब्दों के उल्लेख के साथ ३४ प्रकार के कामेश्वररस का वर्णन है। साथ ही वाजीकरण, औषध, तेल, लिंगवर्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका के निर्माण की विधि बताई गई है। कामसिद्धि के लिये कुछ मत्र भी दिये गये है।

समग्र ग्रथ पद्यबद्ध है। इसके कर्ता पूज्यपाद माने जाते है परन्तु वे देवनदि से भिन्न हों ऐसा प्रतीत होता है। ग्रन्थ अपूर्ण सा दिखाई देता है।

---

१ इसकी हस्तलिखित ६ पत्रों की प्रति मद्रास के राजकीय पुस्तकालय मे है।

योगचिन्तामणि :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य आचार्य हर्ष-कीर्तिसूरि ने 'योगचिन्तामणि' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना करीब वि० स० १६६० में की है। यह कृति 'वैद्यकसारसग्रह' नाम से भी प्रसिद्ध है।

आत्रेय, चरक, वाग्भट, सुश्रुत, अश्वि, हारीतक,वृन्द, कलिक, भृगु, भेल आदि आयुर्वेद के ग्रथों का रहस्य प्राप्त कर इस ग्रथ का प्रणयन किया गया है, ऐसा ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है।[1]

इस ग्रन्थ के सकलन में ग्रन्थकार की उपकेशगच्छीय विद्यातिलक वाचक ने सहायता की थी।[2]

ग्रन्थ मे २९ प्रकरण हैं, जिनमे निम्नलिखित विषय हैं :

१ पाकाधिकार, २ पुष्टिकारकयोग, ३ चूर्णाधिकार, ४ क्वाथाधिकार, ५ घृताधिकार, ६ तैलाधिकार, ७ मिश्रकाधिकार, ८ सखद्रावविधि, ९. गन्धकशोधन, १० शिलाजित्सत्त्ववर्णादिधातु-मारणाधिकार, ११ मडूरपाक, १२ अभ्रकमारण, १३ पारदमारणरादिको हिंगूलसे पारदसाधन, १४. हरतालमारण-नाग-ताम्राकादणविधि, १५ सोवनमाषीमणशिलादिशोधन-लोकनाथ-रस, १६ आसवाधिकार, १७ कल्याणगुल-जवीरद्रवलेपाधिकार-केशकल्प-लेप-रोमशातन, १८ मलम-रुधिरस्राव, १९. वमन-विरेचनविधि, २० बफारौ अगूलै नासिकाया मस्तकरोधबन्धन, २१. तक्रपानविधि, २२ ज्वरहरादि-साधारणयोग, २३ वर्धमान-हरीतकी-त्रिफलायोग-त्रिगडू-आसगन्ध, २४ काय-चिकित्सा एरण्डतैल हरीतकी-त्रिफलादिसाधारणयोग, २५ डम-विषचिकित्सा-स्त्री-कुक्षिरोग चिकित्सा, २६ गर्भनिवारण-कर्मविपाक, २७ (वन्ध्या) स्त्री रोगा-धिकार सर्वरोग-सर्वदोषशान्तिकरण, २८ नाडीपरीक्षा-मूत्रपरीक्षा, २९. नेत्र-परीक्षा जिह्वापरीक्षादि।

---

१ आत्रेयका चरक-वाग्भट-सुश्रुताश्वि-हारीत-वृन्द-कलिका-भृगु-भेड(ल)पूर्वा।
नेऽमी निदानयुतकर्मविपाकमुख्यास्तेषा मत समनुसृत्य मया कृतोऽयम्॥

२ श्रीमदुपकेशगच्छीयविद्यातिलकवाचका।
किञ्चित् सकलितो योगवार्ता किञ्चित् कृतानि च॥

माघराजपद्धति :

माघचन्द्रदेव ने 'माघराजपद्धति' नामक १०००० श्लोक-प्रमाण ग्रथ रचा है। यह ग्रथ भी देखने मे नहीं आया है।

आयुर्वेदमहोदधि :

सुषेण नामक विद्वान् ने 'आयुर्वेदमहोदधि' नामक ११०० श्लोक-प्रमाण ग्रथ का निर्माण किया है। यह निघण्टु-कोशग्रथ है।

चिकित्सोत्सव :

हसराज नामक विद्वान् ने 'चिकित्सोत्सव' नामक १७०० श्लोक प्रमाण ग्रथ का निर्माण किया है। यह ग्रन्थ देखने मे नहीं आया है।

निघण्टुकोश :

आचार्य अमृतनदि ने जैन दृष्टि से आयुर्वेद की परिभाषा बताने के लिये 'निघुण्टुकोश' की रचना की है। इस कोश में २२००० शब्द है। यह सकार तक ही है। इसमें वनस्पतियों के नाम जैन परिभाषा के अनुसार दिये है।

कल्याणकारक :

आचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक आयुर्वेदविषयक ग्रथ की रचना की है, जो आज उपलब्ध है। ये श्रीनदि के शिष्य थे। इन्होंने अपने ग्रथ मे पूज्यपाद, समतभद्र, पात्रस्वामी, सिद्धसेन, दशरथगुरु, मेघनाद, सिंहसेन आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। 'कल्याणकारक' की प्रस्तावना में ग्रथकार का समय छठी शती से पूर्व होने का उल्लेख किया गया है परन्तु उग्रादित्य ने ग्रथ के अन्त में अपने समय के राजा का उल्लेख इस प्रकार किया है इत्यशेषविशेषविशिष्टदुष्टपिशिताशिवैद्यशास्त्रेषु मासनिराकरणार्थमुग्रादित्याचार्येण नृपतुङ्गवल्लभेन्द्रसभायामुद्घोषित प्रकरणम्।

नृपतुङ्ग राष्ट्रकूट अमोघवर्ष का नाम था और वह नवीं शताब्दी मे विद्यमान था। इसलिये उग्रादित्य का समय भी नवीं शती ही हो सकता है। परन्तु इस ग्रथ मे निरूपित विषय की दृष्टि आदि से उनका यह समय भी ठीक नहीं जॅचता, क्योंकि रसयोग की चिकित्सा का व्यापक प्रचार ११ वीं शती के बाद ही मिलता है। इसलिये यह ग्रथ कदाचित् १२ वीं शती से पूर्व का नहीं है।

की प्रतिलिपि की है। अन्त मे 'नाडीनिर्णय' ऐसा नाम दिया है। समग्र ग्रथ पद्यात्मक है। ४१ पद्यों में ग्रथ पूर्ण होता है। इसमे मूत्रपरीक्षा, तैलबिंदु की दोषपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, मुखपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, रोगों की सख्या, ज्वर के प्रकार आदि से सम्बन्धित विवेचन है।

जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला :

'योनिप्राभृत' और 'जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला'—इन दोनों ग्रथों की एक जीर्ण प्रति पूना के भाडारकर इन्स्टीट्यूट में है। दोनों ग्रथ एक-दूसरे मे मिश्रित हो गये हैं।

'जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला' ग्रन्थ पद्यात्मक प्राकृतभाषा में है। बीच में कहीं-कहीं गद्य में सस्कृत भाषा और कहीं पर तो तत्कालीन हिंदी भाषा का भी उपयोग हुआ दिखाई देता है। इसमे ४३ अधिकार हैं और करीब १५०० गाथाएँ हैं।

इस ग्रथ के कर्ता यशःकीर्ति मुनि हैं।[१] वे कब हुए और उन्होंने अन्य कौन से ग्रन्थ रचे, इस विषय में जानकारी नहीं मिलती। पूना की हस्तलिखित प्रति के आधार पर कहा जा सकता है कि यश.कीर्ति वि० स० १५८२ के पहले कभी हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रथ में परिभाषाप्रकरण, ज्वराधिकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, रक्तपित्त आदि विषयों पर विवेचन है। इसमें १५ यन्त्र भी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं : १ विद्याधरवापीयत्र, २ विद्याधरीयत्र, ३ वायुयत्र, ४ गगायत्र, ५ एरावणयत्र, ६ भेरुडयत्र, ७ राजाभ्युदययत्र, ८ गतप्रत्यागतयत्र, ९ बाणगगायत्र, १० जलदुर्गभयानकयत्र, ११ उरयागासे पक्खि० भ० महायत्र, १२. हसश्रवायत्र, १३ विद्याधरीनृत्ययत्र, १४ मेघनादभ्रमणवर्तयत्र, १५ पाण्डवामलीयत्र।[२]

इसमें जो मन्त्र हैं उनका एक नमूना इस प्रकार है

---

१ जसइत्तिणामसुणिणा भणिय णाऊण कलिसरूव च।
वाहिगहिद्द वि हु भव्वो जह मिच्छत्तेण सगिलइ ॥ १३ ॥

२ यह ग्रन्थ एस० के० कोटेचा ने धूलिया से प्रकाशित किया है। इसमें अशुद्धियाँ अधिक रह गई हैं।

सारसग्रह :

यह ग्रन्थ 'अकलंकसहिता' नाम से प्रकाशित हुआ है। ग्रथ का प्रारम्भ इस प्रकार है :

> नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
> कल्याणकारको ग्रन्थः पूज्यपादेन भाषितः॥
> .. . . . ।
> सर्व लोकोपकारार्थं कथ्यते सारसग्रहः॥
> श्रीमद् वाग्भट-सुश्रुतादिविमलश्रीवैद्यशास्त्रार्णवे,
> भास्वत् ....सुसारसंग्रहमहावामान्विते सग्रहे।
> मन्त्रज्ञैरुपलभ्य सद्विजयणोपाध्यायसन्निर्मिते,
> ग्रन्थेऽस्मिन् मधुपाकसारनिचये पूर्ण भवेन्मङ्गलम्॥

ग्रथगत इन पद्यो से तो इसका नाम 'सारसग्रह' प्रतीत होता है।

इसमें पृष्ठ १ से ५ तक समतभद्र के रस-सबधी कइ पद्य, ६ से ३२ तक पूज्यपादोक्त रस, चूर्ण, गुटिका आदि कई उपयोगी प्रयोग और ३३ से गोम्मट-देव के 'मेरुदण्डतत्र' सम्बन्धी ग्रन्थ की नाडीपरीक्षा और ज्वरनिदान आदि, कई भाग है। भिन्न-भिन्न प्रकरणों में सुश्रुत, वाग्भट हरीतमुनि, रुद्रदेव आदि वैद्याचार्यों के मतों का सग्रह भी है।[1]

निबन्ध :

मत्री धनराज के पुत्र सिंह द्वारा वि० स० १५२८ की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ के दिन[2] वैद्यकग्रन्थ की रचना करने का विधान श्री अगरचदजी नाहटा ने किया है।[3] श्री नाहटाजी को इस ग्रथ के अतिम दो पत्र मिले हैं। उन पत्रों मे १०९९ से ११२३ तक के पद्य हैं। अतिम चार पद्यो मे प्रशस्ति है। प्रशस्ति में इस ग्रथ को 'निबध' कहा है।[4] प्रस्तुत प्रति १७ वीं शताब्दी मे लिखी गई है।

---

१ यह ग्रन्थ आरा के जैन सिद्धातभवन से प्रकाशित हुआ है।

२ वसु कर-शर-चन्द्रे (१५२८) वत्सरे राम-नन्द-
ज्वलन शशि (१२९३) मिते च श्रीशके मासि मार्गे।
असितदलतिथौ वा पञ्चमी . . केऽर्के
गुरुमशुभदिनेऽसौ . . . ॥११२०॥

३ देखिए—जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १९, पृ ११

४ यावन्मेरौ कनक तिष्ठतु तावन्निबन्धोऽयम्॥ ११०२॥

———

। ग्लचिकुलमहीपश्रीमदल्लावदीनप्रबलभुजरक्षे श्रीरणस्तम्भदुर्गं ।
सकलसचिवमुख्यश्रीधनेशस्य सूनु समकुरत निबन्धं सिंहनामा प्रभुर्यं ॥११२१॥

धरमिणि वाहूनाम्ना स्त्रीयुगल मन्त्रिधनराजस्य ।
प्रथमोदरजौ सीहा-श्रीपतिपुत्रौ च विख्यातौ ॥ १० ॥
कुलदीपकौ द्वावपि राजमान्यौ सुदातृतालक्षणलक्षिताशयौ ।
गुणाकरौ द्वावपि सघनायकौ धनाङ्गजौ भूवलयेन नन्दताम् ॥

इक्कीसवाँ प्रकरण

अर्थशास्त्र

संघदासगणि रचित 'वसुदेवहिंडी' के साथ जुड़ी हुई 'धम्मिल्लहिंडी' में 'भगवद्गीता', 'पोगगम' (पाकशास्त्र) और 'अर्थशास्त्र'—इन तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख है। 'अत्थसत्थे य भणियं' ऐसा कहकर 'विसेसेण मायाए सत्थेण य हंतव्वो अप्पणो विवड्ढमाणो सत्तु त्ति' (पृ० ४५) (अर्थशास्त्र में कहा गया है कि विशेषत अपने बढ़ते हुए शत्रु का कपट द्वारा तथा शस्त्र से नाश करना चाहिये।) यह उल्लेख किया गया है।

ऐसा दूसरा उल्लेख द्रोणाचार्यरचित 'ओघनिर्युक्तिवृत्ति' में है। 'चाणक्कए वि भणियं' ऐसा कह कर 'जइ काइयं न वोसिरइ तो अदोसो त्ति' (पत्र १५२ आ) (यदि मल-मूत्र का त्याग नहीं करता है तो दोष नहीं है।) यह उल्लेख किया गया है।

तीसरा उल्लेख है पादलिप्ताचार्य की 'तरगवतीकथा' के आधार पर रची गई नेमिचन्द्रगणिकृत 'तरगलोल' में। उसमें अत्थसत्थ—अर्थशास्त्र के विषय में निम्नलिखित निर्देश है :

तो भणइ अत्थसत्थम्मि वण्णियं सुयणु ! सत्थयारेहिं।
दूतीपरिभव दूती न होइ कज्जस्स सिद्धकरी॥
एतो हु मन्तभेओ दूतीओ होज्ज कामनेमुक्का।
महिला मुचरहस्सा रहस्सकाले न संठाइ॥
आभरणवेलाया नीणांति अवि य वेयति चिंता।
होज्ज मतभेओ गमणविधाआ अविव्वाणी॥

इन तीन उल्लेखों से यह सूचित होता है कि प्राचीन युग में प्राकृत भाषा में रचा हुआ कोई अर्थशास्त्र था।

निशीथचूर्णिकार जिनदासगणि ने अपनी 'चूर्णि' में भाष्यगाथाओं के अनुसार सक्षेप में 'धूर्ताख्यान' दिया है और आख्यान के अन्त में 'सेसं धुत्तक्खाण-

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

परिचय

वाराणसीस्थित पार्श्वनाथ विद्याश्रम देश का प्रथम एवं अपने ढंग का एक ही जैन शोध-संस्थान है। यह गत ३३ वर्षों से जैनविद्या की निरन्तर सेवा करता आरहा है। इसके तत्त्वावधान मे अनेक छात्रो ने जैन विषयो का अध्ययन किया है व यूनिवर्सिटी से विविध उपाधियॉ प्राप्त की हैं। अब तक २५ विद्वानो ने पी-एच० डी० एवं डी० लिट्० के लिए प्रयत्न किया है जिनमे से अधिकांश को सफलता प्राप्त हुई है। वर्तमान मे इस संस्थान मे ५ शोधछात्र पी-एच० डी० के लिए प्रबन्ध लिखने मे संलग्न हैं। प्रत्येक शोधछात्र को २०० रु० मासिक शोधवृत्ति दी जाती है। एम० ए० मे जैन दर्शन का विशेष अध्ययन करनेवाले प्रत्येक छात्र को ५० रु० मासिक छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था है। संस्थानाध्यक्ष को एम० ए० की कक्षाओ मे जैन दर्शन का अध्यापन करने तथा पी-एच० डी० के शोध-छात्रो को निर्देशन देने की मान्यता बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से प्राप्त है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम की स्थापना सन् १९३७ मे हुई थी। इसका संचालन अमृतसरस्थित सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति द्वारा होता है। यह समिति एक्ट २१. सन् १८६० के अनुसार रजिस्टर्ड है तथा इन्कमटेक्स एक्ट सन् १९६१ के सेक्शन ८८ व १०० के अनुसार इसे आयकर-मुक्ति-प्रमाणपत्र प्राप्त है। समिति ने अब तक पार्श्वनाथ विद्याश्रम के निमित्त लगभग साढ़े आठ लाख रुपये खर्च कर दिये है। संस्थान का निजी विशाल भवन है जिसमे पुस्त-कालय, कार्यालय आदि हैं। अध्यक्ष एवं अन्य कर्मचारियो तथा छात्रो के निवास के लिए उपयुक्त आवास हैं। संस्थान से अब तक चौदह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।